प्रतिनिधि हिन्दी कहानियां 1985

प्रतिनिधि हिन्दी कहानियां
1985

संपादक
डा० हेतु भारद्वाज

पंचशील प्रकाशन

अनुक्रम

प्रतिनिधि हिन्दी कहानियां 1985

भूमिका-

"1985 में अचानक कहानी केन्द्र में आ गई है। 'सारिका' ने न सिर्फ कथापर्व का आयोजन किया बल्कि अपने पांच अंक कहानी पर एकाग्र किए। 'पूर्वग्रह' और 'पहल' जैसी पत्रिकाओं ने कहानी पर विशेषांक प्रकाशित किए। कई शहरों में कहानी पर शिविर आयोजित हुए आदि आदि, तो इस तरह 1985 कहानी वर्ष कहा जा सकता है।" (मन्नू भंडारी, दिनमान, 29 दिसम्बर 85 से 3 जनवरी 86, पृ० 44) 'रविवार' का दीपावली अंक भी कहानी पर केन्द्रित था। दिल्ली में 'कथा-पर्व', शिमला में 'शिखर-रचना-शिविर', धनबाद में 'कथा-शिविर-85', अलीगढ़ में 'जनवादी कथा समारोह' आदि आयोजन भी इस ओर संकेत करते हैं कि 1985 में हिन्दी कहानी की जीवन्त धारा ने अपनी महत्ता और रचनात्मक क्षमता का विशेष रूप से अहसास कराया। कहानी पर केन्द्रित 'पहल-27-28' अंक के साथ आज की कहानी पर डॉ० नामवर सिंह से सुरेश पाण्डेय के साक्षात्कार की 70 पेजी पुस्तिका भी इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इससे पूर्व भी 'सारिका', 'दिनमान', 'पूर्वग्रह' आदि में डॉ० नामवर सिंह की बातचीत छप चुकी हैं। किन्तु यह आकस्मिक नहीं है कि कहानी को लेकर डॉ० नामवर सिंह पुनः मुखर हुए हैं। नई कहानी के प्रारम्भिक दौर में हिन्दी कहानी के नयेपन के सूत्रों की ओर संकेत उन्होंने ही किया था और कहानी-समीक्षा की नई-जमीन तैयार करने का काम भी उन्होंने किया था। फिर वे एकाएक मौन हो गए और कविता से कहानी की ओर आया एक आलोचक फिर कविता की ओर चला गया।

किन्तु लोगों ने डॉ० नामवर सिंह के कहानी-संबंधी मौन को तोड़ने का प्रयास किया। मुझे लगता है कि कहानी की बाबत उनके मौन का टूटना भी एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी। जिन लोगों ने 'कविता की वापसी' का नारा दिया था, कहीं-न-कहीं वे ही लोग 'कहानी की वापसी' की घोषणा करने की सोच रहे थे। 'पूर्वग्रह' (मार्च-जून 1984) के अंक में प्रकाशित डॉ० नामवर सिंह के साथ जितेन्द्र कुमार, मदन सोनी, ध्रुव शुक्ल, राजेन्द्र धोड़पड़कर तथा उदयन वाजपेयी की बातचीत इस बात की ओर संकेत करती है। इस साक्षात्कार में डॉ० नामवर सिंह से मदन सोनी एक बड़ी हास्यास्पद बात कहते हैं, "अगर 'पूर्वग्रह' ने कहानी पर कोई अंक नहीं निकाला तो इसके पीछे 'पूर्वग्रह' का पूर्वग्रह उतना नहीं, जितना

खुद इस विधा की दयनीय दशा रही है।" (पृ० 10) इस दम्भोक्ति के साझीदार लेखकों को लगा कि विनोदकुमार शुक्ल, रघुवीर सहाय, कुंवर नारायण, श्रीकांत वर्मा, शमशेर, सर्वेश्वर जैसे कवि-कथाकार कहानी के क्षेत्र मे सक्रिय हुए है। इनके साथ वे मुक्तिबोध, मनोहरश्याम जोशी, जितेन्द्र कुमार, निर्मल वर्मा, ज्ञानरंजन का नाम भी लेते है किन्तु वे बल इस बात पर देना चाहते हैं कि कहानी की मुख्य धारा कवि-कहानीकारों द्वारा पोषित रूपवादी धारा ही है। मदन सोनी तो कुंवर नारायण, श्रीकांत वर्मा, रघुवीर सहाय, जितेन्द्र कुमार, विनोदकुमार शुक्ल, रमेशचन्द्र शाह, प्रयाग शुक्ल आदि की कहानी-परम्परा को 'कहानी की दूसरी परम्परा' कहते हैं। (यह बात दीगर है कि वे मुक्तिबोध को कवच के रूप में इस परम्परा में रख लेते हैं।)

इन लोगों के पूर्वग्रहों को डॉ० नामवर सिंह तर्कपूर्ण ढंग से खारिज करते हुए कहानी विधा की समृद्ध परम्परा को रेखांकित करते हैं, "समकालीन या कुछ युवा कहानीकारों तक ही आप सीमित न रहें, बल्कि कहानी विधा की जो एक लम्बी परम्परा हिन्दी में है, आप थोडा और पीछे जाकर उसे भी दृष्टिपथ में रखें''' अन्यथा समकालीन कहानीकारों को अपनी पूरी कहानी-परम्परा अथवा साहित्य की समग्र धारा से काटकर देखने से शायद संतुलन बिगड़ सकता है।" (पृ० 10) इतना ही नही वे बल देकर कहते हैं, "मैं यह नही मान सकता कि हिन्दी कहानी में नई ज़मीन तोडने का काम केवल कवि-कहानीकारों ने किया।" (पृ० 11)

और यही वे कहानी के प्रेमचंद स्कूल व प्रसाद स्कूल की चर्चा करते हुए प्रेमचंद स्कूल की परम्परा को अधिक महत्वपूर्ण और समृद्ध मानते हुए हिन्दी कहानी के विकास में जैनेन्द्र, यशपाल, रेणु, अमरकांत, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह (साथ में निर्मल वर्मा भी) आदि कहानीकारों का योगदान कवि-कथाकारों से कही बडा मानते हैं। इतना ही नही उनकी दृष्टि में हिन्दी गद्य को समृद्ध करने में अमरकांत, ज्ञानरंजन जैसे यथार्थवादी कथाकारों का योगदान अधिक है। इसीलिए वे निर्मल वर्मा के 'अनिश्चय' को अमरकान्त की 'निश्चयात्मकता' की तुलना में ज्यादा कलात्मक नहीं मानते। वे स्पष्ट कहते हैं कि, "जो कहानीकार जिन्दगी के सामाजिक संघर्षों में दोस्त-दुश्मन का निर्णय करते समय अनिश्चय का सहारा लेते हैं, वे समाज को गुमराह तो करते ही हैं कहानी को भी क्षति पहुंचाते हैं।" (पृ० 14)

कहानी की जिस तथाकथित (जादुई वास्तविकता से भरी) दूसरी परम्परा की स्थापना का प्रयास पूर्वग्रह ग्रुप करता है उसकी माप वह अनिश्चय, रहस्यवादिता, अमूर्त्तन, झीने कुहासे जैसे वातावरण आदि के चित्रण से करने पर बल देता है। वह वास्तविकता को भी जादुई नजरिये से देखने का प्रयास करता है। उसकी दृष्टि में अच्छी कहानी वही है जो जीवन-जगत की सचाई से दूर पाठक को एक जादुई रहस्यलोक में ले जाए, किन्तु डॉ० नामवर सिंह स्पष्ट कहते हैं, "आज की

सचाई या आज की जिन्दगी और हम जिस ऐतिहासिक दौर से गुजर रहे हैं उसमें मनुष्य की चिन्ता क्या है, इन तमाम चीज़ों की अभिव्यक्ति हमारी कहानियों में किस हद तक हो रही है। मेरा खयाल है कि कहानियों की सार्थकता की माप अन्ततः इसी से होगी, इससे नहीं होगी कि किस तरह की भाषा का प्रयोग किया, कौन सी उपमाएँ ली हैं या कौन से दिलचस्प चरित्र लिए हैं? या कुछ प्रयोग किए हैं कि नहीं किए हैं? अन्ततः जिन्दगी की सचाई और जीते-जागते इंसान से इनका रिश्ता या सरोकार किस हद तक है यही देखा जाएगा।" (पृ० 15) इसी-लिए हिन्दी कहानी की यथार्थवादी परम्परा को रेखांकित करते हुए वे कहते हैं, "मेरा संकेत जिन्दगी की ज्वलन्त समस्या की ओर है। आज के मनुष्य की ज्वलंत समस्या। निर्मल जी बहुत अच्छे कहानीकार हैं, लेकिन निर्मल जी जैसे उस ज्वलंत समस्या के हाशिए पर स्थित हैं। इस ज्वलंत समस्या से जूझने का कार्य उनसे ज्यादा उनके कुछ समकालीन कवियों ने किया है।" (पृ० 17) वे बड़े और सार्थक लेखक के लिए एक विज़न, एक जीवन दृष्टि, जीवन की सचाई का अनुभव, रचनाकार के भीतर अनुभव और दृष्टि के जुड़ाव आदि को आवश्यक मानते हैं।

'पूर्वग्रह' के इसी साक्षात्कार का विस्तार हमें 'पहल' द्वारा प्रकाशित 'पुस्तिका-7' में मिलता है जिसमें डॉ० नामवर सिंह ने हिन्दी कहानी के विभिन्न पहलुओं और उसके ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण किया है। मैंने डॉ० नामवर सिंह के विचारों का विस्तारपूर्वक उल्लेख इसलिए किया है कि लम्बे अरसे बाद उन्होंने पुनः हिन्दी कहानी की यथार्थवादी परम्परा को रेखांकित किया है। यह नहीं कि उनके विश्लेषण में अन्तर्विरोध नहीं हैं'''जैसे वे सामाजिक यथार्थ और मानव-नियति (वे Human Concern के लिए इस शब्द का प्रयोग करते हैं) में फर्क करते हैं और फर्क कुछ इस तरह करते हैं कि सामाजिक यथार्थ और मानव-नियति में कोई सम्बंध ही न हो। किन्तु क्या मानव-नियति शाश्वत होती है? क्या वह युगीन यथार्थ के साथ परिवर्तित नहीं होती? निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' कहानी में कुछ इसी तरह की मानव चिन्ता या मानव-नियति देखते हैं तो व्यापक स्तर पर उनकी व्याख्या—'परिंदे' के संदर्भ में—अटपटी-सी लगती है। यह भी विचित्र लगता है कि वे या तो केवल कुछ लोगों की कहानियां ही पढ़ते हैं या उन कहानियों को पढ़ते हैं जिनके बारे में उनसे आग्रह किया जाता है।

तथापि डॉ० नामवर सिंह का इतना लंबा उल्लेख मैंने दो कारणों से किया है—एक तो 1985 में उनकी हिंदी कहानी समीक्षा में सक्रियता, दूसरे उनके द्वारा हिंदी कहानी की यथार्थवादी परंपरा का रेखांकन, क्योंकि कुछ लोग यथार्थ-वादी कहानी की परंपरा के बरअंस घोर व्यक्तिवादी जादुई वास्तविकता को रूपायित करने वाली परंपरा को केन्द्र में लाने का सुनियोजित प्रयास कर रहे हैं।

ऐसा नहीं है कि हिंदी कहानी की विकासधारा गत दशकों में अवरुद्ध हो

गई थी और 1985 मे यकायक यह तीव्र गति से प्रवहमान होकर केन्द्र में आ गई है। 'नई कहानी' के कुछ हाथों मे खिसक जाने तथा 'अकहानी' के शोर शराबे के बीच भी हिंदी कहानी की वह धारा निरंतर प्रवहमान थी जिसकी चिंता मानव संघर्षों का चित्रण थी। इस धारा को कमलेश्वर के नेतृत्व मे गठित 'समांतर कहानी' (आम आदमी के लिए बनावटी आंसू बहाने वाली) सरकार भी आहत न कर सकी। दरअसल 'समांतर कहानी' के बनावटीपन का पराभव ही इस बात का संकेत था कि हिंदी कहानी की केंद्रीय परंपरा वही है जिसका सूत्रपात हमे प्रेमचंद की कहानियों में मिलता है।

शायद 1985 के विभिन्न कहानी-विशेषांकों तथा विभिन्न पत्रिकाओं मे प्रकाशित कहानिया एवं कथा-समारोहो मे हुई चर्चाएं और पठित कहानियां इस तथ्य को अच्छी तरह रेखांकित करती हैं।

प्रस्तुत संकलन पंचशील प्रकाशन, जयपुर के स्वत्वाधिकारी श्री मूलचंद गुप्ता के आग्रह पर तैयार किया गया और उन्होंने यह भी अनुरोध किया कि यह प्रयास प्रतिवर्ष आयोजित हो। संकलन के लिए चुनी गई कहानियो को लेकर मतभेद हो सकता है लेकिन देखना यह है कि संग्रह की कहानियां आज के जीवन की सचाई को रचनात्मक आग्रह के साथ कहा तक अभिव्यक्ति देती हैं। सुधी पाठकों और विद्वानों से मेरा अनुरोध है कि इस संदर्भ में मुझे सुझाव देकर लाभान्वित करें ताकि भविष्य में मैं संग्रह और बेहतर बना सकूं।

इस संकलन में जिन कहानीकारों की कहानियां संकलित हैं उनका मैं हृदय से कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मेरे अनुरोध पर अपनी कहानियों को संग्रह में लेने की सहर्ष अनुमति दी।

छावनी
नीम का थाना (राज.) 332713

हेतु भारद्वाज
31 मई, 1986

भीष्म साहनी

झुटपुटा

दूध के बूथ के बाहर लोगों की लंबी लाइन लगी थी। दो दिन बाद दूध मिलने की उम्मीद बंधी थी। लोग लपक-लपक कर आने लगे थे, और लाइन लंबी खिचती चली गई थी। देखते-ही-देखते उसका दूसरा सिरा पार्क तक जा पहुंचा। लोग चुप थे। लंबी लाइन के बावजूद माहौल में सन्नाटा था। कल दूध नही आया था। कल सब्जी वाले की दूकान के बाहर भी दिन भर टाट का परदा टंगा रहा था। मक्खन-डबलरोटी की दूकानें भी कुछ देर के लिए खुली थी, फिर बंद हो गई थी।

कल की तो बात ही दूसरी थी। कल तो लूट-पाट और आगजनी की घटनाएं घटती रही थी। इस समय प्रभात का झुटपुटा था, और कल की घटनाओं के अवशेष साफ-साफ दिखाई नही पड़ रहे थे। बूथ से थोड़ा हट कर, ऐन चौराहे के बीचोबीच एक जली हुई मोटर का काला-सा कंकाल पड़ा था। जलाने वाले उसे आग लगाते समय, दायें बाजू, उल्टा कर गए थे, जिससे वह और भी ज्यादा कुरूप और भयावह नजर आ रहा था। सड़क के पार दवाइयों की दूकान के भी अस्थि-पिंजर नजर आ रहे थे। इस समय वह दूकान काली खोह जैसी नजर आ रही थी। साइन-बोर्ड का एक सिरा टूट कर नीचे की ओर लटक रहा था, अंदर टूटी-फूटी अलमारियां मलबे का ढेर जैसी लग रही थी। बड़ा अटपटा लग रहा था। भला कोई दवाइयां भी लूटता है?

प्रोफेसर कन्हैयालाल भी लाइन मे डोलची उठाए खड़ा था और सोच रहा था कि कैसे एक दिन मे मुहल्ले का माहौल बदल गया है। यों, सन्नाटा तो सड़कों पर कल सुबह ही छा गया था, पर फिर भी, इक्का-दुक्का आदमी आ-जा रहे थे और कुछेक दूकानें भी खुली थी। कन्हैयालाल स्वयं एक दूकान पर से सौदा-सुलफ लाया था। हवा मे अनिश्चय डोल रहा था, और दूकान के कारिंदे ने भी कहा था:

"और कुछ भी लेना हो तो अभी ले जाइये, क्या मालूम दूकानें फिर कब खुलें।"

"क्यों, क्या बात है ? क्या किसी बात का अंदेशा है ?'

"क्या मालूम, कुछ भी हो सकता है।"

इसके कुछ ही देर बाद दूकानें बंद होने लगी थी। लगभग दस बजे सुनने मे आया था कि पिछली बस्ती मे आग लगी है। शायद इसकी भनक दूकानदारो को पहले से लग गई थी। तभी बची-खुची दूकानें भी सहसा बंद हो गई थी। प्रोफेसर कन्हैयालाल अपने घर की छत पर यह देखने के लिए चढ़ गया था कि आग सच-मुच लगी है या झूठी अफवाह ही फैली है। पर उसने पाया कि आग एक जगह पर नही, अनेक स्थानो पर लगी थी। करोल बाग की ओर से तीन जगह से धुआं उठ रहा था। और भी बहुत से लोग, अपनी-अपनी छतों पर, जगह-जगह से उठने धुएं को देखते हुए कयास लगा रहे थे कि आग कहां लगी होगी। इधर पीछे, मोती नगर की ओर से भी, दो जगह से धुआं उठ रहा था। एक जगह से तो बड़ा काले रंग का घुमड़ता-सा धुआं था जो ऊपर उठ जाने पर भी छितर नही पा रहा था।

जगह-जगह पर से उठते धुएं को देखकर, कन्हैयालाल के दिल में धक्-सा हुआ था, और फिर जैसे उसके मस्तिष्क मे जडता-सी आ गई थी। इससे अधिक उसकी प्रतिक्रिया नही हुई। उसे भी लगा जैसे वह यन्त्रवत्-सा उस दृश्य को देखे जा रहा है। प्रोफेसर कन्हैयालाल ने पहले भी अनेक बार आग के उठते शोले देखे थे, यहा तक कि ऐसे शोले जिनसे आधा आसमान लाल हो उठे। बाद में उन्हें याद कर के वह आतंकित भी महसूस किया करता था। पर इस वक्त तो उसके जड़ मस्तिष्क में एक ही बात बार-बार उठ रही थी : दिन को लगाई गई आग और रात को लगाई आग में बड़ा अतर होता है। दिन को लगाई गई आग में दहशत नही होती, जबकि रात के वक्त लगाई गई आग बडी भयानक नजर आती है। रात की आग मे धुआं नजर नही आता, केवल धधकती आग की लौ नजर आती है, और सांपो की तरह ऊपर को उठते, आग के लपलपाते शोले नजर आते हैं, और आसमान लाल होने लगता है, जबकि दिन के वक्त धुआं ज्यादा नजर आता है और आग के शोले धुए के बादलों में खोये-से रहते हैं। अनेक मकानों की छतों पर लोग खडे थे, केवल सिख परिवारो के घरों की छते खाली थी और छज्जे भी खाली थे। कन्हैयालाल की आंखो ने यह भी देखा। बात उसके मन में बैठ गई, पर उसकी कोई विशेष प्रतिक्रिया नही हुई।

जब से यह घटना-चक्र शुरू हुआ था, लगभग तीन बरस पहले से, तभी से धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क मे जड़ता आने लगी थी। शुरू-शुरू मे वह बड़ा उद्वेलन महसूस किया करता था। सही कौन है और गलत कौन, इसका अंदाज भी वह अपने बलबूते पर लगा लिया करता था। वह बहसें भी करता और उद्विग्न भी होता, पर धीरे-धीरे उसके मन में रिक्तता-सी आने लगी थी और उसे लगने लगा,

या जैसे कुछ है जो पकड़ में नहीं आ रहा है, जो हाथों में से छूटता-सा जा रहा है। कही कुछ फूट पड़ा है, जो काबू में नही आ रहा है। तभी वह चुपचाप और लोगों के तर्क सुनने लगा था। सभी पक्षों के, सभी मतों को सुनता रहता और केवल सिर हिलाता रहता। उसकी अवधारणा कहीं जमने भी लगती तो तर्क-कुतर्क के एक ही थपेड़े में वह बालू की भीत की तरह ढह जाती थी। बस, इतना ही रह गया था कि जब कोई रोमांचकारी घटना घटती तो वह सिर हिला कर कहता :

"बहुत बुरा हुआ है। च-च-च, बहुत बुरा। ऐसा नही होना चाहिए था।"

इससे आगे उसका दिमाग काम नही कर पाता था। या फिर दिमागी उधेड़बुन शुरू हो जाती थी।

लगभग दो बजे लठैतों का एक गिरोह मुहल्ले में घुसा था। मोती नगर की ओर से वे लोग आये थे। लाठियां और लोहे की लंबी-लंबी छड़ें उठाये हुए थे। उस वक्त कन्हैयालाल मुहल्ले के कुछ लोगों के साथ बाहर चौक में खड़ा था। वे लोग चलते-चलते, सीधी सड़क छोड़ कर बायें हाथ को घूम गए थे, और आखों से ओझल हो गए थे। उनके ओझल हो जाने पर चौक में खड़े लोग कयास लगाने लगे थे कि वह किस दूकान पर वार करने गए होंगे।

वह हलवाई की दूकान थी। यही बहुत से लोगों का कयास भी था। इसका पता धुएं के उस बवंडर से लग गया था, जो उस ओर से शीघ्र ही उठने लगा था।

तरह-तरह की टिप्पणियां कन्हैयालाल के कानो में पड रही थी—

"मैंने कल रात ही कहा था कि गड़बड होगी, मुहल्ले की एक कमेटी बना लो। जब कोई गुण्डे आयें तो उन्हे मुहल्ले के अंदर ही नही घुसने दो।"

यह मल्होतरा था, चौथे ब्लॉक वाला।

इस पर कोई नही बोला।

"इन सरदारो को एक चपत तो पड़नी ही चाहिए।" कोई दूसरा आदमी कह रहा था। "उन्होंने 'अत्त' उठा रखी थी।"

इस पर भी कोई नहीं बोला।

कृष्णलाल की बूढ़ी मां कही से चली आ रही थी। चौक के पास खड़ी मंडली के पास से गुजरते हुए बोली : "वे जीण जोगियो, इन्हां नू रोक देयो। इन्हां नू मना करो।"

पर किसी ने जवाब नही दिया। इस पर बुढिया खड़ी हो गई, "मेरा दिल थर-थर कांपता है। मेरे तीनों बेटे अमृतसर मे है। यहा तुम सिखो को बचाओगे तो कोई माई का लाल वहां मेरे बच्चो को भी बचायेगा।"

फिर भी किसी ने उत्तर नही दिया।

जमाना था जब कही पर भी झगड़ा हो जाने पर कन्हैयालाल उसमे कूद

पड़ता था और लड़ने वालों को छुड़ा देता था। कहीं पर शोर सुन लेता तो उस ओर भाग खड़ा होता था। पर आज उसके पांव उठ नहीं रहे थे। आंखें फाड़े केवल देखे जा रहा था। आगे बढ़ने के लिए टांगें उठ ही नहीं रही थीं। केवल एक ही वाक्य मन में बार-बार उठ रहा था : "बहुत बुरा हो रहा है। बहुत बुरी बात है। बहुत बुरा···"

तभी लठैतों का गिरोह फिर से सड़क पर आ गया था और मस्ती में झूमता हुआ आगे बढ़ता आ रहा था। दवाइयों की दूकान के सामने वे लोग रुक गए। *सांवले रंग का एक लंबा-सा लड़का जिसके हाथ में लंबी-सी लोहे की छड़ थी,* सबसे पहले दूकान की ओर बढ़ा और सीधा वार साइन बोर्ड पर किया। एक ही वार मे साइनबोर्ड का सिरा टूट गया और वह नीचे की ओर लटक गया। फिर बाकी लोग सक्रिय हो गए। दरवाजा टूटा तो वे बड़े आराम से दूकान के अंदर जाने लगे और जो हाथ लगा उठा-उठाकर हंसते-चहकते बाहर निकलने लगे। कोई हड़बड़ी नहीं थी, कोई हुल्लड़ नहीं था। न दूकान तोड़ने मे, न उसे लूटने मे। दूर खड़े लोग इस तरह उसकी तमाशबीनी कर रहे थे, मानो मेला देखने आये हों। लूटने वाले बड़े आराम से, एक-एक करके, मानो लाइन बना कर लूट रहे हों। कन्हैयालाल की पड़ोसिन, भारी-भरकम श्यामा भी टहलती हुई वहां आ पहुची थी और पाउडर का बड़ा-सा डिब्बा उठाये, हंसती-मुस्कराती हुई बाहर निकल आई थी। रास्ते में उसे अपनी बेटी मिल गई थी, जिसे डांटते हुए बोली, "मर जाणिये, जा, भाग कर जा, देर करेगी तो कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।" और बेटी भागती हुई गई थी और दूकान के अंदर से किन्हीं गोलियों की बोतल उठा लाई थी। सड़क पर कोई तनाव नहीं था। केवल सरदार लोग घरों के बाहर नहीं निकले थे, सभी घरों के अंदर चले गए थे।

"चिंता की कोई बात नहीं। दूकान वाले को बीमा कंपनी मुआवजा दे देगी।"

चौराहे पर खड़ी दर्शक-मण्डली मे से एक बोला था। इस पर दूसरे ने इसका खण्डन करते हुए कहा था :

"नहीं, फिसाद में अगर लूट-पाट हो तो उसका मुआवजा कम्पनी नहीं देती।"

"क्या मालूम उसने फिसाद का भी बीमा करा रखा हो।"

इस पर कुछ लोग हंस दिए।

तभी कुछ लोग दूकान के अन्दर से एक अलमारी को घसीट कर सड़क के बीचोबीच ले आए और देखते-ही-देखते धू-धू करती आग के शोले उसमे से निकलने लगे। कुछ लोग घेरा बांधे उसके इर्द-गिर्द खड़े हो गए थे, मानो लोहड़ी जलाई गई हो। *साइनबोर्ड तोड़ने वाला अभी भी छड़ से आलमारी को पीट रहा था।*

"दूकान सरदार की है मगर घर तो हिन्दू का है।" तमाशबीनों में से एक आदमी बोला। "इसलिए अलमारी बाहर खीच लाए हैं।"

इस पर एक और आदमी ने टिप्पणी की : "इधर पीछे ड्राई क्लीनर की दूकान को आग नही लगाई।"

"क्यों ?"

"क्योंकि उसमें एक हिन्दू और एक सिख दोनों भाई वाल हैं।"

"यह भी अच्छी रही !" इस पर कुछ लोग हंस दिए।

पीछे, मोती नगर में ड्राई क्लीनर की एक दूकान किसी सिख-सरदार की है। उसे जलाने गए तो किसी ने पुकार कर कहा, "ओ कम्बख्तो, दूकान सिख की है, पर उसमें कपड़े तो ज्यादा हिन्दुओं के ही हैं।' इस पर उसे भी छोड़ दिया।

अब बगल वाली सड़क से कुछ मनचले एक कार धकेल कर ला रहे थे। दो लड़के उसकी छत पर बैठे सवारी कर रहे थे। सावलें रग का लड़का यहां भी अपनी छड़ बराबर चला रहा था, जिससे कभी मोटरकार का एक शीशा टूटता तो कभी दूसरा, कभी उसकी छत पर गहरा गड्ढा पड जाता, कभी पुश्त पर। दूध के डिपो के निकट, चौराहे पर पहुंच कर, छत पर बैठे लड़कों को नीचे उतारने के लिए उन्होंने कार को एक बाजू उलट दिया। दोनो लड़के छलाग लगा कर, हंसते हुए नीचे उतर आए। फिर छड का एक वार मोटर की टकी पर हुआ, जिससे फौव्वारे की तरह पेट्रोल उसमें से फूट पड़ा। किसी ने माचिस से एक थिगली जलाई और उस पर फेंक दी। फिर लड़के कार के निकट से यों भागे जैसे दीवाली के समय, पटाखों की लड़ी को दियासिलाई छुवा कर भागते है। धू-धू करके मोटरकार जलने लगी।

"लो, सेठी की कार तो गई।" एक आदमी बोला।

इस पर एक आदमी ठहाका मार कर हंस दिया।

"क्यो ? इसमें हंसने की क्या बात है ?"

"यह कार सेठी की नही थी। ये लोग सेठी के घर के समाने से धकेल लाए हैं। यह कार सेठी के दामाद की है जो हिन्दू है। वह गाजियाबाद मे रहता है। हा, हा···।"

जलती कार मे से गहरे काले रंग का धुआं निकल रहा था। शीघ्र ही कार का रंग काला पड गया। अभी भी लगता नही था कि कोई कार जल रही है। धुआं कम होने पर लौंडे-लपाड़े जलती मोटर पर एक और छड़ जमाते, हंसते-बतियाते आगे बढ़ गए। चौराहे के निकट खड़े लोग भी चुपचाप वहां से निकलने लगे। भीड़ तितर-बितर होने लगी। कन्हैयालाल भी 'च-च-च, बहुत बुरा हुआ है, बहुत बुरा,' बुदबुदाता, अपने घर की ओर जाने लगा। हल्की-सी आत्म-प्रताड़ना की भावना उसके दिल को कचोटने लगी। पर उसने अपने को ढाढ़स

बंधाते हुए मन-ही-मन कहा—"इन बातों को देख कर कम-से-कम मेरी आंखों में पानी तो भर आया था ! मेरी हिस तो नही मर गई है। और लोग तो मुह-बाए देखते रह गए थे, हंसी-ठट्ठा कर रहे थे।"

रास्ते मे वही बुढ़िया जो सड़क पर मिली थी, श्यामा को फटकार रही थी, "किसी बदनसीब का सामान उठा लाई है। बेटी को भी ऐसे पाप करना सिखा रही है। लाख लानत है तुम पर। अभी जाओ, और जहां से यह सामान उठाया है, वही पर फेंक कर आओ · "

और श्यामा, बुढ़िया की सीख को अनर्गल प्रलाप मान कर सुने जा रही थी और धीरे-धीरे मुस्कराए जा रही थी।

घर पहुच कर कन्हैयालाल को सभी घटनाएं बड़ी बोहड़ और अटपटी लगी। यह कोई दंगा तो न हुआ। दगे मे तो लोग दुश्मन को पहचानते हैं, एक-दूसरे को ललकारते हैं, एक-दूसरे का पीछा करते हैं। पर यहां तो सडक खाली थी और दूकान को जो चाहे तोड़ जाए, जो चाहे जला जाए। दंगे ऐसे तो नही होते। लुटेरों में एक भी चेहरा पहचाना नही था, एक भी आदमी अपने मुहल्ले का नहीं था। क्या हम इसे दंगा कह सकते हैं या नही ?

और अब दूध की लम्बी लाइन मे खड़ा, वह तरह-तरह का वहम-गोइया, तरह-तरह के फिकरे, टिप्पणियां सुन रहा था। झुटपुटा पहले से कुछ साफ हुआ था। कैसी विडम्बना है ! इन घटनाओं के बावजूद, एक उजला-सा दिन, आने से पहले, वातावरण में अपनी चादी घोल रहा है। यहा भी वहुत-सी अटपटी बातें नजर आने लगी थी। सड़क खाली थी, दूकानें बद थी, कोई आ-जा नहीं रहा था, फिर भी दूध लेने वालो की लम्बी लाइन लग गई थी। डोलची हाथ मे पकड़े कन्हैयालाल, लाइन मे खडे और लोगों के चेहरे पहचानने की कोशिश कर रहा था।

उसके पीछे खडे दो लड़के—जो शक्ल-सूरत से घरो के नौकर जान पड़ते थे—आपस मे बतिया रहे थे। एक कह रहा था, "मुंह पर लगाने वाली क्रीम होती है या नही ? उसी की शीशियां मिली हैं। और तू ? क्या लाया ?"

"वह ड्राई क्लीनर की दूकान थी यार, लोगों ने कुछ उठाने ही नही दिया। हम तो अन्दर घुस गए थे, पर अन्दर किसी आदमी ने हमे रोक दिया : 'दूकान तो सरदार की है पर कपडे तो सभी लोगो के हैं। अपने ही कपड़े लूटोगे ? चलो, यहां से।' हमारे हाथ तो कुछ नहीं लगा।"

तभी चौधरी वहा से गुजरा। चौधरी अपने को 'सेवादार' कहता है, 'पब्लिक का सेवादार।' वक्त-बेवक्त, जब भी कोई काम हो, उसके पास जाओ तो उसी वक्त हाथ जोड़कर उठ खड़ा होता है, और बिना बात को ठीक तरह से सुने या समझे, साथ हो लेता है। "हम तो पब्लिक के सेवादार हैं," वह कहता है, "हमारा

तो जिन्दगी में कुछ बना-बनाया नही है। हमारा बाप, यह मकान हमारे नाम लिख गया है, इसी का किराया खाते हैं और पब्लिक की सेवा करते हैं।" आज चौधरी बड़ी भोंड़ी-सी टोपी पहन कर आया है, जो लगता है उसकी पत्नी ने, पुराने मोजों के धागे उधेड़कर बुन दी है क्योंकि उसमें तीन-तीन रंगों की पट्टियां लगी हैं, और ऊपर फुदना लटक रहा है। चौधरी बिल्कुल जोकर लगता है।

"चौधरी, दूध की क्या पोजीशन है, आएगा या नही ?" एक ऊंचे कद का मद्रासी लाइन मे खड़े-खड़े पूछता है।

चौधरी खड़ा हो गया और हाथ जोड़ दिए, "अभी-अभी सेंटर मे टेलीफोन किया है, बाबू बोलता है दूध तो बहुत है, आओ और आ कर ले जाओ।"

"क्या मतलब ? क्या हम दूध लेने जाएगे ? ऐसे भी कभी हुआ है ? दूध है तो भेजता क्यों नही ?"

"बोलता है दूध के तो ड्रम-के ड्रम भरे हैं पर भेजें कैसे ?"

"क्यों ?"

"सभी ड्राइवर सरदार हैं। उन्हें नही भेजा जा सकता। खतरा है ना।"

कहता हुआ चौधरी निकट आ गया, और मद्रासी के कान के पास अपना मुंह ले जाकर बोला, "कोई हिन्दू यहां ट्रक चलाना जानता हो तो जाकर ले आए।"

"यहां से कौन जाएगा ? चलाना जानता भी हुआ तो भी नही जाएगा। रास्ते मे कुछ भी हो सकता है।"

इस पर चौधरी, वही खड़े-खड़े ऊंची आवाज में बोला : "इधर, दूध लेने के लिए सभी दौड़े आएंगे, पर वहां से लेने कोई नही जाएगा। पब्लिक की सेवा करने मे हिन्दू की मां मरती है।"

चौधरी फिर से अपना मुंह लम्बे मद्रासी के कान के पास ले जाकर बोला, "कल रात वकील का बेटा बहुत बोलता था, हम यह कर देंगे, हम वह कर देंगे। हम ने कहा, साईं, तू क्या कर देगा ? यह मुहल्ला तो पहले ही शरणार्थियों का मुहल्ला है, यहां पर तो लुटे-पिटे लोग आकर सिर छिपाने के लिए बैठ गए थे, जब पाकिस्तान बना था। अब उन्ही मे से सिखों को चुन-चुन कर मारेगा ?"

लम्बा मद्रासी उसकी बात सुन रहा था और आंखें बंद किए सिर हिलाए जा रहा था। मुहल्ले भर में चौधरी की यह सिफ्त मशहूर थी, कि जो बात कहने लायक नही होती थी उसे तो वह चिल्ला कर कहता था, पर जो बात बेमानी-सी होती थी, उसे पास आ कर, कान में फुसफुसा कर कहता था।

"कल तू कहा था, चौधरी ? जब लूट-पाट मची थी ? लोग दूकानें जला रहे थे ? तू कही नजर नही आया ?"

"क्या मुझे मरना था ? वे गुण्डे, जाने कहां से आ गए थे, उनके मुंह लगने

के लिए क्या चौधरी ही बैठा है ?"

फिर आदत के मुताबिक, मद्रासी के कान के पास अपना मुंह ले जा कर बोला, "मेरे घर मे दरबार साहिब रखा है ना। एक कमरे में हमने छोटा-सा गुरुद्वारा बनाया हुआ है ना, साईं। अब किसी बदमाश को पता चल जाता तो मेरे घर को ही आग लगा देता। अब अपना ही कोई आदमी उन गुण्डों को बता देता कि इधर दरबार साहिब रखा है, तो वे मेरे घर को ही आग लगा देते। हम हिन्दू तो एक-दूसरे को ही काटते हैं ना।"

मद्रासी फिर आंखें बंद किये चौधरी का रहस्य सुनता और सिर हिलाता रहा। फिर आखें खोलकर बोला, *"शहर की क्या पोजीशन है ?"*

"इधर पीछे, संत नगर के पास सात ट्रकों को जला दिया है, इधर भी तीन मोटरें जलाई है।"

"वह मोटर किसकी है ? कहते हैं सेठी की है।"

"अरे सेठी की कहां है ? मुझसे पूछो। वह तो सेठी के दामाद की है। गाजियाबाद मे रहता है। वह हिन्दू है। उसे पता चला कि शहर में खतरा है तो बेचारा गाडी लेकर मिलने आ गया। उसकी गाड़ी जला दी। सेठी की गाडी समझकर हिन्दू की गाड़ी जला दी।"

मद्रासी की समझ में नही आ रहा था कि इस घटना पर हंस दे या अफसोस जाहिर करे।

"वेस्ट पटेल नगर के पीछे एक सरदार को भून डाला है।"

मद्रासी चौधरी के चेहरे की ओर देखने लगा। उसकी आंखें खुली-की-खुली रह गईं।

"कौन था वह ?"

"कोई बढई था। अपनी बेटी से मिलने आया था। उसे कुछ मालूम तो था नही, बलवाई आये तो बीच मे कूद पड़ा। उन्हें रोकने लगा। अब वहां कौन सुनने वाला था ? उसे वही···"

मद्रासी की आखें खुली थी और चेहरा पीला पड़ गया था, और वह चौधरी के चेहरे की ओर एकटक देखे जा रहा था।

चौधरी फिर अपने ढर्रे पर आ गया था।

"कल रात, वकील का बेटा कहने लगा, 'सभी सिख गुरुद्वारे मे इकट्ठा हो रहे हैं। असला जमा कर रहे हैं। रात को दो बजे नगी तलवारें लेकर बाहर निकल आयेंगे।' मैंने कहा, "अरे साईं, मेरे सामने तो एक भी सिख घर में से नही निकला। वे सब गुरुद्वारे मे कैसे पहुंच गए ? और इस वक्त असला कहा से लायेंगे ? सभी सिख घरो के अन्दर बैठे हैं ?"

और चौधरी ने गर्दन पर हाथ फेरते हुए, अपनी रंग-बिरंगी टोपी को माथे

पर धकेलते हुए कहा, "अरे साईं, इधर किसी को पता नहीं चल रहा कि क्या करे।" फिर मद्रासी के कान के पास मुंह ले जाकर बोला, "अभी नासमझ हैं ना, यही बात है। हिन्दू-सिख में पहले कभी झगड़ा तो नहीं हुआ ना, यही बात है, अभी दोनों कच्चे खिलाड़ी हैं," फिर हंसकर कहने लगा, "धीरे-धीरे सीख जायेंगे। हिन्दू-मुसलमान का दंगा होता है या नहीं? उसे तो हम खूब पहचानते हैं। उसे अच्छी तरह से सीख लिया है। पीछे से किसी के कदमों की आहट भी आ जाये तो पहचान लेते हैं कि हिन्दू आ रहा है या मुसलमान। क्यों साईं? पर ये तो अभी इस काम में नये हैं ना?"

फिर आवाज धीमी करके बोला, "मेरे पड़ोस में वह सरदार रहता है कि नहीं? वह लम्बा ऊंचा-सा? आज सुबह मैंने दरवाजा खोला तो देखा, वह अपने घर के बाहर खड़ा था। मैंने पूछा, 'सरदार जी, सुबह सवेरे कहां जा रहे हो?' तो बोला, 'थोड़ा घूमने जा रहा हूं।' लो सुनो, शहर मे क्या हो रहा है, और यह घूमने जा रहा है। मैंने कहा, 'सरदार जी, आज के दिन घूमने कौन जाता है?' तो कहने लगा, 'घूमने की मुझे आदत है। घर पर बैठ नहीं सकता।' वह रोज सुबह पार्क में टहलने जाता है। बड़ी मुश्किल से उसे घर के अन्दर भेजा।"

फिर चौधरी बड़े फलसफाना अंदाज में बोला :

"अभी शुरुआत है, साईं, अभी शुरुआत है। जब सीख जायेंगे तो ऐसी गलतियां नहीं करेंगे। हम लोग अभी नौसिखुआ हैं ना, इसीलिए। जब सीख जायेंगे तब तुम देखना। दूर से ही एक-दूसरे को देखकर रोंगटे खड़े हो जाया करेंगे। अभी तो बच्चा पैरों के बल खड़े होना सीख रहा है···।"

चौधरी फिर से गर्दन पर हाथ फेरते हुए कहने लगा, "कल साईं, जब दवाइयों वाले की दूकान जलाई गई, तो इसी सरदार के छोटे छोटे बेटे, पीछे दरवाजे मे से भाग कर निकल गये, आग का तमाशा देखने, यह तो हाल है। पीछे-पीछे मां भागती आई।" फिर सहसा घड़ी की ओर देखकर बोला, "अच्छा चलूं, दूध का पता लगाऊं।"

और वह मुड़कर, तोद खुजलाता, वहां से चला गया।

लाइन मे खड़े कन्हैयालाल को लगा जैसे हम सब किसी कगार पर खड़े हैं और एक झीनी, कांच की दीवार हमे गिरने से बचाये हुए है। यह कांच की दीवार चटक गई तो बचाव का कोई भी साधन नहीं रहेगा और हम सीधे किसी अथाह गर्त में जा गिरेंगे। और उसने फिर बुदबुदा कर कहा :

"बहुत बुरा हो रहा है, बहुत बुरा, च-च-च।"

और उसे भास हुआ कि प्रत्येक संकटपूर्ण घटना की सूचना मिलने पर, वह पिछले तीन साल से एक ही वाक्य दोहराता चला आ रहा है। जब आतंक-वादियों द्वारा हत्याएं हो रही थीं, तब भी वह यही कहता था, जब स्वर्ण मन्दिर

में फौजी कार्रवायी हुई तो भी उसने यही कहा, जब इंदिराजी की नृशंस हत्या हुई तो भी वह यही कहता रहा, और अब जब उसे राष्ट्र, कगार पर खड़ा लग रहा है, तो भी उसके मुह से यही शब्द निकल रहे हैं।

बढ़ई सिख के जिन्दा जला दिए जाने की बात सुन कर उसकी टांगें कांपने लगी थी। यो भी वह बड़ा खिन्न और उदास महसूस करने लगा था। खड़े-खड़े वह थक भी गया था। न जाने दूध आता भी है या नही। उसका मन हुआ कि वहां से निकल जाए। तभी उसकी नजर अपने निकट ही खड़ी, अपने मित्र सक्सेना की बेटी पर पडी जो हाथ मे तीन डोलचियां उठाये खडी थी। कन्हैयालाल को बडा अजीब-सा लगा। यहां दूध का कोई ठिकाना नही, न मालूम आएगा भी या नही और इधर यह लडकी तीन डोलचियां उठाये खडी है।

"तुम तीन डोलचियां उठा लाई हो, बेटी। तुमने यह लाइन देखी है। अगर सभी लोग तीन-तीन डोलचिया दूध लेना चाहेंगे तो कितने लोगों को दूध मिलेगा ?"

लड़की झेंप गई। फिर, धीरे-से बोली, "एक डोलची साथ वालों की है, सरदार अंकल की, दूसरी ऊपर वालों की, एक हमारी।" साथ वाले ? तभी कन्हैयालाल के मन मे कौंध गया कि वहा दोनों घरो मे सिख परिवार रहते हैं। लड़की उनके लिए भी दूध लेने आई है।

तभी कन्हैयालाल की नजर लाइन में खड़े अनेक अन्य लोगो पर पड़ी जो अपने हाथ मे दो-दो या कही-कही तीन-तीन डोलचियां भी उठाये खड़े थे।

देखकर उसका मन जाने कैसा हो आया। वह उद्वेलित-सा महसूस करने लगा।

थोडी दूरी पर गंजे सिर का एक आदमी, लाइन मे खड़े किसी व्यक्ति से, किसी घर का अता-पता पूछ रहा था। कन्हैयालाल ने उसे पहचान लिया। बलराम था, उसकी जान-पहचान का था, राजेन्द्र नगर मे रहता था। पर यहां क्या करने आया है ?

"बलराम ?" कन्हैयालाल ने आवाज लगाकर उसे बुलाया।

बलराम ने सिर ऊंचा किया, और लाइन में कुछ देर तक देखते रहने के बाद कन्हैयालाल को पहचान लिया और आगे बढ़ आया।

"इधर सुबह-सुबह क्या करने आए हो ? कही आग लगाने आए हो क्या ?"

बलराम मुस्कराया, "अब यही काम करना बाकी रह गया है, यही करने आया हूं।" फिर धीरे से बोला, "इधर किसी से मिलने आया हूं।"

'कौन है वह ?"

"एक बुजुर्ग सरदार जी हैं। पीछे पाकिस्तान से हैं, हमारे ही कस्बे के हैं। हमारे पिताजी के बड़े दोस्त थे। मैंने सोचा उनकी खैर-खबर ले आऊं। कल बड़ी

गड़बड़ रही है ना ।"

फिर आस-पास के मकानों को नीचे-ऊपर देखकर बोला, "यही कही रहते हैं। अब मैं मकान भूल गया हूं। बहुत दिनो से मेल-मुलाकात नही हुई थी।" फिर कन्हैयालाल की तरफ देखकर मुस्कराता हुआ घूम गया।

"शायद पिछली सड़क पर रहते हैं। सरदार केसरसिंह उनका नाम है, मोटर-पार्ट्स की दुकान करते हैं।" और वह पिछली सड़क की ओर घूम गया।

उसे जाते देखकर कन्हैयालाल को लगा जैसे हम लोग इतिहास के झुटपुटे में जी रहे हैं। आपसी रिश्तों के इतिहास का पन्ना पलटा जा रहा है, दूसरा खुल रहा है। इस अगले पन्ने पर जाने हमारे लिए क्या लिखा होगा।

तभी कही दूर से घरघराने की-सी आवाज सुनाई दी। लाइन में खड़े सभी लोगों के कान खड़े हो गए। किसी प्रकार की भी ऊंची आवाज से लोग चौंक-चौंक जा रहे थे। फिर एक आदमी, जो किसी घर का नौकर जान पड़ता था, मोड़ काटकर भागता हुआ सामने आया : "दूध आ गया! दूध की लारी आ गयी!"

और लाइन में अपनी जगह पर आकर खड़ा हो गया। दूध कैसे पहुंच गया? सभी की आंखें सड़क के मोड़ की ओर लग गयीं।

लारी ने मोड़ काटा और इठलाती हुई-सी डिपो की ओर आने लगी। हिचकोले खाती, जगह-जगह से घिसी-पिटी, पर लाइन मे खड़े लोगों की नजर मे सर्वांग सुन्दरी लग रही थी। लाइन में हरकत आ गई। वह टूटने-टूटने को हुई, पर शीघ्र ही संभल गई। लम्बी लाइन एक बार टूट गई तो वावेला मच जाएगा।

ऐन डिपो के सामने बस आकर रुकी। ड्राइवर ने खिड़की में से सिर बाहर निकाला और पीछे खड़े क्लीनर को आवाज लगाई। फिर दरवाजा खोल कर पायदान पर खड़ा हो गया।

अरे, ड्राइवर तो सरदार है! यह यहां कैसे पहुंच गया? लम्बी लाइन में खड़े सभी लोग सिख-ड्राइवर की ओर अचम्भे से देखे जा रहे थे।

कन्हैयालाल से नही रहा गया। वह लाइन मे से निकल कर लारी के पास जा पहुंचा।

"सरदार जी, आप कैसे···?"

इस पर सिख-ड्राइवर मुस्काया और बोला, "बीबा, बच्चों ने दूध तो पीना है ना! मैंने कहा, चल मना; देखा जाएगा जो होगा। दूध तो पहुंचा आयें।"

और क्लीनर को दूध का पाइप लगाने की हिदायत करने लगा।

महीप सिंह

दिल्ली कहां है ?

लाहौर की सड़कों पर घूमना भी एक अजीब अनुभव है। व्यक्ति अकेला हो तो यह अनुभव और भी मजेदार हो जाता है। अपने होटल से निकलकर मैं माल रोड की फुटपाथ पर पैदल ही चल पड़ा था। दिल्ली वापस आने की फ्लाइट शाम को पांच बजे की थी। बीच में तीन-चार घंटे का समय गुजारना था। पीछे से आवाज आई, "सरदारजी, सत्स्रीकाल।"

मैंने देखा, दो साइकिलों पर चार लड़के मेरे पास से गुजर रहे थे और हाथ हिलाते हुए बड़ा खुश दिखाई दे रहे थे। मैंने मुस्कराकर जवाब में अपना हाथ हिलाया। उन्होंने साइकिलों की गति धीमी कर दी। उनमें से एक बोला, "पाकिस्तान केहो जेहा लग्गा ?" (पाकिस्तान कैसा लगा।)

मैंने कहा, "बड़ा चगा, बड़ा सोहणा ते निग्घा।" (बहुत अच्छा, बहुत सुन्दर और बहुत स्नेहपूर्ण।)

मेरी बात सुनकर उनके चेहरे खिल गए। यह पाकिस्तान की वह पीढ़ी थी, जिसने भारत के नाम पर जंग, नफरत और खिचाव ही सुना था, जिसने हिन्दी फिल्मों और उनमे काम करने वाले कलाकारो का नाम ही सुना था।

मैं चलता-चलता असेंबली के भवन तक पहुंच गया। इस बीच रास्ते में मुझे बहुत लोग मिल चुके थे। प्रौढ़ आयु के मर्दों ने मुझे बहुत सकोच से देखा था। औरतों ने अपने दुपट्टों की कनखियों से झाका था, मुस्कराई थीं और फिर आपस में बातें करने लग गई थी और किशोर-जवान लडकों ने मुझे घेर लिया था और वारी-बारी से मुझसे हाथ मिलाया था। पाकिस्तान की अपनी इस यात्रा मे मुझे लगा था, वहां हर नौजवान लड़के और लड़की के दिल मे दिल्ली और बम्बई देखने की बड़ी लालसा है, वैसी ही जैसे हमारे नौजवानों मे लदन, पेरिस या न्यूयार्क देखने की है। कल जब मैं अनारकली से अपने होटल वापस आया था तो स्कूटर वाला मुझसे भाडा नही ले रहा था और मैं भाड़ा देने की लगातार जिद्द कर रहा था।

वह बोला, "देखिए साहब, मैं आपसे पैसे तो नही लूंगा, पर इसके बदले में

आप मेरा एक काम कर दीजिए।"

मैंने कहा, "बोलो, मैं आपका क्या काम कर सकता हूं ?"

उसकी आंखों में बेहिसाब अनुनय भर आया था, "देखिए साहब, आपके घर में किसी बच्चे-बच्ची की शादी हो तो दावतनामे का एक कार्ड मुझे भी भेज दीजिएगा।"

मैं उसका मनोरथ नहीं समझ सका था।

वह बोला, "हुजूर, मैं जबरदस्ती आपका मेहमान नहीं बनूंगा। मैं आपके दावतनामे की बिना पर इंडियन हाई कमीशन से वीजा ले लूंगा—दिल्ली-बंबई देखने की मेरी बड़ी तमन्ना है। यकीन कीजिए, मैं आपको किसी तरह की तकलीफ नहीं दूंगा।"

मैंने उसका हाथ दबाया था। अपना पता उसे दिया था और उसका पता ले लिया था। उसे यह भरोसा भी दिलाया था कि मेरे घर में जब भी कोई शादी होगी, मैं उसे जरूर दावतनामा भेजूंगा।

असेंबली भवन के पास पहुंचकर मैंने सोचा, अब क्या करूं। दोपहर का एक बजा था। होटल मुझे चार बजे तक लौटना था। मैं दूकानों में घुसकर चीजें देखने लगा। खरीदारी मुझे करनी नहीं थी, क्योंकि पिछली रात अनारकली बाजार से मैं बहुत कुछ खरीद चुका था। दूकानदार बड़ी रुचि से मुझे चीजें दिखा रहे थे, पर अनारकली से यहां का बाजार काफी महंगा दिख रहा था, वैसे ही जैसे दिल्ली में करोल बाग और कनाट प्लेस के भावों का अंतर साफ दिखाई देता है।

फुटपाथ पर ही 'कोल्ड ड्रिंक' बेचने वालों की अनेक रेहड़ियां लगी हुई थीं। उनके पास से निकला तो लगभग सभी ने आवाज दी, "प्राजी आओ, कुछ ठंडा-शंडा पी लओ।"

जब से लाहौर आया था, मैं लगातार 'पेप्सी कोला' पी रहा था। मुझे याद है, एक जमाने में दिल्ली में भी 'पेप्सी कोला' चला था, फिर बंद हो गया। कोका कोला का एकछत्र राज भी अब दिल्ली में टूट चुका है। पाकिस्तान में दोनों ही धड़ल्ले से चल रहे हैं।

मैं सोच रहा था कि उनका शुक्रिया अदा करता हुआ मैं उनके पास से निकल जाऊंगा। तभी एक अधेड़ से व्यक्ति ने मेरा रास्ता रोक लिया, "प्राजी, हमारे पास से कुछ पी लो और हमारा दिल ठंडा कर दो।"

उसने अपने दोनों हाथों से मेरा दाहिना हाथ थाम लिया। उसके हाथों में कुछ ऐसी जकड़ थी कि मुझे लगा कि मुझ पर वशीकरण हो गया। मुझे लगा कि जैसे गहरे पानी के बीच उसने मुझे अपने बलिष्ठ हाथों में उठा लिया है, मैं अपना सारा भार खो बैठा हूं।

उसने पेप्सी कोला की दो बोतलें खोलकर एक जग में उड़ेल दी। फिर उसने सोडे की दो बोतलें खोलकर उसमे डाल दी। फिर उसने एक बड़ा-सा नीबू काटकर उसमे निचोड़ा और नमक मिलाया। मैंने कहा, "इतना कौन पिएगा?"

उसने मुझे इस तरह देखा, जैसे सारे आकाश को उसने अपनी आंखो में समेट लिया हो, "मैं भी तो पिऊंगा—बिछुड़े हुए भाई के साथ दो घूट ठंडा पानी पीने का सुख अल्लाह पता नही फिर कब देगा!"

कितने ही लोग हमारे आस-पास जमा हो गए थे। बड़े गिलासों मे हम दो लोग ठंडा पी रहे थे और बाकी लोग हमें देख रहे थे।

दो बजने वाले थे। मैंने सबका शुक्रिया अदा किया और वापस मुड़ लिया। सब कुछ बहुत अजीब-सा लग रहा था। एक ओर खून में डूबी हुई जंग और नफरत से सराबोर कुछ ही साल पहले की यादें, दूसरी ओर पेप्सी कोला, सोडा, नीबू के ठंडे पेय में तैरता हुआ वर्तमान। दोनों सच्चाइयों को अपने कंधो पर लादे हुए लोग—कैसी अजीब लड़खड़ाती हुई चाल चलते जा रहे हैं।

चौराहा पार करने के लिए मै हरी बत्ती की राह देख रहा था। एक व्यक्ति मेरे पास से निकला और ठिठककर खड़ा हो गया। लाहौर मे ऐसे बहुत से लोगों से मिलने और उनकी जिज्ञासाओं को शांत करने का मुझे पिछले तीन-चार दिनों में खासा अनुभव हो चुका था। इसलिए मैंने उसकी तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया, पर वह एकदम मेरे सामने आ गया, "मैं आपके दो-चार मिनट ले सकता हूं।"

मैंने कहा, "बडी खुशी से।"

"आप हिन्दुस्तान में कहां रहते हैं?"

"दिल्ली में।" मैं बोला, पर उसी के साथ मैंने महसूस किया, उसकी आंख एकदम तरल हो आई हैं।

"दिल्ली में···!" उसने फट्-से अपने दोनो हाथों में मेरा हाथ ले लिया, "दिल्ली में कहा रहते हैं?"

"करोल बाग मे···" मैं बोला।

"मैं फैज रोड पर रहता था।"

"आप यहां कब आए?" मैंने पूछा।

"मुल्क के बंटवारे के वक्त। बंटवारा क्या हुआ, हमारा तो खानदान ही बट गया। आधे रिश्तेदार यहां, आधे वहां—हम एक दूसरे के लिए परदेशी बन गए हैं।"

उसका गला काफी भर्राया हुआ था।

"आपके पास थोड़ा वक्त हो तो आप दिल्ली के बारे मे मुझे कुछ बताइए।"

मैंने उसकी आंखों मे झांका, "क्या आप उसके बाद एक बार भी दिल्ली

नहीं गए ?"

उसने अपनी गर्दन हिला दी।

"लेकिन इतने साल बाद भी दिल्ली मेरे दिल में धड़कती है।" उसने मेरा हाथ उठाकर अपनी छाती पर रख दिया, "आप मेरे दिल की धड़कन महसूस कर रहे हैं?'

कौन किसके दिल की धड़कनों को महसूस करे ? कौन किसकी आंखों का रंग देखे ? दिल्ली मे मैंने कितने ही लोगों को लाहौर के लिए मरते देखा है। लाहौर का नाम सुनते ही कितनों की बांछें खिलती हैं और आंखों का रंग एकदम लाल हो जाता है। कल ही मुझे मेरे लाहौरी दोस्त शाहीन ने पाकिस्तान के मशहूर पंजाबी कवि उस्ताद दामन की एक कविता की दो पंक्तियां सुनाई थी :

'लाली अखियां दी पई दसदी ए,
रोए तुसी वी हो, रोए असी वी हां।"

(आंखों की लाली बता रही है कि तुम भी रोए हो, हम भी रोए है)।

मैंने कहा, "पिछले तीस चालीस साल में दिल्ली बदल गई है···बहुत दूर-दूर तक फैल गई है।"

"अच्छा···जामा मस्जिद ठीक है ना उसके चारों तरफ बाजार लगता था। हम वही मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठकर कबाब खाते थे।" उसने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

मैंने कहा, "जामा मस्जिद अब पहले से ज्यादा खूबसूरत लगती है। उसके चारो ओर का बाजार ढाबे—कबाब की दूकानें—सब वहां से हटा दिए गए हैं। वहां अब बहुत खूबसूरत बगीचे भी लगा दिए गए हैं···"

"अच्छा···!" उसकी आवाज कुछ मद्धिम-सी पड़ गई, "फूल वालों की सैर का मेला तो अब नहीं लगता होगा ?"

मैंने कहा, "नहीं, फूल वालों की सैर को अब भी धूमधाम से मनाया जाता है। अब महरौली जाने के लिए वीराने से होकर नहीं गुजरना पड़ता—अब तो वहां तक शहर आबाद हो गया है—खूबसूरत कालोनियां··· सड़कें···मकान··· और बड़े-बड़े बाजार···!"

वह बड़े उत्साह से बोला, "छुटपन में हम लोग रामलीला देखने जाया करते थे। रामलीला की सवारी निकलती थी, तो हम उसके साथ-साथ चलते थे। बड़ा मजा आता था। एक बार की बात बताऊं—मुझे अच्छी तरह याद है—जैसे बस कल की बात हो।" उसके प्रौढ़ चेहरे की कितनी ही लकीरें एक जगह सिमट आईं। "मेरा एक दोस्त था—परसू—वैसे उसका नाम परसराम था, पर सब लोग उसे परसू कहते थे। राम और सीता की सवारी निकल रही थी—परसू उनकी बगल मे नकली मूंछें लगाए, हाथ में एक जड़ाऊ डंडा लिए खड़ा था। मैंने

साले को पहचान लिया और सड़क से चीखा 'परसू, ओए परसू !' परसू ने कनखियों से इधर-उधर देखा। भीड़ में वह मुझे नहीं देख पाया। मैंने फिर बुलाया, 'अब परसू, साले इतनी बड़ी मूंछें कहां से लाया ?' अब उसकी नजर मुझ पर पड़ गई। मैंने नीचे से ही हाथ हिलाया। उसने वहां से हाथ हिला दिया। इतने में पीछे से किसी ने उसे एक घूसा मारा—और परसू की मूंछें नीचे गिर गईं—हम लोग हंसते-हंसते सड़क पर ही लोटपोट हो गए।"

वह ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा। आस-पास आते-जाते लोग हमारे पास ठिठक गए।

"सुना है, दिल्ली की आबादी बहुत बढ़ गई है ?" उसने पूछा।

"हां,···" मैं बोला, "करीब सत्तर लाख—आबादी बढ़ती जा रही है और शहर भी बढ़ता चला जा रहा है।"

"अब अगर मैं दिल्ली आऊं तो उसे पहचान भी नहीं सकूंगा—लेकिन मरने से पहले मैं एक बार दिल्ली जरूर देखना चाहता हूं—पता नहीं, अल्लाह मेरी यह तमन्ना पूरी करेगा भी या नहीं।" उसकी आवाज एकदम उदास हो गई थी।

मैंने कहा, "आपकी मुराद पूरी जरूर होगी—जब भी दिल्ली आने का प्रोग्राम बन जाए, मुझे जरूर खबर कीजिएगा।" मैंने जेब से अपना कार्ड निकाला और घड़ी देखी। कार्ड उसके हाथ में थमाकर मैं चलने को हुआ तो उसने मुझे फिर रोक लिया, "आपका बेशकीमती वक्त ले रहा हूं···" कहते-कहते उसकी आंखें डबडबा गईं, "क्या करूं—उस हरामजादी—धरती की याद नहीं भूलती, जहां मैंने जनम लिया था—जहां मेरा बचपन गुजरा था—जहां मेरी जवानी परवान चढ़ी थी।"

उसने दोनों हाथों से मेरा हाथ पूरी ताकत से दबाया, फिर एकदम झटके के साथ छोड़कर आगे बढ़ गया।

मैं एकटक उसे जाता देखता रहा।

मैं सड़क पार करके होटल की ओर चल दिया। एकाएक मुझे अपने चाचा नारायण दास की याद आ गई। उन्नीस सौ इकहत्तर की भारत-पाकिस्तान लड़ाई में ढाका में हजारों पाकिस्तानी सिपाहियों ने आत्मसमर्पण कर दिया था। ये पाकिस्तानी सिपाही भारत के किसी रेडियो स्टेशन से सुबह-शाम बोलकर पाकिस्तान में अपने परिवार वालों को अपना संदेश भेजते थे—"मेरा नाम—मैं पाकिस्तान के जिला—तहसील—गांव का रहने वाला हूं—मेरे वालिद का नाम है—अगर कोई पाकिस्तानी भाई मेरी बात सुन रहा हो तो उनसे गुजारिश है कि मेरी खैर-खैरियत की खबर मेरे घर वालों को पहुंचा दें।"

चाचा नारायण दास को पता नहीं क्या खब्त थी कि वे सुबह-शाम यह प्रोग्राम जरूर सुनते थे। एक दिन कोई गुलाम रसूल बोल रहा था—"मैं सूबेदार

गुलाम रसूल वल्द अल्लारक्खा—गांव कुंजाह, तहसील फालिया, जिला गुजरात का रहने वाला हूं—मैं खैर-खैरियत से हूं—अगर कोई पाकिस्तानी भाई मेरी आवाज सुन रहा हो तो मेरे वाल्दान को इसकी इत्तला दे दे···!"

यह नाम सुनते ही चाचा नारायण दास एकदम चीख उठे थे। मेरे पिताजी को आवाज देते हुए बोले थे—"सुना तुमने, कुंजाह के अल्लारक्खा का पुत्तर गुलाम रसूल बोल रहा था—वह भी पाकिस्तानी फौज का कैदी है।"

मेरे पिताजी के मुंह से तुरन्त कुछ निकला नहीं था, पर चाचा नारायण दास की उत्तेजना सभी हदें तोड़ रही थी—"अपने गांव कुंजाह का लड़का गुलाम रसूल···मेरे यार अल्लारक्खा का लड़का है·· सूबेदार गुलाम रसूल···"

घर में हम सब लोगों को लग रहा था कि कुंजाह—कुंजाह की रट लगाए बूढ़े चाचा नारायण दास सचमुच पागल हो गए हैं।

रमेश उपाध्याय

सफाइयां

प्रापर्टी डीलरों का तो धन्दा ही ऐसा है भाई साब। डेली सवेरे सात-आठ बजे निकलना, रात को नौ-दस बजे वापस घर पहुचना। छुट्टी वाले दिन तो और भी ज्यादा काम रहता है। काम तो मेरे को आज भी बडा सारा था, लेकिन मैंने सोचा, जरा पता करता चलू कि भाईसाब मेरे से क्यू नाराज हैं।

सुना, कल मेरे बच्चे आपसे मिलने आए थे? क्या कहते थे? यू, आप ना भी बताओ तो मेरे को पता है, उन्होंने आपको क्या कहा होगा। आजकल वो मेरे सारे दोस्तो से, रिश्तेदारो और वाकिफकारों से एक ही बात कहते फिर रहे हैं। तकलीफ मेरे को ये सुन के हुई कि आप मेरे इतने करीबी दोस्त होके भी, सारी बातों के जानकार होके भी, ये मानते हो कि उनकी मा मरी नही, उसको मारा गया है।

यू, मैं किसी गलतफहमी में नही रहता भाईसाब! मेरे को पता है, लोग मेरे बारे मे क्या सोचते हैं। मुह पे चाहे कोई कुछ ना कहे, सोचते सब यही हैं कि मैंने अपनी बीवी को जला के मार डाला है। लेकिन आपसे मेरे को ये उम्मीद नही थी। आजकल दुनिया मे सबसे ज्यादा गलत बात यही हो रही है कि लोग हकीकत का पता खुद नही लगाते, सुनी सुनाई बातो पे विश्वास कर लेते हैं। लेकिन आप तो पढे-लिखे समझदार आदमी हो, मेरे दोस्त भी हो, खुद आके मेरे से पूछ सकते थे कि सुरिंदर बात क्या है?

मैं और लोगो की परवाह नही करता, क्योकि वो मुह पे कुछ कहते हैं, पीछे कुछ। सामने आके कोई कहे भी तो दूसरो से मै ये कह सकता हू कि हांजी, करा है मैंने अपनी वाइफ का कतल। खुद अपने हाथो जला के मारा है उसको। बच्चो की जिन्दगी बरबाद कर दी है सौतेली मां को उनके सर पे बिठा के। बोलो, क्या कर लोगे मेरा? पुलिस के पास जाओगे? कोर्ट मे जाके मेरे पे केस चलाओगे? जाओ, चलाओ। मैं किसी से नही डरता। लेकिन भाईसाब, आप भी मेरे बारे मे गलत ख्याल रखो, ये मेरे को मंजूर नही। एक आप ही तो हो, जिससे मैं दिल की बात कह सकता हूं, क्यूकि आप मेरे से बिल्कुल स्पष्ट और जस्ट बात

करते हो। आपकी बातों में मेरे को छल-कपट और स्वार्थ की बू नहीं आती।

इसीलिए कल बच्चों से आपके ख्यालात सुनके मेरे को बड़ा अफसोस हुआ। मैं उसी वक्त आपके पास आने वाला था, लेकिन रात बहुत हो गई थी। फिर मैंने सोचा, कल छुट्टी है, कल ही फ़ुरसत से जाके बात करूंगा।

आप ये ना समझना कि मैं मेरे बच्चों की शिकायत लगा रहा हूं, या कि मेरे को उनसे प्यार नहीं है। लेकिन आप नहीं जानते भाईसाब, मेरे बच्चे बड़ी जालिम चीज हैं। आप ही बताओ, दिल्ली में डेली दो-चार औरतें सुइसाइड करती हैं, क्या सारियों के बच्चे अपने बाप को मां का कातिल समझ के उससे लडने लग जाते हैं? लेकिन मेरे बच्चे मेरे घर को अपोजीशन पार्टी का दफ्तर बनाए हुए हैं। घर के अन्दर मेरे खिलाफ मोर्चा लगाया हुआ है, बाहर मेरे खिलाफ प्रोपेगंडा करते घूमते हैं। जस्ट-अनजस्ट डिमांडें करते हैं और मेरे से लड़ते हैं।

लोग कहते हैं, सौतेली मां के आ जाने से बच्चों को तकलीफ हो ही जाती है, लेकिन मेरे बच्चों के साथ ऐसी कोई बात नहीं। सुम्मी को आप जानते हो, कितनी स्वीट और साइलेंट नेचर वाली लड़की है। फिर वो कोई सौतेली मां नहीं, उनकी सगी मासी है। बहन के बच्चों को बिल्कुल अपने बच्चो की तरह प्यार करती है। बच्चे भी कोई दूध पीते बच्चे नहीं, समझदार हैं। अमरेश बीए फर्स्ट इयर मे आ गया है, अजू ग्यारहवी में पढ रही है, अनीता नौवी मे। तीनों को मैंने दिल्ली के वन ऑफ दी बेस्ट पब्लिक स्कूल मे डाल के पढ़ाया है।

उनको तकलीफ क्या है? खाने-पहनने को अच्छे-से-अच्छा मिलता है। घर का कोई काम उनको करना नहीं पड़ता। नौकर है, आया है। जो चीज चाहते हैं, मैं दिलाता हू। कई चीजें सुम्मी खुद ही उनके वास्ते ले आती है। ब्लैक एंड ह्वाइट टीवी पहले से था, उनके कहते ही मैंने उनको कलर टीवी लाके दिया। फिर वीसीआर भी ले के आया। अमरेश को स्कूटर पहले ही दिला रखा था, लेकिन उसकी जिद्द पर मैंने फियेट होते-सोते नई मारुती भी खरीदी। तीनों को हर नए फैशन की ड्रेसें सिलवा के देता हू। जब कहते हैं, फाइव स्टार होटलों में ले जा के उनको लंच और डिनर खिलाता हूं। शिमला, कश्मीर या साउथ वगैरह घूमने जाना चाहते हैं तो उसका भी इन्तजाम करता हूं। ऊपर से तीनो को कैश पाकिट मनी देता हू, जिसका कोई हिसाब मैं नहीं रखता। आप बताओ, उनको प्यार करने मे मैंने कोई कमी रक्खी है? फिर भी वो मेरे से नफरत करते हैं, सुम्मी से नफरत करते है, हम दोनों को अपनी मा का कातिल बताते हैं।

यूं, भाईसाब, कभी-कभी मेरे को भी लगता है कि कसूरवार मे ही हूं। ना सुम्मी के साथ मेरा अफेयर होता, ना उम्मी मरती, ना ये बच्चे इस तरह बिगड़ते। लेकिन फिर ख्याल आता है, मैं कौन हूं? ऊपर वाला जो चाहता है, वही होता

है। मैं बच्चों को भी यही समझाने की कोशिश करता हूं कि तुम्हारी मां की मौत आई हुई थी। परमेश्वर की मर्जी के खिलाफ कौन उसको बचा सकता था? लेकिन आजकल के बच्चे तो पैदा होते ही नास्तिक होते हैं ना! ऊपर से ये जो नारी-मुक्ति वाली बहनजियां पैदा हो गई हैं, ये भी देश का भट्ठा बिठाने में लगी हुई हैं। इनके ख्याल से जल के मरने वाली हर औरत मकतूल है और ऐसी हर औरत का मर्द उसका कातिल। इस सबका असर तो बच्चों पर पड़ना ही हुआ।

लेकिन आप, भाईसाब, यकीन करो ना करो, मुम्मी को मेरे बच्चे बेकार बदनाम करते हैं। उम्मी को तो यूं भी किसी दिन सुइसाइड करके मरना ही था। दुनिया में कोई सही दिमाग वाला बंदा सुइसाइड नही करता। उम्मी, ईश्वर उसकी आत्मा को शांति दे, शुरू से ही कुछ पागल-सी थी। पहले मेरे को इस चीज का ख्याल नही हुआ था, लेकिन उसके मरने के बाद मेरे को ज्यूं-ज्यूं उसकी सारी बाते याद आती गईं, मेरे को यकीन होता गया कि वो पागल ही थी।

उसके पागलपन का पहला सबूत तो आप ये समझो कि एक पैसे वाले परिवार की लड़की होके भी उसने मेरे जैसे नाचीज बंदे से लव मैरिज करी। हालांकि मेरे मा-बाप बहुत ज्यादा गरीब नही थे; उन्होंने मेरे को जहां तक हो सका, अच्छा खिलाया, अच्छा पहनाया, बीए तक पढ़ाया भी। ये भी सही है कि मैं जब बीए मे उम्मी के साथ पढ़ता था, काफी हैल्दी, हैंडसम और स्मार्ट लड़का हुआ करता था; कोई भी लड़की मेरे को प्यार कर सकती थी; लेकिन उम्मी ने अपने जैसे स्टैंडर्ड वाले लड़कों को छोड़ के मेरे को प्यार करा। चलो, प्यार तो होता रहता है, लेकिन उसने शादी भी मेरे से ही करी, जबकि मैं उस वक्त एड-मिनिस्ट्रेशन मे लोअर डिवीजन क्लर्क ही था।

सच कहता हूं भाईसाब, पहले-पहल तो मेरे को विश्वास ही नही हुआ था कि वो मेरे को प्यार करती है। उसने खुद बता रक्खा था कि उसके फादर मरते वक्त काफी तगड़ी प्रापर्टी छोड़ गए थे। एक्साइज इस्पेक्टरों की तो, आप जानो, अंधी कमाई होती है। अपनी सर्विस में काफी पैसा बनाया था उन्होंने। रानी बाग मे अपना मकान तो बना ही लिया था, उत्तम नगर मे एक प्लाट भी लेके डाला हुआ था। फिर, पीएफ था, इंश्योरेंस था, फिक्स डिपाजिट था। बैंक बैलेंस भी काफी तगड़ा ही होगा। ऊपर से मकान का पिछला पोर्शन किराए पे चढाया हुआ था, जिसका हर महीने दो-ढाई सौ रुपए किराया आ रहा था। ये सब सोच-सोच के मेरे को बड़ा ताज्जुब होता था कि इतनी अमीर लड़की मेरे जैसे मामूली हैसियत वाले लड़के से प्यार क्यूं करती है!

आखिर एक दिन मैने उससे पूछ ही लिया। सुन के वो कहती है, "सुरिंदर, पैसा अपने घर में मैंने बहुत देखा है। लेकिन ये भी देखा है कि पैसा इंसान को इंसान नही रहने देता। पापाजी को पैसा पैदा करने की ऐसी धुन थी कि वो दिन-

रात उसी मे खोए रहते थे। खूब कमाते थे, खूब उड़ाते थे। अक्सर घर से बाहर रहते थे और खूब शराब पीते थे। चाईजी का, हम बच्चों का कोई ख्याल नहीं। हफ्तों हम लोगों को उनकी सूरत देखने को नहीं मिलती थी। घर आते भी थे तो नशे में टुन्न। चाईजी शिकायत करतीं तो झगड़ा, मारपीट। हम बच्चों को हमेशा डांटते ही रहते। मारते भी थे। नशा उतर जाने पर पछताते थे, रोते थे, माफिया मांगते थे और प्यार जताने के लिए कभी खूब सारे नोट निकाल कर दे देते थे, कभी बाजार ले जा के चीजें दिला देते थे। बस, तभी से मेरे दिल मे ये बात आ गई कि मेरे को किसी ऐसे आदमी के साथ शादी नहीं करनी, जो पैसे के पीछे पागल रहे। मैं चाहती हूं, बंदा गरीब ही क्यूं ना हो, मेरे को प्यार करे, मेरे पास बैठे, मेरा सुख-दुख शेयर करे। मैं ऐसे आदमी के साथ रूखी रोटी खाके भी गुजारा कर लूंगी, कोई शिकायत नहीं करूंगी।"

उस वक्त भाईसाब, मेरे को उसकी ये बातें बहुत अच्छी लगती थी। पिक्चरों में भी इस तरह के डायलाग मेरे को बहुत अच्छे लगते थे। पिक्चरों में मैंने कई बार अमीर लड़कियों को गरीब लड़कों के साथ प्यार और शादी करते देखा था, इसलिए मैं ये सोच के खुश भी होता था कि देखो, हकीकत मे मेरे साथ ऐसा हो रहा है। लेकिन आज सोचता हूं तो लगता है, उम्मी का वो प्यार सिर्फ एक पागलपन था, जिसकी सजा उसको कभी-ना-कभी मिलनी ही थी।

उसके पागलपन का दूसरा सबूत ये है कि वो हद दर्जे की आदर्शवादी थी। लव मैरिज कई लोग करते हैं, लेकिन ये नहीं कि पेरेन्ट्स के पास पैसा होते-सोते कोई लड़की अपनी शादी बिना दहेज के कराना चाहती हो। ये नहीं है कि उसकी मदर—जिनको वो 'चाईजी' कहती थी'' बहुत कंजूस औरत थी' और मैं तो कहता हूं कि वो कंजूस ना होतीं तो शायद उम्मी की मौत इस तरह ना होती – लेकिन विधवा ही क्यूं ना हो, गरीब ही क्यों ना हो, कोई मां ऐसी नहीं होती, जो बेटी की शादी मे कुछ भी ना दे। फिर चाईजी के पास तो पैसा था, दे भी सकती थी, ज्यादा नहीं, थोड़ा-मोडा दहेज तो देना ही था उन्होंने। लेकिन उम्मी अड़ गई। मेरे को कहती है, "अपन कोर्ट मे मैरिज करेंगे। आगे ही जब हमने पैसे वालों की जिन्दगी नहीं जीनी तो शादी के वक्त ही क्यूं अमीरों वाली शान दिखायें ?"

ईमानदारी की बात है भाईसाब, मेरे को ये सुन के अच्छा नहीं लगा। मेरे पेरेंट्स को तो बहुत ही बुरा लगा, जो ये सोच के बैठे थे कि सुरिंदर की शादी में तगड़ा दहेज मिलेगा। मैं खुद ये सोचता था कि शादी में अगर ठीक-ठाक दहेज मिल गया तो नौकरी छोड़ के कोई छोटा-मोटा बिजनेस डाल लूंगा। मां-बाप ने मेरे को समझाया भी कि ऐसी पागल लड़की से शादी ना कर, लेकिन मैं उम्मी को वाकई प्यार करता था और उसके विचारों का असर मेरे पर भी उस वक्त

इतना गहरा था कि मैं भी आदर्शवादी बन गया। मां-बाप की मरजी के खिलाफ बिना दहेज वाली शादी के लिए तैयार हो गया। उधर चाईजी के तो मजे आ गए। उनको उम्मी की शादी मे एक नयी पाई नही खरचनी पड़ी।

उम्मी की मौत के बाद एक दिन नारी-मुक्ति वाली बहनजियां मेरे घर के आगे प्रदर्शन करने आ गईं। वो समझती हैं कि जितनी भी औरतें जल के मरती हैं, दहेज के लिए जला के मारी जाती हैं। मैंने उनको अपनी शादी के वक्त का ये वाकया सुना के पूछा, "अगर मेरे दिल मे दहेज का लालच होता तो मैं उम्मी के साथ शादी करता ही क्यूं? या मैं शादी के बाद ही उसको जला के मार देता और दूसरी शादी में दहेज लेके अपने मां-बाप को खुश कर देता, अपना भी कैरियर बना लेता।'

शादी के बाद अगर मैं अपने मां-बाप के साथ ही रहता तो ऐसा हो भी सकता था भाईसाब! वो लोग रोज उम्मी को ताने-कोसने दिया करते थे कि वो मां के पास इतनी दौलत होते हुए भी दहेज क्यू नही लाई। उम्मी रोज रात को रो-रोके सारी बातें मेरे को बताया करती थी। मेरे को गुस्सा आता था और मैं अपने मां-बाप से, भाई-बहनो से जा के लडता था। आखिर एक दिन मेरे फादर ने कह दिया, "अगर तेरे लिए तेरी बीवी ही सब कुछ है तो जा, निकल जा उसके साथ मेरे घर से।"

और भाईसाब, आप मेरा आदर्शवाद देखो! मैं वाकई उम्मी को साथ लेके निकल गया। लाजपत नगर में एक कमरा लेके रहने लगा। उम्मी को मैंने कहा, "देख, तेरे लिए मैंने अपना सारा कुछ छोड दिया। अब तू भी मेरा साथ दे। जिंदगी सिर्फ प्यार से नही चलती, पैसा भी चाहिए। हम लोगो को अपनी इनकम बढाने के लिए कुछ-न-कुछ करना पड़ेगा। तू बीए पास है, कोई नौकरी कर ले। मैं तेरे लिए कोशिश करता हू। दोनों कमायेंगे और ऐश करेंगे।"

उम्मी खुद सर्विस करना चाहती थी, लेकिन उसके साथ दिक्कत ये थी कि वो इंग्लिश नही बोल पाती थी। चाईजी ने बाद में सुम्मी और सतपाल को तो पब्लिक स्कूल में डाल के पढ़ाया, लेकिन उम्मी की पढाई सरकारी स्कूल मे ही हुई। यूं, मैं भी सरकारी स्कूल मे ही पढ़ा था, लेकिन मैने बीए करते वक्त इंग्लिश बोलने की प्रैक्टिस कर ली थी। उम्मी ये नही कर पाई और नतीजा ये हुआ कि आगे चल के उसको अंग्रेजी से ही नही, अंग्रेजी बोलने वालो से भी नफरत हो गई। हां, हिंदी उसकी बहुत अच्छी थी, लेकिन सर्विस मे हिंदी को कौन पूछता है? फिर हुआ ये कि जब तक उसको कोई जॉब मिलती, मेरा बेटा अमरेश पैदा हो गया और उम्मी सर्विस की बात भूल के उसी मे मस्त हो गई।

घर मे बच्चा आ जाए भाईसाब, तो बाप को फिकर होनी ही हुई। मैंने उम्मी को फिर कहा, "अब तो इनकम बढ़ाने के लिए कुछ करना ही पड़ेगा।"

लेकिन वो कहने लगी, "सर्विस करूंगी तो बच्चे को किसके पास छोड़ूंगी ?" मैंने कहा, "चाहे तो मेरे मां-बाप के पास चल के रह, चाहे लड़के को अपनी मां के पास छोड़ दे।" लेकिन वो दोनों में से किसी बात के लिए तैयार नहीं हुई। तब मैंने उसको एक आइडिया दिया, "क्यूं ना मैं सर्विस छोड़ के कोई छोटा-मोटा बिजनस कर लूं ? तू चाईजी से कह के मेरे को बीस-तीस हजार रुपये उधार दिला दे। सर्विस में आजकल कुछ नहीं रक्खा, बिजनस वालों के मजे-ही-मजे हैं। मैं जल्दी ही उनकी रकम लौटा दूंगा।" उम्मी को आइडिया पसंद आया और वो चाईजी से जाके बात करने को तैयार हो गई।

लेकिन चाईजी तैयार नहीं हुईं। उल्टे मेरे को कहने लग गईं, "सुम्मी और सतपाल की पढ़ाई पे बड़ा खरच हो रहा है, सुरिंदर। कोई कमाने वाला तो रहा नहीं। समझ नहीं आता, कैसे गुजारा चलेगा !" सुम्मी उस वक्त शायद बारह-तेरह साल की थी, सतपाल नौ-दस का। दोनों बच्चे ही थे और भाईसाब, बच्चे कुछ-ना-कुछ खरच तो कराते ही हैं। लेकिन बुड्ढी अपने बच्चों की छोटी-छोटी जरूरतें पूरी करने में भी कंजूसी करती थी। उनके सामने ही उम्मी से और मेरे से कहने लगी, "पूछ लो इनसे, ये छोटी-छोटी चीजों के लिए भी तरसते रहते हैं कि नहीं ?"

मैं तो बुड्ढी का खेल समझ गया, लेकिन आप उम्मी का पागलपन देखो; मां की बात सुनके अपने भाई-बहन पर उसको इतना तरस आया कि रोने लग गई। उसने ये नहीं देखा कि ये सारा ड्रामा मेरे को रकम उधार ना देने के लिए है, समझने लग गई कि चाईजी के पास वाकई कुछ नहीं बचा है। और इसके बाद उसने क्या बेवकूफी शुरू करी, आप यकीन नहीं करोगे।

मैं सारी तनखा लाके उसी के हाथ मे रख देता था, और वो ये जानती थी कि तनखा के अलावा मेरी कोई और इनकम नहीं है। उस वक्त भाईसाब, मैं भी बड़ा आदर्शवादी हुआ करता था। आफिस मे कई लोग अपने काम निकलवाने के लिए मेरे को पैसा आफर करते थे, लेकिन मैं उनको डांट के भगा देता था। बड़े-से-बड़े अफसर के कहने पर भी कोई गलत काम नहीं करता था। कह देता था, "करप्शन कराना है तो आप दूसरे बाबुओं से करा लो, मैं नहीं करूंगा।" और तनखा उस वक्त मेरे को कितनी मिलती थी ? तीन सौ और कुछ रुपये। लेकिन उम्मी पैसा हाथ मे आते ही भाई-बहन को ले आती थी और फिर वो कभी उनको पिक्चरें दिखाने ले जा रही है, कभी उनको ले जाके होटलों मे खाना खिला रही है, कभी उनको कपड़े दिला रही है, कभी कोई और चीज खरीद के दे रही है। बस जी, हफ्ते बाद पैसे खतम और वो मेरे सिर पे सवार। मैंने कई बार उसको कहा, "देख, मैं तेरे पापाजी की तरह एक्साइज इंस्पेक्टर नहीं हूं। खरच जरा किफायतसारी के साथ किया कर।" लेकिन उस पर तो अपनी मां और भाई-

बहन की मदद करने का भूत सवार हो गया था। मैं करज लेता थक जाता, वो खरच करती ना थकती।

मैं कई लोगो को जानता हूं भाईसाब, जिन्होने बिजनस स्टार्ट करने के लिए शादी के बाद दहेज लिए हैं। आप भी कई लोगों को जानते होंगे, जो दहेज लेके आने के लिए वाइफों को मजबूर करते हैं, टार्चर करते हैं, और फिर भी नही लाके देने पर पहली वाइफ का मर्डर करके दूसरी शादी कर लेते हैं। मैं इस तरह का आदमी होता तो चाईजी से पैसा निकलवाने के लिए उम्मी को टार्चर करता, या उसी वक्त उसका मर्डर कर देता।

लेकिन उसका ना करके, भाईसाब, मैंने अपना ही मर्डर कर लिया। वो इस तरह कि जो सुरिंदर कुमार अपनी मेहनत, सच्चाई और ईमानदारी के लिए सारे एडमिनिस्ट्रेशन मे मशहूर था, एकदम करप्ट, घूसखोर और अफसरों की चमचागीरी करने वाला बंदा बन गया। मैंने रिश्वतें खाना शुरू कर दिया। अफसरों को बाकायदा उनका हिस्सा देने लग गया। उनकी चमचागीरी और दरबारदारी करने लग गया, जबकि पहले मैं भ्रष्ट अफसरो को नमस्ते तक नही करता था!

आप हंस रहे हो? क्यूं? समझ नहीं आता, जब मैं मेरी ईमानदारी की बात करता हूं, लोग क्यू हंसने लग जाते हैं। जबकि उम्मी को ईमानदारी की देवी समझते हैं। लेकिन आप ये सोचो कि मेरे को बेईमान बनाया किसने? उसी ने। शुरू में वो बडी आदर्शवादी थी, गरीबी मे गुजारा करने की बात करती थी, लेकिन अमरेश के पैदा होने के बाद उसके वो सारे विचार बदल गए। दो साल बाद अंजू के पैदा होने तक वो इतनी बदल चुकी थी कि मैं क्या बताऊं!

अब वो ये चाहने लगी कि मैं चाईजी, मुम्मी और सतपाल को तो सपोर्ट करूं ही करूं, उस पर और उसके बच्चों पर भी खूब खुल्ला खरच करूं। उसको रोज नये सूट सिलवा के दू, साड़ियां लाके दूं, गहने बनवा के दू, रोज पिक्चरें दिखाऊं, टैक्सियो मे घुमाऊं, होटलो में खाना खिलाऊं, डिस्को और कैबरे दिखाऊं। इतना ही नही, उसके वास्ते शानदार कोठी बनवा के दूं। कोठी मे टीवी, टेलीफोन वगैरह लगवा के दू। चलने के लिए कार लेके दूं। बच्चों के वास्ते आया रक्खू। दूसरे कामों के लिए नौकर, माली, ड्राइवर वगैरह रखू!

लेकिन मजे की बात आप ये देखो, कहती वो ये थी कि ये सब वो अपने लिए नही चाहती। कहती थी, "मेरे को तुमसे कुछ नही चाहिए। मैं तो सूखी रोटी और फटे कपडों मे भी गुजारा कर लूगी। लेकिन अपने बच्चों को मैं दुखी नही देख सकती। उधर मुम्मी, सतपाल भी बच्चे ही हैं। उनके लिए भी कुछ करने का अपना फर्ज बनता है।"

मैं उसको समझाता, "देख उम्मी, तू अपनी सोच, अपने बच्चों की सोच। चाईजी अपने बच्चो की फिकर आप कर लेगी।" ये सुन कर वो मेरे से लड़ने

लग जाती, "मैंने तुमको पहले ही कहा था, मेरे को पैसा नही चाहिए। मैं घर में अकेली पड़ी रहती हूं, मेरा दिल नही लगता, आफिस से सीधे घर आया करो। लेकिन अब तुमको मेरे से नही, पैसे से प्यार हो गया है। रात को दस-दस बजे आते हो और खा-पीके सो जाते हो। मैं अकेली दो-दो बच्चों को कैसे संभालती हूं, तुम पूछते तक नही। मदद के लिए सुम्मी-सतपाल को बुलाती हूं तो तुमको बुरा लगता है। कभी चाईजी से मिलने चली जाती हूं तो भी तुमको बुरा लगता है।"

अब आप ही देखो भाईसाब, आठ घंटे आफिस में नौकरी करने वाला बंदा जिसको एक्स्ट्रा इनकम के लिए दूसरे भी पचास धंदे करने पड़ते हों, कैसे अपनी वाइफ को पूरा टाइम दे सकता है? इतनी पढ़ी-लिखी होके भी वो ये नहीं समझती थी कि टाइम इज मनी। वो पैसा भी चाहती थी और साथ ये भी चाहती थी कि मैं हरदम उसकी आंखों के आगे रहूं, बच्चों को संभालूं, उसकी मां और भाई-बहन का भी ख्याल रखूं।

सुम्मी-सतपाल अक्सर मेरे यहां पड़े रहते थे। दिखाते यूं थे जैसे कि वो मेरे बच्चों से प्यार करने और अपनी बड़ी बहन की मदद करने आते हैं, लेकिन असल में वो अपनी जरूरतों से आते थे। एक कमरे वाले मकान में, आप सोचो, कितनी दिक्कत होती होगी उनके आ जाने से। फिर वो ठहरे अपनी खुद की कोठी में रहने वाले। हरदम मेरे पीछे पड़े रहते, "जीजाजी, कोई अच्छा-सा मकान ले लो ना, इस कमरे मे तो दम घुटता है।"

मैं खुद इस चक्कर में था कि दूसरा मकान लूं, जिसमें कम-से-कम दो कमरे तो हों। कई बार मैंने चाईजी से कहा, "चाईजी, अपने किरायेदारों को निकाल के अपना पीछे वाला पोर्शन मेरे को दे दो ना, किराया बेशक पचास रुपये ज्यादा ले लेना।" लेकिन वो हर बार कह देती, "ये घर भी तुम लोगो का ही है, यूं ही रहने आ जाओ। लेकिन बेटी-जंवाई से किराया लूंगी तो लोग क्या कहेंगे।" मैंने बताया ना, बुड्ढी बड़ी चालाक है। सोचती होगी, किराया तो हम पीछे वाले दो कमरों का ही देंगे, इस्तेमाल पूरी कोठी का करेंगे। और क्या पता, किराया ना ही दें, या मकान पर अपना हक ही ना जताने लग जाए।

खैर, भाईसाब, मकान लेने के चक्कर में एक बात ये हुई कि मेरे को कई प्रापर्टी डीलरों से मिलना पड़ा। उनको देख के मेरे को आइडिया आया'''यही वो धंदा है, जिसमें पल्ले से ज्यादा कुछ लगाये बिना इंसान खूब कमाई कर सकता है। मकान, दुकान, प्लाट वगैरह किसी और का, लेने वाला कोई और, आपका काम सिर्फ इतना कि दोनों को मिला के बात करवा दो और दोनों से कमीशन खा लो। बस जी, मैं एक छोटा-सा दफ्तर लेके बैठ गया, और आज आप मेरे को देख ही रहे हो। ईश्वर की कृपा से आज मेरे पास सब कुछ है। उम्मी अपना

दिमाग सही रखती तो ये सारा कुछ उसी का था। जिंदा रहती, ऐश करती।

लेकिन कोई पागल ही हो जाए तो आप क्या कर सकते हो? यू मेरे को लगता है कि पागल वो खुद नहीं हुई, चाईजी ने उसे पागल बनाया, लेकिन बंदा खुद बेवकूफ ना हो तो क्यू पागल बने? एक बेवकूफी तो उसने ये की कि सुम्मी और सतपाल के ऊपर पैसा खरच कर-करके उनकी आदतें बिगाड़ दी, दूसरी बेवकूफी ये कि जब वो इसके पास आके शिकायत करते कि चाईजी उनको फलां चीज नहीं दिला रही हैं तो ये चाईजी से लड़ने पहुंच जाती। चाईजी कहती, "देख, उम्मी, तू अपने बच्चों को संभाल, मेरे बच्चो को मैं संभाल लूंगी। तू इनकी शिकायतें लेके मेरे पास ना आया कर।" सुनकर ये तैश में आ जाती और कहने लगती, "ठीक है, नहीं आऊंगी। आपको मेरी सौगंध है जो मेरा मुंह भी देखो। लेकिन अपने भाई-वहन को प्यार करने से आप मेरे को नहीं रोक सकती। मैं इनको ले जा रही हूं। इनको जो कुछ चाहिए, मैं दिलवाऊंगी।"

अब हुआ भाईसाब, ये कि चाईजी तो और ज्यादा कंजूस होती गईं और सुम्मी-सतपाल का सारा खर्चा मेरे सिर पडने लगा। कोई एक-दो रोज की बात हो तो इंसान सबर भी कर जाए, लेकिन रोज रोज कोई कैसे दूसरों पर अपना पैसा लुटाता रहे? नतीजा ये हुआ कि उम्मी के साथ मेरे झगड़े होने लगे। मैं कहता, "माना, मेरा धंदा अच्छा चल पडा है, लेकिन चाईजी भी तो कोई माड़ी हालत में नहीं। वो खुद क्यूं नहीं अपना पैसा निकालती?" उम्मी पलट के जवाब देती, "चाईजी अपना फरज पूरा नहीं करती तो मैं भी न करूं?" आखिर एक दिन मैंने उसको कह ही दिया, "कभी ये भी सोचती है कि तू अपना फरज मेरे पैसे से पूरा कर रही है?"

बस जी, भाईसाब, ये सुनते ही उसको आग लग गई। बोली, "रक्खो अपना पैसा और संभालो अपना घर। मैंने नहीं रहना अब तुम्हारे जैसे कमीने के साथ। मेरे को पता होता कि तुम ऐसे निकलोगे तो मैं तभी किसी पैसे वाले से शादी कर लेती!" ये कहके वो तो चल दी जी, कहीं मरने-खपने के लिए। मैं ही दौड के उसके पीछे गया, माफिया मांग-मांग के उसको वापस लेके आया। कह दिया, "जो तेरे जी मे आए कर, अब मैं तेरे से कुछ नहीं कहूंगा।"

उसके बाद मैंने उसको कुछ कहा भी नहीं भाईसाब, लेकिन उसने अपनी हालत अजीब-सी बना ली। अपने सारे शौक-मौज उसने खतम कर दिये। रानी बाग जाना बंद कर दिया। सुम्मी-सतपाल को बुलाना बंद कर दिया। मेरे साथ बाहर निकलना भी बद कर दिया। मैं कहता, "चल, पिक्चर देखने चलते हैं।" तो कह देती, "तुम देख आओ, बच्चों को दिखा लाओ, मैं इतने मे घर का कुछ काम कर लूगी।" अनीता जिस साल पैदा हुई, मैंने पंजाबी बाग में अपना मकान ले लिया था और बच्चो की देखभाल और घर का काम करने के लिए एक आया

भी रख ली थी, लेकिन उम्मी खुद भी सारे दिन काम करती रहती थी। न अच्छे कपड़े पहनना, ना कोई मेकअप करना। खाना भी ऐसी बेदिली से खाती जैसे कि सिर्फ जिंदा रहने के लिए खा रही हो।

मैं ये सब देख के दिल मे अफसोस करता कि क्यूं मैंने उस दिन इसके साथ झगड़ा किया। उसको खुश करने के लिए मैं रानी बाग जाके कभी चाईजी को, कभी सुम्मी को, कभी सतपाल को ले आता। उनके आने पे खुश होती, पहले की तरह प्यार से पेश आती, खुद अपने हाथों खा-शा बनाती, खाना खिलाती, लेकिन इसके अलावा उन लोगों पे एक पैसा भी ना खरचती। ये देख के मैं दिल मे शर्मसार होता रहता और खुद ही आगे बढ़ के उन लोगों पे पैसा खर्च कर देता। ऐसी सूरत में वो मेरे को रोकती भी नही थी। शायद वो ये नहीं चाहती थी कि उन लोगों को हमारे झगड़े का पता लगे। वो लोग मस्त थे और मेरे से बहुत खुश रहते थे। मेरे से कोई चीज मांगने में या किसी काम को कहने में उनको हिचक नहीं होती थी।

सुम्मी ने बीए कर लिया तो चाईजी मेरे से कहने लगी, 'सुम्मी ब्याह लायक हो गई है, सुरिंदर, इसके वास्ते भी कोई अपने जैसा लड़का देख, जो दहेज वगैरह ना मांगे।" मैं कहता, "चाईजी, आपके पास नोटों की क्या कमी है? शान के साथ सुम्मी का ब्याह करो, आगे सतपाल की शादी में तगड़ा दहेज लेके सारी कमी पूरी कर लेना।" लेकिन चाईजी को उम्मी की शादी मुफ्त में करके मजे आ चुके थे। वो क्यूं सुम्मी की शादी के लिए पैसा निकालतीं? कहने लगतीं, "सतपाल को तो अपने पैरों खड़े होने मे ही अभी कई बरस लग जाएंगे, पुत्तर, फिर मेरे को भी मेरी बुड्ढी उमर गुजारनी है। पल्ले कुछ रहता है तो बेटी-बेटे भी ख्याल रखते हैं, नही तो कोई हाल पूछने भी नहीं आता।"

खैर जी, भाईसाब, मैंने सुम्मी के वास्ते कई लड़के देखे। लेकिन मेरे जैसा मूरख कौन मिलता? आजकल दहेज कौन नही चाहता? फिर, बात करने वाला हुआ मैं और शादी होनी हुई चाईजी की बेटी की। लोग जानते थे, दोनों की माली हालत अच्छी है। क्यू ना मुंह खोल के दहेज मांगते? बड़ी कोशिशों के बाद मेरे को एक लड़का मिला। करोल बाग के प्राइमरी स्कूल में टीचर था। आप जाके देख लो, बड़ा ही शरीफ बंदा है। सेहत और शकल-सूरत के लिहाज से भी माड़ा नही। उसका बाप सिर्फ बीस हजार लेके शादी करने को तैयार था। लेकिन उसको खुद सुम्मी ने नापसंद कर दिया। कहती है, "आप मेरी शादी एक गरीब स्कूल मास्टर के साथ कराना चाहते हो? ऐसे के साथ मेरे को नही करनी शादी-शूदी।" मैंने पूछा, "फिर कैसे के साथ करनी है?" तो बेहिचक बोली, "किसी आप जैसे के साथ!" मैने मजाक किया, "तो कर ले ना मेरे ही साथ!" इस पर उसने मेरी तरफ देखा और शर्म से लाल हो गई।'

मजाक की बात थी और उम्मी के सामने ही हो रही थी, इसलिए मैंने सुम्मी के शरमा जाने पे गौर नहीं किया। उम्मी को कहा, "देख, अपनी बहन को समझा। ऐसा लड़का हाथ से निकल गया तो फिर नहीं मिलने वाला।" सुम्मी अपनी बड़ी बहन को बहुत मानती थी। उम्मी जोर देके कह देती तो सुम्मी जरूर उसी लड़के के साथ शादी कराने को तैयार हो जाती। लेकिन उसने कहा, "सुम्मी बड़ी हो गई है। खुद समझदार है। इसको वहीं शादी करनी चाहिए, जहां इसका जी चाहे।" मैंने हंस के कहा, "तूने सुना नहीं, ये तो मेरे साथ करना चाहती है।" इस पर उम्मी ने भी हंस के कहा, "तो कर ले ना, मैं मना करती हू ?" लेकिन इतना कहते ही वो सीरियस हो गई और सामने से उठकर चली गई। मैंने मजाक में सुम्मी का हाथ पकड़ लिया और कहा, "बोल, वाकई करेगी ?" उसने कहा, "पागल हो गए हो ?" और हाथ छुड़ा के भाग गई।

मैं ये तो नहीं कहता भाईसाब, कि वो मेरे गले पड़ गई थी, क्यूंकि उसके वास्ते थोड़ा अट्रेक्शन तो मेरे दिल में भी था। बीए करके उसने पढ़ना छोड़ दिया था और एक तरह से मेरे ही घर आके रहने लगी थी। वो कोई सर्विस करना चाहती थी और मैं उसके लिए कोशिश कर रहा था। उस वक्त गाड़ी तो नहीं थी मेरे पास, लेकिन स्कूटर था और स्कूटर पे बिठा के मैं उसको कभी कोई रिटन टेस्ट दिलाने ले जाता, कभी इंटरव्यू दिलाने। शापिंग वगैरह भी मैं और वो साथ जाके कर आते थे, क्यूंकि उम्मी ने तो मेरे साथ बाहर निकलना ही बंद कर रक्खा था। यहां तक कि दोस्तों के यहां पार्टी-शार्टी होती, तब भी वो मेरे साथ ना निकलती। एक-दो बार मैं जिद्द करके उसको ले भी गया तो उसने मेरी बड़ी कच्ची कराई। एक तो भाईसाब, तीन बच्चों के बाद उसकी बॉडी यूं ही कुडौल हो गई थी, दूसरे वो मेहनत बहुत ज्यादा और अपनी केयर बहुत कम करती थी। फैशन और मेकअप से तो वास्ता ही रखना उसने बंद कर दिया था। ऊपर से उसका वो आदर्शवादी पागलपन बड़ी दिक्कत पैदा करता था। दिल से वो खुद को गरीब मानती थी और पैसे वालों को नीची नजर से देखती थी, इसलिए कहीं भी झगड़ा कर बैठती थी। इंग्लिश बोलने वाली लेडीज के साथ तो अक्सर उसका झगड़ा हो जाता था, क्यूंकि खुद उसको इंग्लिश बोलना आता नहीं था और दूसरों का बोलना बरदाश्त नहीं कर पाती थी। इसके उल्ट सुम्मी बिल्कुल माडरन, शान से इंग्लिश बोलने वाली, बड़ी ही स्वीट नेचर वाली। बाहर उसको मेरे साथ देख के लोग रश्क करते थे। मिलने वाले एकदम इम्प्रेस्ड हो जाते थे। ऐसी हालत में भाईसाब, किसके दिल में ये ख्याल नहीं आएगा कि काश, यही अपनी बीवी होती !

उस दिन वो जो शादी वाली बात हुई, उसके बाद मेरे को महसूस हुआ कि सुम्मी भी मेरे को चाहती है। फिर तो भाईसाब, झूठ नहीं बोलूंगा, मैंने सुम्मी की

शादी कराने का ख्याल छोड़ दिया। दौड़-भाग करके उसको जॉब दिला दी और कह दिया, "तू मस्त रह, मैं सब संभाल लूंगा।" लेकिन आप जिसकी कहो, मैं उसी की कसम खा जाऊं, सुम्मी के साथ प्यार करने का मतलब ये हरगिज नहीं था कि मेरे को उम्मी से कोई वैर था, या मैं उसको नफरत करता था। मर्डर का तो सवाल ही नहीं उठता। मेरे दिल में तो उसको छोड़ देने का भी ख्याल कभी नहीं आया। दूसरी शादी के लिए पहली वाइफ का मर्डर वो लोग करते हैं, जिनको दूसरी शादी में दहेज वगैरह की उम्मीद होती है। सुम्मी से शादी करके मेरे को क्या मिलने वाला था? मेरा आइडिया तो ये था कि दोनों सगी बहनें हैं, मेरे साथ एडजस्ट कर जायेंगी। एक मकान में नहीं रह सकेंगी तो मैं सुम्मी के वास्ते अलग मकान ले दूंगा। बाकी इस चीज को नैतिकता के ख्याल से तो मैं देखता नहीं भाईसाब, क्यूंकि जेब में पैसा और जिस्म में ताकत हो तो इंसान दो ही क्या, कितनी ही बीवियां रख सकता है। पहले के लोग भी रखते थे, आज भी रखते हैं। दिल्ली में आप जितने कहो, उतने लोग मैं आपको दिखा दूं, जिन्होंने एक बीवी के होने-सोते इस तरह के चक्कर चलाये हुए हैं। उनकी बीवियां भी ऐतराज नहीं करतीं।

लेकिन उम्मी के ख्यालात भाईसाब, बहुत पिछड़े हुए थे। ज्यूंही उसको सुम्मी के साथ मेरे अफेयर का पता लगा, वो दीन-हीन नौकरानी जैसी बनी रहने वाली औरत मेरी और मेरे घर की मालकिन की तरह पेश आने लगी। नैतिकता की दुहाई देने लगी। बच्चों पर खराब असर पड़ने की बात करने लगी। एक दिन तो वो मेरे से इतना लड़ी कि उसने मेरे को कुत्ता-कमीना सब कुछ कह डाला। सुम्मी को भी जी भर के कोसने दे डाले।

मैंने उसको कहा, "आज तू मेरे को कुत्ता-कमीना कह रही है, वो दिन याद कर, जब मैं एक मेहनती और ईमानदार आदमी हुआ करता था। लोग मेरी इज्जत करते थे। मैं गरीब था, लेकिन सिर उठा के चलता था। तेरे को नैतिकता का ख्याल उस वक्त क्यूं नहीं आया, जब तू खर्चे बढ़ाती जाती थी और मेरे को गलत तरीकों से पैसा कमाने के वास्ते मजबूर करती जाती थी? आज तू अपनी बहन को भी कोसने दे रही है। ये कोसने उस वक्त देने चाहिए थे, जब इसने एक अच्छे-भले इंसान को गरीब स्कूल मास्टर कहके रिजेक्ट किया था। जब इसने कहा था कि इसको मेरे जैसा ही बंदा चाहिए। तू इसपे गुस्सा करने की बजाय खुश हुई थी। क्या पता, इसके दिल में उसी दिन ये ख्याल आया हो कि इसको मेरे जैसा ही बंदा चाहिए तो मैं ही क्यूं नहीं? आग लगाने वाली तो तू खुद है। मैंने समझाया, चाईजी ने समझाया, सुम्मी-सतपाल की जिम्मेवारी अपने सिर लेके इनकी आदतें ना खराब कर, लेकिन तूने किसी की नहीं सुनी। तू समझती थी कि भाई-बहन को प्यार दे रही है, लेकिन तेरे भाई-बहन तेरे से ज्यादा समझ-

दार हैं। वो जानते थे कि तेरे प्यार का शौक मेरे पैसे से पूरा हो रहा है, इसलिए वो डाइरेक्ट मेरे से ही प्यार करने लग गए। सुम्मी का हाल तो तू देख ही रही है, सतपाल भी मेरी इतनी इज्जत करता है कि मेरे एक इशारे पे वो अपनी मां का भी मर्डर करके आ सकता है !"

उम्मी के मरने के बाद चाईजी ने भी बड़ा रोता पाया। लेकिन भाईसाब, उस वक़्त चाईजी भी कुछ नहीं बोलती थी, जब सुम्मी हफ्तों और महीनों हमारे यहां पड़ी रहती थी। उस वक़्त वो सोचती होंगी, 'चलो, अच्छा है, सुम्मी सुरिंदर की आंखों के आगे रहेगी तो वो इसको जॉब जल्दी दिला देगा। शादी के लिए लड़का देखने का भी ख्याल करेगा।' आप कुछ भी कहो, मेरे को लगता है, उम्मी की मौत के लिए चाईजी भी कम कसूरवार नहीं हैं। उनको अपने पैसे से इतना प्यार ना होता तो मेरे साथ सुम्मी का अफेयर शुरू हो जाने के बाद भी उसकी शादी किसी और के साथ हो गई होती।

हुआ ये भाईसाब, कि मेरे से लड़ने के बाद उम्मी चाईजी के पास गई। जाके उनको कहा, "चाईजी, मैंने अपनी शादी में आपका एक पैसा खर्च नहीं कराया। मैंने यही सोचा था कि वो पैसा सुम्मी और सतपाल के काम आएगा। आज मैं आपसे दहेज मांगने आई हूं। आप मेरे को बीस हजार रुपये दे दो। करोल बाग वाला वो लड़का बहुत अच्छा है और उसका बाप सिर्फ बीस हज़ार रुपये मांग रहा है।" लेकिन चाईजी को तो सुम्मी की शादी मुफ़्त में ही करनी थी। उन्होंने उम्मी को कहा, "तू इतने पैसे वाली है, बहन की शादी में तू ही बीस-तीस हजार लगा देगी तो तेरे को क्या फरक पड़ेगा?"

उम्मी, भाईसाब, पागल ना होती तो अब भी चाईजी का खेल समझ जाती, लेकिन वो बेवकूफ घर आके मेरे को कहती है, "उस बीस हजार मांगने वाले लड़के को बुला के कल ही सुम्मी की शादी कर दो। बीस हज़ार अभी तुम दे दो और मेरे को कोई नौकरी दिला दो, मैं अपनी तनखा से तुम्हारा करज चुका दूंगी।"

मैंने उससे कहा, "बेवकूफी की बातें ना कर, समझदारी से काम ले। सुम्मी तेरी बहन है। तू उसको प्यार करती है। वो मेरे को प्यार करती है। तेरा कोई हक्क मारने का उसका कोई इरादा नहीं। मैं भी तेरे को घर से नहीं निकाल रहा। आराम से रह और ऐश कर।"

ये सुनते ही वो मेरे आगे से उठ के चली गई। मैंने सोचा, गुस्से में यूं ही उठ गई है। किचन में कुछ खड़कने की आवाज़ आई तो मैं समझा, चा-शा बनाती होगी। वो तो जब उसके चीखने की आवाजें आने लगी तब मैं उठके दौड़ा। देखा तो वो जल रही थी। मैंने अपने हाथों से आग बुझाने की कोशिश की। ये दाग़ देखो आप, मेरे हाथ किस तरह ज़ख्मी हो गये थे।

खैर, अब आप बच्चों की बात सुनो। मेरा ख्याल था, ये नयी नसल के नौजवान लोग है, सब कुछ समझते हैं। मेरा ख्याल था, ये अपनी मा की मौत से कोई सबक सीखेंगे। लेकिन ये भी, मेरे को लगता है, उम्मी वाले आदर्शवाद के जरासीम लेके पैदा हुए हैं। सुम्मी और सतपाल भी नौजवान है, लेकिन जमाने के साथ चलते है। सुम्मी मेरे साथ खुश है। सतपाल को भी मैंने अपने धंदे में लगा लिया है। ये सही है कि उसको जरा लीडरी का चस्का लग गया है और लीडरी में आजकल वो ही आगे निकलता है, जो कानून वगैरह की परवाह ना करता हो। अव्वल तो कानून कमजोर लोगों के लिए होता है, फिर लीडरान तो ख़ुद क़ानून बनाने वाले हुए। क़ानून के भरोसे बैठे रहे तो चला चुके इतना बडा देश! आज-कल तो भाईसाब, जिसके हाथ मे हथियार है, उसी के हाथ मे अधिकार है। मैंने अपने बेटे को कहा, "अमरेश, तू ये दिन-रात किताबें पढ़-पढ़ के क्यू आंखें खराब करता रहता है? माना कि तू क्लास मे अव्वल आ जाता है, इसी तरह लगा रहा तो कालेज में टाप करेगा, यूनिवर्सिटी में भी टाप कर लेगा, लेकिन इतनी मेहनत करने का फ़ायदा क्या है? आगे चल के सर्विस तो तेरे को करनी नही, मेरा बिजनस ही संभालना है। मस्त रह। अपने मामा को ही देख, वो कितना पढ़ा है? फिर भी देखना, वो बड़ा लीडर बनेगा। युवा नेता तो बन ही गया है।"

लेकिन मेरा बेटा तो अपनी मां की तरह उल्टी खोपडी वाला है ना! बेटा ही क्या, बेटिया भी वैसी ही निकल रही हैं। मेरे तीनों बच्चे मेरे से नफरत करते हैं, सुम्मी से नफरत करते है, सतपाल से नफरत करते है। मेरे को मर्डरर कहते हैं, सुम्मी को बदचलन कहते है, सतपाल की तो वो सूरत देखना नही चाहते। उसको गुडा, बदमाश और ना जाने क्या-क्या कहते है।

आप कहोगे, मैं सतपाल का किस्सा बीच मे क्यू ला रहा हूं? वो मै इसलिए ला रहा हू कि मेरे बच्चे ये समझते हैं कि मैंने सतपाल के हाथो उनकी मां का मर्डर कराया है। भाईसाब, आप ही सोचो, कोई भाई अपनी सगी बहन का मर्डर कर सकता है? वो भी उस बहन का, जो जीते जी उसके लिए जान देती रही हो? लेकिन वो कहते हैं कि जिस रात उनकी मां मरी, सतपाल मेरे घर में ही था और उन्होने अपनी आंखो से देखा कि उसने शाम को मेरे साथ बैठ के शराब पी थी। बताओ आप, शराब पीना कोई जुर्म है? सतपाल तो अक्सर मेरे साथ बैठ के पीता था, उस रोज़ कोई नई बात हो गई थी? और जिस वक़्त उम्मी ने सुइसाइड किया, सतपाल तो कभी का वहा से खाना-वाना खाके जा चुका था। मैं हजार तरह से समझा चुका, लेकिन मेरे बच्चों ने एक कहानी बना ली है और उसको हर जगह सुना के ये कहते फिरते है कि उसकी मां मरी नही, उसको मारा गया है।

वो तो पुलिस तक भी पहुंच गए थे। मेरे पास पैसा और सतपाल का रसूख

न होता तो भाईसाब, हम लोगों को हथकड़ियां पड़ जानी थी। ऐसे मेरे कट्टर दुश्मन हो गए हैं मेरे बच्चे। पुलिस से कुछ नही करा सके तो अब घर-घर जाके मेरे खिलाफ़ प्रोपेगंडा कर रहे हैं। अब देखो ना, कल आपके पास भी पहुंच गए। घर में तो मेरा हाल बेहाल कर रखा है उन्होंने। पिक्चरों में क्या डायलाग होते होंगे, जो मेरी बेटियां मेरे से बोलती हैं ! डायलाग राइटर का तो मेरे को नही पता, पर डाइरेक्टर का पता है। वो हैं हमारे सुपुत्र श्रीमान अमरेश कुमार ! *लीडर आफ दी अपोजीशन इन दी हाउस !*

अभी पिछले महीने की बात है, एक दिन मैंने बड़े प्यार से उसको बुला के अपने पास बिठाया और कहा, "बेटा अमरेश कुमार, मेरे को दिख रहा है, तू भी किसी दिन बड़ा लीडर बनेगा। लेकिन एक बात सुन ले पुत्तर, अपोजीशन में आने के लिए पोजीशन को छोड़ना पड़ता है। जो तू ये सोचता है कि तेरा बाप तेरी मां का कातिल, तेरा और तेरी बहनों का दुश्मन है तो मर्द बच्चों की तरह एक काम कर। कोई काम-धंदा पकड़ ले, अलग मकान ले ले और अपनी बहनों को साथ लेके चला जा। मेरी मेरे बाप से नही बनी थी तो मैं उसका घर छोड़ के निकल पड़ा था।"

लेकिन पता है भाईसाब, उस मर्द बच्चे ने क्या किया ? अगले रोज बाजार जाके नींद की इतनी सारी गोलिया ले आया और एक सुइसाइड नोट लिखा कि रात को हम तीनो भाई-बहन इन गोलियों को खाके हमेशा के वास्ते सो जाएंगे। लेकिन मेरे बच्चे अपनी मां की तरह बेवकूफ नही हैं। वो जानते हैं कि मर जाने से कुछ भी हासिल नही होता। उन्होंने सुइसाइड नोट को गोलियों के पैकेट से दवा के टेबल पे इस तरह रख दिया कि मेरी या सुम्मी की नजर उस पे पड़े ही पड़े। और लो जी, ड्रामा काम कर गया। मैं और सुम्मी बच्चो की अदालत में मुजरिमों की तरह पेश हुए। कान पकड़ के माफी मांगी कि बच्चो, जो जी में आए करो, हम दोनो अब तुम्हारे से कुछ नही कहेंगे। हम तुम्हारे मां-बाप नही, तुम हमारे मां-बाप हो। हम ख़ूनी हैं, क़ातिल हैं, जालिम हैं, हरामजादे हैं। जूतियां निकाल के हमारे सिरों पर मारो। हम तुम्हारे गुनाहगार हैं, जो चाहो सजा दे लो, *पर ये सुइसाइड वाली बात आगे से कभी नही करना।*

उस रोज के बाद मैं उनको कुछ नहीं कहता। दिल में दुखी होता हूं, रोता हूं, लेकिन चुप करके उनकी गालियां खाता रहता हूं। फिर भी जो कुछ कर सकता हूं, उनके लिए किये जा रहा हू। सुम्मी भी रोती है। वो चाहती है, बच्चे उसको मां कहे, मां समझें। लेकिन वो जानबूझ के उसको मम्मी नहीं आंटी कहते हैं। प्यार नही करते, बात-बात पे जलील करते हैं। मैं टोकता हूं तो मेरे से भी लड़ते हैं। पड़ोसियों को सुना-सुना के ऊंची आवाजों मे रोते हैं, रिश्तेदारो और वाकफ़-*कारों से जा-जाके शिकायतें लगाते हैं। और मजे की बात देखो आप,* उस कंजूस

बुड्ढी से जाके हमदर्दी जताते हैं, क्यूंकि सतपाल बड़ा होके उसको उसकी कंजूसी की सजा देने लग गया है। जवान लड़का है, उसकी अपनी जरूरतें हैं, उसको पैसा चाहिए। बुड्ढी इनकार करती है तो ठुकाई करके छीन लाता है। यूं, इसको अच्छी बात मैं भी नहीं मानता भाईसाब, लेकिन ये मां-बेटे के बीच का आपसी मामला है, मैं उसमे दखल देने क्यों जाऊं? बच्चों से भी मैं यही कहता हूं, लेकिन वो मेरी सुनते कहा है!

वो इतने बिगड़ गये हैं कि मेरे को डर लगने लगा है, कहीं ये ब्लैकमेलर वगैरह ना हो जायें। मगर दिक्कत भाईसाब, ये है कि आप जैसे लोगों की मॉरल सपोर्ट भी उनको ही मिलती है। दोस्त आप मेरे हो, बच्चों के तो नहीं?

सत्येन कुमार

वाप-वेटे

जैसे ही उसने वोलना शुरू किया मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ। मुझे वह वात नही कहनी चाहिए थी। देखा जाए तो मैं उस तरह की कोई भी वात नही कहना चाहता था। यू भी मैं उसे क्या समझा सकता था? हम दोनों दोस्त जरूर थे, पुराने वचपन के दोस्त लेकिन एक-दूसरे से इतने भिन्न कि वह दोस्ती किसी को भी, कभी समझ में नही आई थी। ख़ुद मुझे भी नही।

जव उसे गुस्सा आता था तो सबसे पहले उसका चेहरा बदलता था। सारा खून उस रुफ़ेद गेहुएं रग को आग की तरह दहका देता था। और फिर उसकी आवाज़ जो वहुत सधी हुई शुरू होती थी लेकिन शीशा काटने की पेन्सिल की तरह खरोचती हुई आगे वढ़ती थी। वीच मे कही फिर वह चीख़ने लगता था जिस पर बाद मे उसे वहुत शर्मिन्दगी होती थी। वैसे वह झगड़ालू या गुस्सेल नही था। बहुत खुले दिल और दिमाग वाला वह दरअसल एक हीरे जैसा आदमी था। उतना ही सख्त भी।

—ज़िंदगी की शर्तें बहुत नही होती केशव''', वह कह रहा था—बस दो-चार'''मसलन कि अब आप हंसेंगे या रोएगे, या कही बैठे रहेंगे या उठकर चल देंगे। दिक्कत ज़िंदगी की शर्तें नही होती कभी। मुश्किल तो आदमी की शर्तें होती है। जिनकी जड़ो मे डर होता है। वह जानता है कि जिन्दगी इतना आसान शब्द नही है। उसकी बहुत वड़ी कीमत है और हर आदमी उसे अदा नही कर सकता''', उसकी आवाज तेज होने लगी थी—यह बहुत ख़ुशनुमा होता है कि हर आदमी अपने आपको जीता हुआ देख सकता है, किसी आइडियोलॉजी मे, किसी भुलावे मे, कुछ वातो मे ' लेकिन अपने आपको जीता हुआ देखना और ख़ुद जीना दो बहुत अलग अलग चीज़ें हैं। सुवह और शाम की तरह। सुबह और शाम के बारे मे जव वात होती है तो वात सूरज की नही होती। क्योकि सूरज की वात तो हो ही नही सकती। कौन जलता है सूरज की तरह? तुम या वो'''जो ये सब वकवास कर रहे हैं? या कोई और?''', उसकी आंखें सुलगने लगी थी और सारा धुआ उसकी आवाज़ मे भर गया था—कोई नही'''केशव, कोई नही जलता

उस तरह । हम लोग बातें करते हैं सिर्फ'''जलने और जीने के बारे में। करते कुछ नही इन दोनों मे से ।

यह चुप हो गया था। और मेरे पास कहने को कुछ था ही नही। अलबत्ता मैं उसे आश्वस्त जरूर करना चाहता था कि मेरा मकसद उसे नाराज करना या किसी तरह का उपदेश देना हर्गिज नहीं था।

—मेरा मतलब यह नही था, अमित, मैंने अंधेरे मे टटोलती हुई-सी आवाज में कहना शुरू किया—मैं सिर्फ यह कह रहा था कि इतना तो तुम भी मानोगे कि उनसे दूर इस तरह रहने से तकलीफ तो तुम्हें भी होती है। होती है या नही ?

—तकलीफ ! यह खिलखिलाकर हंस पड़ा—तकलीफ कहां से आ गई बीच में ? और फिर इस तरह की तकलीफ का तो दरअसल कोई मौका है भी नही। तुम क्या बात कर रहे हो ? उनके पास मैं रहा कब हू ? बहुत छोटे की तो मुझे याद नही लेकिन बचपन के जिन दिनों की याद है, उन दिनों मैं देहरादून मे था। स्कूल की पढ़ाई तक तो वही था ही। उसके बाद ग्लासगो। जब लौटा तो शादी और उसके बाद फिर रईस बाप के बेटे का हनीमून। फिर हरिद्वार वाली यूनिट डालनी थी। उनके साथ मैं कब रहा ? कहना नही चाहिए केशव, ऐसी बातें'''लेकिन तुम यकीन करोगे ? सिर्फ 6 महीने मैं उस घर में रहा हूं, जो उनका घर है। यानि दिल्ली मे। और वो भी उनके साथ नही। मां जब बीमार पड़ी थी तब !

मैं जानता था कि वह अब आगे नही बोल सकेगा।

उसकी मां का चेहरा मेरी नजरों के सामने छा गया ' एक तस्वीर थी जैसे। तस्वीर नही बल्कि तस्वीरो का एक एलबम था जो खुद-ब-खुद खुलता जा रहा था'''

—अस्पताल के प्राइवेट वार्ड में अमित अपनी मां के पैर दबा रहा है। सुबह के तीन बजे थे'''मुझसे उसने कॉफी लाने के लिए कहा था और यह भी कहा था कि तुम आना जरूर'''असल में दो बजे के बाद मुझे नीद आने लगती है और आज कल मां को सारी रात अटेंड करने की जरूरत है'''

—तीजों के त्योहार वाले बाजार मे अमित की मां चूड़ियों की एक दुकान के सामने खड़ी अमित को डांट रही हैं। अन्दर दुकान मे अमित की बीवी ढेर सारी चूड़ियों के बीच घिरी बैठी है '' अमित की शादी उसकी मां को भी पसंद नही थी। लेकिन जब बहू घर आ गई, तो उनके लाड़-प्यार का ठिकाना न था। मैं अमित के साथ था उस दोपहर'''अमित जल्दी करने के बहाने वह स्थिति टालना चाह रहा था। लेकिन जब मां ने डांटा तो वह स्कूल मे पढ़ने वाले किसी बच्चे की तरह भरे बाजार मे सहमा-सा खड़ा रहा था'''

—पिछली बार अमित जब घर से भागा था और जब मां जिन्दा थीं,

अमित मथुरा पहुंचकर हम लोगों के एक और दोस्त विनय के यहां रुक गया था। लेकिन उसी शाम उसकी मा, पता नही कैसे पता लगाकर और मुझे साथ लेकर, विनय के घर पहुंच गई थी। अमित की मां, दिल की मरीज़ थी और उन दिनों उनकी तबियत ठीक नही चल रही थी। जब वे कमरे में दाखिल हुई तो हांफ रही थी और यह देखकर अमित काफी घबरा गया था। उससे कुछ भी बोला नही गया था। कुछ देर तक उसकी मां चुपचाप बैठी अपनी सांसें संभालती रही थी और फिर चुपचाप उनकी आंखो से आंसू बहने लगे थे। अमित उनके पैरों के पास आकर बैठ गया था और बोला—रोओ मत मां··· देखो, तुम्हारी तबियत ठीक नही है।

—वही तो मैं कहने आई हूं यहां कि क्यों तुम लोग ये नाटक कर रहे हो कि दुनिया भर के डॉक्टर बुला-बुलाकर, पानी की तरह पैसा बहा रहे हो···उनकी हिचकियां बंध गई थी—अगर तुझे यही करना है तो फिर किस लिए···ये सब ? तबियत ठीक करके क्या मैं और बच्चे जनूंगी अब ?

—नही मां, तुम ग़लत समझ रही हो·· अमित की आवाज़ भी रुआंसी हो गई थी।

—मुझे कुछ नही समझना बच गया अब जिन्दगी मे·· पता नही कैसी तकदीर लिखी है भगवान ने···आधी जिन्दगी उनकी ज्यादती सही···अब तू तैयार है · चाहते क्या हो तुम लोग मुझसे ? ये इलाज वगैरा का चक्कर न होता तो अब तक अच्छी-खासी मर जाती मैं···आराम तो मिलता।

अमित चुप बैठा रहा था। उसी शाम वे उसे अपने साथ दिल्ली वापस ले आई थी···

—वह तो ठीक है अमित लेकिन···मैंने कुछ देर बाद अपना गिलास उठाते हुए कहा—तुम यह तो नही कह सकते कि लाला तुम्हारी काबलियत और जिस तरह से तुमने सारा कारोबार बढ़ाया है उसे मानते नही है। उनकी शिकायत दरअसल···

अमित ने मुझे आगे नही बोलने दिया—काबलियत ··माई लेफ्ट फुट ! डोंट बी फनी केशव। शिकायत कोई हो तो समझी जा सकती है। वो तो बिल्कुल ऐलानिया कहते है—कि आप है कौन ? और अगर अपने को वाकई तीसमारखां समझते हो तो क्यों बार-बार ठोकरें खाकर लौट आते हो ? उसकी आवाज़ के नीचे भूचाल की-सी कपकपी पैदा हो गई थी लेकिन कुछ क्षणों बाद वह सधे हुए स्वर मे बोला—और तुम तो ऐसे कह रहे हो जैसे तुमने देखा नही है सब कुछ। याद है पिछली बार तो सारा कांड तुम्हारे सामने हुआ था।

मैं चुप हो गया। जिक्र उसी रात का था जब पिछली बार अमित को उसकी

मां घर ले गई थी। घर पहुंचकर जब हम लोग डाइनिंग रूम में बैठे खाना खा रहे थे तो अमित के पिताजी कमरे में दाखिल हुए थे। इससे पहले कि अमित की मां कुछ कहती, उन्होंने व्यंग्यात्मक मुस्कराहट के साथ कहा था—ओ···हो···इस बार तो बहुत जल्दी पूरा हो गया ये शौक ! या शायद ठहरने की जगह नहीं मिली कोई।

अमित ने अपने हाथ की रोटी थाली में ही रख दी थी। तभी मैंने मेज़ के नीचे अपने पैर से उसे चुप रहने का इशारा किया था।

—कम-से-कम खाना तो खा लेने दीजिए, अमित की मां ने रुआंसी-सी आवाज़ में कहा था।

—खाने से कौन रोक रहा है, उनकी आवाज़ बदली नहीं थी—मैं तो इसी बात को समझाते-समझाते बूढ़ा हो गया कि जब तक मिल रहा है तब तक तो आराम से खा लो। आगे तो जो होगा सो देखी जाएगी।

मैं अपने आप को रोक नहीं पाया था। अपनी आवाज़ को यथासंभव संयत रखते हुए मैंने कहा था—लाला, आप इजाज़त दें तो एक बात कहूं ?

—हां, हां, ज़रूर ! वह टेबुल के सिरे पर अपनी कुर्सी पर बैठकर बोले थे।

—मैं यह कहना चाहता हूं कि इस तरह की बातों से आप दोनों को ही तकलीफ पहुंचती है। आख़िर कब तक ऐसा चलता रहेगा, आप ख़ुद सोचिए, अमित के पिता से मैं पहली बार इस विषय पर बात कर रहा था।

—यह तो आप अपने दोस्त से पूछिए, बग़ावत करने का शौक तो इन्हें ही है। और एक लंबी सांस खींचते हुए वह बोले थे—हमने तो भैया बचपन से ही ये टोपी पहनी है। इसकी इज्जत क्या है और कैसे बनती है, यह तो हमें ही मालूम है !

—आप ठीक कह रहे हैं। हर आदमी के ऊपर उसके माहौल का असर रहता है। आप लोगों का ज़माना बहुत दूसरा था···

—उन्होंने बीच में ही मेरी बात काट दी थी—ये सब आप लोगों की फिला-सफ़ी है। मेरे ख्याल से कुछ ज़माना-वमाना नहीं बदला। हमारे ज़माने में भी पैसे और इज्जत का वही हाल था जो अब है···बहुत मुश्किल, से हासिल होती है ये चीज़ें।

मैंने फैसला कर लिया था कि बातचीत बेकार थी। लेकिन तभी अमित बोला—ठीक है। आप जैसा चाहते हैं वैसा ही होगा अब इस घर में। जब तक मां हैं घर में···, उसकी आवाज़ डूब गई थी।

—अच्छा···? लगता है अब अगली बार का प्रोग्राम मां-बेटे मिलकर करेंगे, वह कुर्सी से उठकर अपने मुंह में दबे पान को चबाते हुए बोले थे—लेकिन साहब-ज़ादे···कम-से-कम नौकरी ज़रूर ढूंढ़ लेना कोई दो-चार सौ रुपये की। कभी

जोश में आकर अपनी मां को ही ले डूबो। और वह कमरे से वाहर निकल गये थे···

—खाना खा लीजिए अब ! अमित की पत्नी ड्राइंग रूम के दरवाज़े पर खड़ी थी।

मैंने घडी देखी। नौ बजे थे। मैंने अपने गिलास में से एक घूंट भरकर हंसते हुए कहा—नौ बजे हैं यार अभी। तुम कब से नौ बजे खाना खाने लगे। भाभी को खा लेने दो, हम लोग वाद मे खा लेंगे, और मैंने अपनी पत्नी को आवाज़ दी—शान्ता !

शान्ता शायद सारी बातचीत दरवाज़े की ओट मे खड़ी सुन रही थी। दरवाज़े मे अमित की पत्नी के पीछे खड़े होकर, शर्मिन्दा-सी आवाज़ में बोली—मैं तो कह रही हू भाभी से कि अभी ज़रा भी देर नही हुई है। हम लोग भी दस के पहले कहा खाते हैं ··लेकिन आप समझाइये अब।

-—नही, नही, समझाना कुछ नही है इसमे, अमित फौरन बोला और फिर मुस्कराया—दरअसल जब से शराब छोड़ी है, भूख सही वक़्त पर लगती है·· आइ एम रिअली हंग्री।

मै जानता था कि अमित सिर्फ सकोचवश ऐसा कह और कर रहा था। लेकिन मैं यह भी जानता था कि उसे ऐसा करने से रोकना सभव नही था।

मेहमानो के कारण घर की दिनचर्या अमूमन बदल ही जाती है और ज्यादा-तर इस ढग से बदलती है कि दिन लंबा खिचता जाता है। लेकिन आज उल्टा ही हुआ था। साढ़े नौ बजे खाना ख़त्म हो गया था और अब ठीक दस बज रहे थे।

शान्ता घर बन्द करके और लाइट्स बुझाकर कमरे मे दाख़िल हुई और वार्डरोब के सामने जाकर कपड़े बदलने लगी।

—तुम्हारी क्या बात हुई अंजलि से ? कुछ समझ में आया···चक्कर क्या है ? मैंने पूछा।

—तुम्हें कुछ समझ में आया हो तो मुझे बता दो···, अपनी साडी की तह बनाते हुए उसने कहा—मुझे तो भई बहुत बुरा लगता है अंजलि को देखकर। सोचो ज़रा, कितने बडे बाप की बेटी है। ठीक है लव मैरिज की थी लेकिन इसका मतलब यह तो नही होता कि इस तरह ठोकरें खाती फिरे।

—अब जाहिर है कि अमित से शादी की है··· कुछ सोच-समझ के ही की होगी। और बेटा तो अमित भी बहुत बड़े बाप का है···उससे क्या साबित होता है ?

—साबित तो कुछ नही होता, वह बिस्तर पर आकर लेटती हुई बोली।

—भई ठीक है, लेकिन आदमी अकेला हो तो समझ में आता है···

शान्ता औरत थी। हिन्दुस्तानी औरत। और शायद सब कुछ सही कह रही

थी। यू भी उसने पूरी जिन्दगी मेरे साथ गुजारी थी। एक ऐसे आदमी के साथ जिसका वजूद धूल के उस गुबार की तरह था जो सरपट दौड़ती जिन्दगी अपने पीछे छोड़ देती है। इस बात का मुझे कोई अफसोस नही है कि मैं इतनी बंधी-छंटी और सहूलियत पसन्द जिन्दगी जीता रहा हूं। यह मेरी कोई मजबूरी हो सकती है। लेकिन असली बात यह है कि अमित ने वैसी जिन्दगी कभी नही जी। और शायद यह सारा झगड़ा था ही इसीलिए कि हम सब, उसके पिताजी से लेकर, मेरी पत्नी तक जो अमित को बिल्कुल भी नही जानती थी, सबके सब अमित को एक ऐसी तस्वीर में देखने की कोशिश कर रहे थे जिसमें वह था ही नही। दर-असल जिन्दगी को हर आदमी बचपन के एक ऐसे ग्रुप-फोटोग्राफ की तरह देखता है जिसमे वह वक़्त की सारी धूल और अंधेरे के बावजूद अपने आप को पहचान सकता है। जबकि जिन्दगी का चेहरा उसी ग्रुप-फोटोग्राफ के जमाने से बदलना शुरू हो जाता है'''और फिर एक ऐसे बवंडर-तूफान में गुम हो जाता है कि उसे ख़ुद अपना चेहरा याद नही रहता। जिन्दगी लुटेरे की होती है, हमलावरो की, या खानाबदोशो की। पक्के मकानों और रंगीन दीवारों के बीच रहने वाले हम लोग तो उसकी एक तस्वीर टांगे रखते हैं अपने ड्राइंग रूम्स मे। लेकिन जिन्दगी या इतिहास उनमे नही होता और इसीलिए न जिन्दगी हमारी है और न इतिहास। वह सब तो उन लोगों का है जो सदियों पहले भाग गए थे—भेड़ों के एक झुंड मे से। या उनका है जो कहीं भी, कभी टिक नही पाते। सूरज की तरह। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि जिन्दगी अमित जी रहा है, मै नही। मैं तो एक मरीज की तरह हूं जिसकी जिन्दगी या मौत के लिए सिर्फ एक ही शर्त है—वक़्त पर दवा। सुबह छ: बजे दूधवाला। साढ़े छ: बजे अखबार। सात बजे रेडियो। आठ बजे घर की नौकरानी। नौ बजे नाश्ता। दस बजे बच्चों का स्कूल। ग्यारह पर ऑफिस'''और फिर एक माकूल और कीमती दवा के असर का आराम'' वह दवा जो मै अपने इलाज के लिए ख़रीद सकता हूं। और अमित? अमित तो उन पागल लोगो की तरह था जो भरे बाजार'''दिन के बीचोबीच, सख्त गर्मी में किसी चौराहे पर, टाट के थेगलों से ढके'''भीख में मिले किसी कम्बल में एक और पैबन्द लगाते बैठे होते हैं। क्योंकि उनके भीतर गर्मी नही बल्कि सर्दी का मौसम छाया होता है। एक ऐसा मौसम'''जो ख़ुद जिन्दगी की सुध-बुध खो देता है।

शान्ता सो गई थी। वह जानती थी कि मुझे बिस्तर में लेटकर कभी-कभी कुछ सोचने की आदत थी। उसने कई बार यह देखा होगा कि उसकी किसी बात के बाद मै शायद कुछ कहने के लिए कोशिश करता रहा हूंगा। लेकिन बाद में मैं कुछ सोचने लगा हूगा। शान्ता जीवन मे सब कुछ चाहती थी। एक अच्छी, मशहूर पेन्टिंग का प्रिंट, एक बहुत बढ़िया फ्रेम'''एक माकूल रग की दीवार—ऐसे

मेहमान जिन्हें कि उस पेन्टिंग का सारा इतिहास मालूम हो···और ऐसे लोग, जो उसे यह सब कुछ सफलतापूर्वक करने दे सकते हों और उसकी इस नादानी पर खुश भी हो सकते हो।

लेकिन अमित ? वह प्रिन्ट नही था। मैं जानता हूं, शायद वह ओरिजिनल भी नही था·· मैं मान सकता हू लेकिन,···बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि अमित हम लोगों की जिन्दगी के ढांचे मे दरअसल एक बहुत सीधी-सादी तस्वीर था। कुछ-कुछ उस तरह की तस्वीर···जैसे कि किसी शिकारी द्वारा लिया हुआ एक फोटोग्राफ जिसमें · एक शेरनी अपने दो बच्चों को दूध पिला रही है।

यू तो—गाय और बछड़ा—या बकरी और मेमने या ऐसी ही किसी और तस्वीर से बिल्कुल वही बात साबित की जा सकती है—जो हम में से हरेक कर सकता है और जिसकी किसी को भी कोई जरूरत नही है। लेकिन हम सब के सब शेरनी से इतने डरते है कि उसके बारे में एक मामूली आदत को भी सोचने से घबराने लगे है।

शान्ता को मैंने बाद मे समझा दिया था कि यह स्थिति नाजुक तो बहुत थी लेकिन कुल मिलाकर हमें सिर्फ इतना करना था कि अमित या अंजलि से इस विषय पर बात बिल्कुल नही करनी थी। यह एक अच्छा इत्तफाक था कि आज-कल पैसे की उतनी तगी नही थी। अगले दो-तीन दिनों मे ही घर की सारी दिन-चर्या फिर से स्थिर हो गई थी। अमित मेरे साथ ही घर से निकल जाता था। सारे दिन क्या करता था मुझे मालूम नही। मेरे ऑफिस से लौटने के बाद ही वह घर आता था और जैसा कि हमेशा उसके साथ होता था, यह पता लगाना मुश्किल होता था कि दिन भर में उसके साथ क्या कुछ हुआ है। अंजलि दिन भर अपने बेटे के साथ घर पर ही रहती थी। हर रात खाना खाने के बाद मैं और अमित कुछ देर के लिए बाहर टहलने निकल जाते थे। और उसी दौरान अमित अपने आप ही मुझे कुछ-कुछ बातें बताता था।

इन्ही बातों के आधार पर मुझे पता चला कि इस बार दरअसल एक मामूली-सी बात को लेकर ही अमित ने इतना बड़ा फैसला कर डाला था। बकौल उसके हुआ यह था कि जिस दिन उसके बेटे के स्कूल से फीस जमा कराने का नोटिस पहुंचा था, इत्तफाक से उसी दिन अमित के 'डाइनर्स क्लब' के क्रेडिट कार्ड की कलेक्शन इटीमेशन भी पहुच गई थी। ऑफिस में उस रोज़ उसके पिता बैठे हुए थे। क्रेडिट कार्ड का बिल छ-सात हज़ार के करीब था। स्कूल की फ़ीस लगभग दो सौ रुपये थी। उसके पिताजी ने क्रेडिट कार्ड के भुगतान का चैक भेज दिया था और बच्चे के स्कूल की फीस रोक ली थी। शाम को जब अमित क्लब से लौटा था तो मुंशीजी ने उसे सारी जानकारी देते हुए बताया था कि 'लाला' दिन भर

बहुत नाराज रहे थे। उसी रात अमित बिल्कुल चोरों की तरह कोठी की कंपाउंड फलांगकर बीवी और बच्चे के साथ यह शहर छोड़कर चला आया था।

—देखो केशव—बात मालूम है यहां पर अटकी हुई है सारी। वो ये समझते हैं कि इस बच्चे का एक क़ीमती पब्लिक स्कूल में पढ़ना जरूरी है। और उन स्कूलों में पढ़ने के बाद बच्चों का जो हश्र होता है, उसको भुगतने के लिए वो तैयार नहीं हैं। जो कि मैं हूं। कितने लोग हैं इस मुल्क में जो डाइनर्स क्लब या चीसा क्या चला होती है यह जानते हैं? और ऐसा शायद एक भी नहीं है जो इन स्कूलों की पैदाइश न हो और इनके बारे में कुछ जानता हो। और तो और वो खुद नहीं हैं डाइनर्स के मेम्बर—हो भी कैसे सकते हैं। उन्होंने तो गद्दी पर बैठकर कौनें बेची हैं अपनी जवानी में! और ऐसा कोई हिसाब जो उनकी उंगलियों पर न गिना जा सके, उन्हें समझ में नहीं आता। अमित एकदम हंसने लगा था—यानि वो आदमी आज तक कैलक्युलेटर यूज नहीं करता। कैन यू बीट दैट?

—हां—लेकिन सिर्फ इसलिए कि उन्हें उसकी जरूरत ही नहीं है शायद। मैंने धीरे से कहा था।

—यही तो रोना है यार—, अमित की आवाज में पहली बार झल्लाहट उभरी थी—कैलक्युलेटर को वो एक फ़ालतू और बेकार की चीज समझते हैं लेकिन एमेरिकन कम्पनी के पेट्रोल और डीजल की डिस्ट्रीब्यूशन एजेंसी को नहीं। मैं अपनी तारीफ नहीं कर रहा और अपने आप को जस्टीफाई भी नहीं कर रहा बिल्कुल—लेकिन जिस एजेंसी के बल पर आज वो लाखों कमा रहे हैं वो उनके फरिश्तों को नहीं मिल सकती थी कभी। मैं कहता हूं, अगर वो खुद गये होते बम्बई इस डील के लिए—तो एजेंसी तो छोड़ो उन्हें इतना कैरोसिन भी नहीं मिलता कि एक रात लालटेन जला सकें। लेकिन ऐसे मौकों पर उन्हें अपने सपूत की याद फौरन आ जाती है—काफी दूर तक वह चुपचाप चलता रहा था।

क्योंकि उसकी आवाज में वही धुआं-सा भर गया था इसलिए मैंने तय कर लिया था कि अब और कुछ भी नहीं कहूंगा।

कुछ देर बाद वह खुद ही बोला था—और तुम्हें मालूम है केशव, इस एजेंसी को लेने में मैंने कितना रुपया खर्च किया था?

—जाहिर है ऐसी चीजें पैसे का ही खेल होती हैं, मैंने कहा था।

—दैट्स राइट ''इस डील के लिए पता नहीं कितनी पार्टीज आई हुई थी''' लाखों का खेल था सचमुच—लेकिन लाला रामप्रसाद जी को यह एजेंसी लेने में सिर्फ़ दस हज़ार रुपये ख़र्च करने पड़े थे। जिसमें कि छ: हजार एक्चुअल्स थे यानि मेरा प्लेन टिकिट—होटेल बिल—अपकीप—! बस—!

यह सच था कि अमित वाकई अपने माहौल और परवरिश का एक ऐसा नमूना था जो लाखों, करोड़ों लोगों की ज़िन्दगी के ढर्रे पर भारी पड़ता था। वह

खुद ही बताता रहा था···कि उसे उस एजेंसी मिलने की कोई सूरत नजर नही आ रही थी। बिजनेस के लिहाज से इतना फ़ायदेमन्द डील था वह कि हर पैसे वाला आदमी उसमे पूरी दिलचस्पी ले रहा था। उसने पैसे के बजाय दिमाग का सहारा लेकर एक रिस्क लिया था। कम्पनी ने बम्बई के ताज होटल में किसी खास दिन सब प्रत्याशियों के इंटरव्यू रखे थे। अमित ने दिल्ली से टेलीफोन पर उनसे बात की थी और यह ज़ाहिर करते हुए कि वह बिजनेस संबंधी किसी आकस्मिक परिस्थिति मे व्यस्त है, उनसे पूछा था कि क्या वह अगले दिन अपना इंटरव्यू दे सकता है। उसने बहुत सोच-समझकर इस प्रोजेक्शन पर दांव लगाया था। यू भी वह शुरू से ही कहा करता था कि इंसानों के बीच सिर्फ एक ही खेल होता है जो सारे फैसले कर देता है—क्यूरॉसिटी का खेल। जब तक कोई भी किसी के बारे मे क्यूरिअस है या सशंकित है, वह उसमें दिलचस्पी लेता रहता है। वन्स ही नोज़ दैट यू आर ए कैन ऑव कोल्ड बियर, ही ड्रिंक्स द बियर अप एंड थ्रोज द कैन अवे—वह कहा करता था। और यह बात न सिर्फ़ धीरे-धीरे उस पर एक जुनून की तरह सवार होती गई थी बल्कि उसका पूरा व्यक्तित्व किसी नाली की तरह बन गया था, जिसे दूसरे लोग अपनी सहूलियत और हिसाब के मुताबिक बनवाते है।

—तुम्हे मालूम है ? चलते-चलते वह रुक गया था—एजेंसी मिलने की खबर मैंने उन्हे बम्बई से ही फोन पर दे दी थी। लेकिन जब मैं दिल्ली वापिस पहुंचा··· इत्तफाक से उसी रोज अजित की बर्थ-डे थी। एंड माई फादर···बट नो···लाला रामप्रसाद ने उस रोज चेम्सफोर्ड क्लब मे एक ज़ोरदार पार्टी की थी और उसके इन्विटेशन कार्ड पर छपा था कि उनके पोते की सातवी सालगिरह का जश्न है—उसी पोते की सालगिरह जिसके स्कूल की दो-सौ रुपये की फीस का चैक···उन्होने नही काटा, कैन यू सी माई पॉइंट ? वह धुधली नजरो से मेरी तरफ देखता खड़ा रहा था।

मुझसे कुछ भी बोला नही गया था।

—इतना तो यार—उसकी आवाज मे हताशा का एक सांप फुफकारने लगा था—एक रंडी भी अपनी बेटी से, उसके पहली बार ग्राहक के पास से लौटने के बाद पूछती है कि बेटा···तू ठीक तो है···हमारे लाला रामप्रसाद···अच्छी तरह जानते है—कि आदमी को रंडी से भी बदतर किया जा सकता है—वह अचानक चुपचाप हो गया और कुछ क्षणो बाद वापिसी के लिए कदम उठाते हुए बोला—लेकिन शायद इसमे सारी ग़लती उन्ही की नही है—वो खुद भी शायद एक भेड़ ही हैं—जिन्हे कुछ लोग मुल्क के नाम पर हाकते आये हैं—

वह चुप हो गया और बाक़ी का सारा रास्ता फिर ख़ामोशी से कटा।

कमरे में घुसते ही मैंने देखा कि अमित बड़ी वाली सोफा-सीट पर आराम से लेटा हुआ था। उसके हाथों में मेरी कविताओं की किताब थी। मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ। एक तो वह आज जल्दी वापिस आ गया था। दूसरे उसका कविताएं पढ़ना'''यह नहीं कि वह पढ़ता नहीं था। बल्कि बात उल्टी ही थी, उसके जैसे व्यक्तित्व वाले आदमी के लिए वह काफ़ी पढ़ता था। कविताओं में अलबत्ता उसकी दिलचस्पी ज्यादा नहीं थी लेकिन मैं जानता था कि जहां तक साहित्य का सवाल था, वह मेरे कई साहित्यिक मित्रों से कहीं ज्यादा पढ़ता था। लेकिन आज-कल वह जिस मन स्थिति में था, उसे देखते हुए मुझे उसके हाथों में वह किताब देखकर सचमुच आश्चर्य हुआ।

मेरी आहट सुनकर उसने किताब बन्द कर दी, और वह उठकर बैठते हुए बोला—आइए'''कवि महोदय'''आपकी ही उछल-कूद का जायजा ले रहा था मैं'''वह हंसने लगा।

—खैरियत तो है'''मैंने बैठकर जूते खोलते हुए कहा—भले आदमी, अगर भूख लगी थी तो शान्ता से कहकर कुछ खा लिया होता'''कविताओं को छील भी लोगे तो अन्दर से केला नहीं निकलेगा।

वह खुलकर अपने खास अन्दाज में कहकहा लगाने लगा। जब से वह आया था, उसकी यह हंसी आज मैं पहली बार सुन रहा था। हंसी रुकने पर वह बोला—तुममें बस एक यही अच्छी बात है कि अपने बारे में कोई मुगालता नहीं रखते। एक हम हैं मुगालतों का आचार'''वह फिर हंसने लगा।

—चाय हो जाए, मैंने उठकर जूतों को अल्मारी में रखते हुए पूछा और शान्ता को आवाज देना ही चाहता था कि वह चाय की ट्रे के साथ कमरे में दाखिल हुई।

—बिल्कुल हो जाए, उसने खड़े होकर शान्ता से ट्रे ले ली—थैंक्यू भाभी... एंड'''और अपनी आवाज बनाकर मुस्कराते हुए बोला—तखलिया!

शान्ता हंसते हुए कमरे से बाहर निकल गई और वह बैठकर चाय बनाने लगा। कुछ क्षणों बाद चाय का कप मेरी तरफ बढ़ाते हुए वह धीमी आवाज में बोला—लेकिन केशव'''तुम कविताएं अच्छी लिखते हो।

मैं चुप रहा।

क्रिटिसिज्म या एप्रीसिएशन तो मुझे आता नहीं और मुझे यह भी नहीं मालूम कि मेरा यह अहसास तुम्हें कितना अच्छा या बुरा मालूम होगा या कि उसका कोई मतलब भी है या नहीं, लेकिन जब मुझ जैसा आदमी कविताओं, कहानी, उपन्यास या पेन्टिंग्स या किसी भी वर्क ऑव आर्ट का सामना करता है तो कुल मिलाकर शायद एक-सी चीज है जो सचमुच होती है। आइ मीन ' इट रिअली हैप्पन्स। उसकी नजरें अपने हाथों में उस चाय के प्याले पर टिक गयी थीं।

मैंने उसकी तरफ देखा। उसका चेहरा बहुत तेजी से भागते हुए बादलों की तरह हो चला था।

—जिन्दगी दरअसल एक ललक होती है ''एक लालसा। भीतर की उस कॉनफ्लिक्ट को अपने बाहर भी कहीं और'''बिल्कुल साकार देखने की'''उसकी नजरें वहीं टिकी हुई थीं और वह कह रहा था—और भीतर की उस उलझी हुई गुत्थी को किसी के भी द्वारा, कहीं पर भी, कैसे भी'''एक बार बहुत सुलझे हुए ढंग से, उतनी ही उलझी हुई देख पाना ' शायद यही कला है—वह चुप हो गया। लेकिन उठते हुए बादलों का वह सिलसिला मुझे बांधे हुए था।

—जरा सोचो ' लाखो, करोड़ों'''अनगिनत पलों की इस जिन्दगी में एक क्षण होता है जब एक मुझ जैसा आदमी भी कला के सामने रुक जाता है। वह सचमुच कला का ही क्षण होता है। उसका अकेला, अजेय क्षण, मुझे इससे बिल्कुल मतलब नहीं कि मैं या तुम क्या हो ''कैसे हो'''तुम्हारी क्या मजबूरियां हैं'''या जिन्दगी ने तुम्हारे साथ क्या सलूक किया। असल में इन चीजों से किसी को कोई भी मतलब नहीं होता। मतलब सिर्फ एक उस क्षण का है जो न जाने कितने लोगो'''कितनी जिन्दगियों'''कितने दुःख'''और कितने मौसमों के पार एक पूरी जिन्दगी का असर छोड़ता है। बस एक क्षण! उसकी नजरें मेरी तरफ उठीं और एकदम वह सकुचा-सा गया। और फिर हंसने लगा।

उसके हंसने से पहले उसकी आंखें किसी खरगोश की आंखों जैसी हो गयी थीं, लेकिन हंसी ''हंसी तो सब कुछ कितना बदल देती है!

—खैर छोडो ''इनफैक्ट सॉरी यार'''वो दरअसल कहते हैं न कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है'''वही चक्कर है आजकल ' वह अचानक एक और कहकहे के पीछे छिप गया।

मैं जानता था कि उस विषय पर वह न कुछ भी और कहना या मुझे बताना चाहता था और न सुनना। इसलिए उसकी हंसी को एक गेंद की तरह वापिस लौटाते हुए मैंने कहा—हाँ ' लेकिन खरबूजे का रंग बदलना एक बात है, और तरबूज बनना बिल्कुल दूसरी! समझे कुछ आप?

—कुछ भी बना लो प्यारे'''हैं तो अपन अचार'''तुम जानते हो, उसके भीतर से एक खामोशी ने उसकी हंसी पर झपटते हुए कहा।

—अचार नहीं हैं आप आप तो मुरब्बा हैं'''भाई साब, एक हजार हरामियों का मुरब्बा'''बस ये है कि आपके लायक कोई मरीज इस दुनिया में अभी तक पैदा नहीं हुआ जिसको कोई हकीम बतौर दवा के यह मुरब्बा सुझाए।

—वाकई यार'''तुम हो दोस्त''', अमित हंसते हुए बोला'''कुछ क्षणों के लिए वह चुप हो गया और फिर एक बिल्कुल नई आवाज में बोला'''लेकिन''' इस मुरब्बे ने आज एक मरीज ढूंढ लिया है। यू नो, एक नौकरी मिल गई है

आज। आठ सौ रुपये महीना···, वह बता रहा था···।

—पापा आपसे कोई मिलने आए है···, मेरा बेटा कमरे के दरवाज़े से झांक कर बोला।

—कौन है ? मेरे मुंह से निकला और फिर चाय का एक घूंट लेकर मैंने कहा—अच्छा, तुम बैठाओ उन्हे, मैं आता हूं। फिर मैंने अमित की तरफ देखा—अरे वाह, यह तो सेलीब्रेट करने वाली चीज़ है···काम क्या है ?

बताता हू, तुम हो आओ पहले, उसने अपनी चाय ख़त्म की और दूसरा प्याला बनाने लगा—देख लो, कौन है ?

—ठीक है, तो आता हूं मैं, कहते हुए मैं उठ गया।

ड्राइंग रूम मे दाखिल होते ही मैं ठिठक गया। सामने मुंशीजी बैठे हुए थे। अमित के पिताजी के ख़ानदानी मुंशी, जो रुपये-पैसे के हिसाब के अलावा भी व्यवसाय और घर के बहुत-से मामलों मे काफ़ी महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। अमित घर का इकलौता लड़का था, इसलिए वैसे तो शुरू से ही सबका लाडला रहा था लेकिन मुंशीजी का उससे एक ख़ास ढंग का रिश्ता था। वह उनकी बहुत इज्जत भी करता था।

—अरे मुंशीजी···आप ? मैं अपना आश्चर्य दबा नही पाया—नमस्ते ? आप कैसे···?

—नमस्ते बेटा···जीते रहो, उन्होने खड़े होकर फ़र्श की तरफ देखते हुए कहा—ऐसे ही बेटा···

—बैठिए, बैठिए···मैंने उनके दायी तरफ वाली कुर्सी पर बैठते हुए कहा और फिर आवाज़ दी—शान्ता···!

कुछ क्षणो बाद शान्ता कमरे में आई। वह उन्हें नही पहचानती थी इसलिए मैंने परिचय करवाया—मुंशीजी···ये आपकी बहू है शान्ता···और शान्ता आप मुंशीजी···अमित के पिताजी के बिल्कुल दाएं हाथ समझो···हम लोगो को इन्होंने बचपन में बारिश में नंगे-नहाते तक देखा है, मैं हंसने लगा।

शान्ता ने आगे बढकर उनके पैर छुए।

—अरे नही बेटा, उन्होंने खड़े होते हुए शान्ता को उठाया और उसके सिर पर हाथ फेरते बोले—जीती रहो बेटी···सदा सुहागिन रहो, दूधो नहाओ, पूतो फलो···

—अरे बस-बस मुंशीजी···एक ही आशीर्वाद काफी है आजकल, मैंने हंसते हुए कहा और फिर शान्ता से बोला—शान्ता ज़रा चाय भिजवाना।

—अब हम लोगों के पास तो बेटा यही है देने को, मुंशीजी ने बैठकर अपनी टोपी उतारते हुए कहा—आजकल का जमाना तो बहुत बदल गया है लेकिन हम लोग तो और पुराने ही होते जाते हैं।

कुछ देर के लिए ख़ामोशी छा गई। मुंशीजी अपनी धोती के किनारे से अपना चश्मा साफ करने लगे थे। और मैं इस पशोपेश में था कि, अमित क्या रुख़ अपनाना चाहेगा और उसके अनुसार मुझे क्या करना चाहिए। मैं मुंशीजी से झूठ बोल सकता था कि अमित यहां नहीं आया है। लेकिन फिर ख़ुद अमित ने ही मेरी मुश्किल हल कर दी।

—नमस्ते मुंशीजी···वह कमरे में दाख़िल होते हुए कह रहा था।

उन दोनों में फिर क्या बातचीत हुई यह तो मुझे नहीं मालूम। अमित यहां ड्राइंग रूम में कुछ देर तक बैठा इधर-उधर की बातें करता रहा था। उस दौरान मुझे बस मुंशीजी के ज़रिए यही सूचना मिली थी कि अमित के पिताजी को दिल का दौरा पड़ा था और उनकी तबियत अभी संभली नहीं थी। अमित यह सुनकर कुछ नहीं बोला था। कुछ क्षणों बाद उसने मुंशीजी से कुछ औपचारिक-सी बातें पूछनी शुरू कर दी थी। मैं हाथ-मुंह धोने का बहाना करके उठ गया था।

—कुछ देर बाद हम लोग आते हैं अभी, कहकर अमित मुंशीजी को लेकर घर के बाहर निकल गया था। लगभग डेढ़ घंटे बाद वे दोनों लौटे थे और उसके बाद फिर ड्राइंग-रूम में बैठकर बातें करते रहे थे। अब नौ बज रहे थे। शान्ता ने खाना मेज़ पर लगा दिया था। मैं उन लोगों को बुलाने जब ड्राइंग रूम में दाख़िल हुआ तो अमित काफ़ी उत्तेजित स्वर में कह रहा था—मेरी समझ में नहीं आता कि आप किसकी इज़्ज़त के बारे में बात कर रहे हैं मुंशीजी। आप तो ऐसे कह रहे हैं जैसे दिल्ली में लोग मुझे महात्मा गांधी समझते हैं। और आप लोगों के पास तो सारी सच्ची ख़बरें हैं मेरी ··मैं रंडीबाजी करता हूं···जुआ खेलता हूं, दारू पीकर क्लब में पड़ा रहता हूं···और रहा सवाल घर से भागने का तो वह भी कोई नई बात तो है नहीं। छः बार पहले भाग चुका हूं, ये सातवीं बार है··· सारा शहर जानता है कि ये घर से भाग जाते है···अचानक उसकी नज़र मुझ पर पड़ी और वह चुप हो गया।

—चलिए, खाना तैयार है···मैंने कहा।

अमित फौरन खड़ा हो गया और बोला—ख़ैर छोड़िए···आइए खाना खायें। सीधी-सी बात है मुंशीजी···आप तो जाकर यह कह दीजिएगा कि मैं आपको यहां मिला ही नहीं।

खाने की मेज़ पर कुछ देर तक ख़ामोशी रही। अमित की पत्नी मुंशीजी से नमस्ते करके शान्ता के साथ रसोई में व्यस्त हो गई थी। मुंशीजी अपनी थाली की तरफ देखते चुपचाप बैठे थे।

—लीजिए, शुरू कीजिए, मैंने कहा।

—ऐंअ···वह चौंक-से पड़े और फिर हां, हां कहते हुए उन्होंने कौर तोड़ा

और बोले—देखो बेटा अमित, तुमने जो कुछ भी कहा है बिल्कुल ठीक है। उसका कोई जवाब न तो मेरे पास है और न लाला के पास। असल में बात अब सवाल-जवाब की रही कहां है? वह तो बस जब तक बहूजी थी तभी तक था···

—बिल्कुल यही बात मैं आपसे कह रहा हूं, अमित शान्त स्वर में बोला—यह सिर्फ़ उन्हें ही लगता है कि मुझसे उनके ताल्लुकात ख़राब हो रहे हैं या खत्म हो रहे हैं। सच बात यह है कि हम दोनों के बीच ताल्लुकात कभी रहे ही नही। मां की वजह से ऐसा धोखा ज़रूर होता रहा।

—बात ताल्लुकात की नही है बेटा, रिश्ते की है···खून की। जहां खून का रिश्ता होता है वहां दिमाग से काम नही लिया जा सकता, मुशीजी ने धीरे-धीरे उसे समझाने की कोशिश करते हुए कहा।

लेकिन यह तो पता चले कि आख़िर किस चीज़ से काम लिया जाता है? और कौन-सा काम? अमित ने उसी आवाज़ में पूछा—रिश्ता बनाए रखने का न? उसकी जरूरत है क्या आख़िर? और फिर अगर यही सवाल है तो दुनिया जानती है कि मैं उनका लडका हूं। यह बात दूसरी कि मैं श्रवण कुमार नही हूं··· और वह मैं कभी हो भी नहीं सकता। चाहूं तब भी नही।

जाहिर था कि बात कहीं नही पहुच रही थी और शायद वैसा संभव भी नहीं था। इसलिए मैंने अमित को आंख दबाकर चुप हो जाने का इशारा किया। मुंशीजी भी कुछ देर तक चुपचाप खाना खाते रहे। और उसके बाद उन्होंने मुझसे पूछा, दिल्ली की तरफ रात को भी कोई गाडी है यहां से?

—हां, गाडी तो है···साढे दस पर शायद, लेकिन रात को कहां जायेंगे। एक-आध दिन तो रुकिए, मैंने सहज स्वर से कहा।

—नही बेटा, जाना तो फौरन ही होगा, उन्होंने उत्तर दिया—असल में लाला की हालत ठीक नही है। और वहां कोई भी तो नही घर में अब।

खाना खत्म होने तक फिर हममें से कोई कुछ नही बोला। मेरी आखो के सामने एक तस्वीर उभर आई थी। दिल्ली मे पृथ्वीराज रोड पर खड़ी उस लम्बी-चौड़ी बेहद आलीशान कोठी मे, अपने कमरे में, विक्टोरियन शैली के उस भारी-भरकम पलंग पर वह लेटे हुए हैं। सारी कोठी सुनसान है। और उस वीरानी मे उनके पलंग के पास सफेद कपड़ो से ढकी एक नर्स ऊंघ रही है। मुझे झुरझुरी-सी आ गई।

अमित खाना खत्म कर चुका था और चुपचाप मेज़ पर गौर से न जाने क्या देख रहा था। मुंशीजी के उठने की आवाज़ से उसकी चेतना लौटी। लेकिन फिर भी वह बोला कुछ नही।

वॉशबेसिन पर हाथ धोने के दौरान ही मुंशीजी ने अपनी घडी देखकर मुझसे कहा—गाड़ी का समय हो ही रहा है···कोई रिक्शा अगर ··

—नही, नही···मैं चल रहा हूं न स्टेशन···मैंने कहा।

—अरे नही बेटा, तुम क्यों तकलीफ करते हो, मैं निकल जाऊंगा।

—कैसी बात कर रहे हैं आप?

वे चुप हो गए और फिर धीरे-धीरे दरवाजे की तरफ चलने लगे।

स्कूटर की चाबी लेकर जब मैं बाहर पहुंचा तो अमित उनके सामने खड़ा था। दोनों चुप थे। मुझे स्कूटर की तरफ बढ़ता देख मुंशीजी अमित से बोले—अच्छा बेटा, चलता हू मैं फिर। यही कहूंगा कि तुम यहां नहीं मिले मुझे···उनकी आवाज़ फिर आई थी—आगे जो हरि इच्छा···

—जी! अमित का जवाब था।

स्टेशन तक पहुंचने के दौरान वे चुपचाप स्कूटर की पिछली सीट पर बैठे रहे। स्टेशन पहुंचकर मैंने उनका टिकिट खरीदकर उन्हें दिया। गाड़ी आने मे कुछ मिनट बाकी थे।

मैंने सोचा नही था ऐसा बेटा···अचानक वह बोलने लगे—लाला को तो यह भी नही सूझा था कि अमित बाबू यहां हो सकते हैं। वह तो मेरा ही ध्यान गया इस तरफ़। सोचो, मैं उनसे कहकर आया था कि हो न हो अमित यहा आया होगा और अगर ऐसा हुआ तो मैं उसे हर हालत में वापिस ले आऊंगा।

मेरे पास कहने के लिए कुछ भी नही था।

—अफसोस इस बात का है कि बिचारे मेरी बात की आस में इतनी तकलीफ और सहेंगे···, उनकी आवाज़ फिर भर्राने लगी थी—सच कहता हूं बेटा···मेरी जात से, ईश्वर गवाह है, यह पहली बार उन्हे तकलीफ पहुंचेगी। और बेटा केशव, मैं तुमसे झूठ नही कह रहा···लाला का बचना मुश्किल है बहुत।

लेकिन क्या किया जाए मुंशीजी···मैंने तो खुद उसे काफी समझाने की कोशिश की लेकिन आप जानते तो हैं उसे।

—अचरज तो यही है बेटा, कि सब लोग बाप-बेटे दोनो को खूब अच्छी तरह जानते हैं। नही जानते तो बस बाप-बेटे ही···एक दूसरे को!

गाड़ी की आवाज़ ने हम दोनो को चुप कर दिया। भीड़ ज्यादा नही थी इसलिए गाड़ी रुकने पर वह सामने वाले डिब्बे मे ही चढ़ते हुए बोले—तुम जाओ अब! गाडी यू भी ज्यादा देर नही रुकती थी। मैं उसके चलने तक वहीं खड़ा रहा, लेकिन हम लोगों मे और कोई बात नही हुई।

घर पहुंचते-पहुंचते ग्यारह बज रहा था। अमित घर के बाहर वाली सड़क पर ही टहल रहा था। मैं स्कूटर अन्दर रखकर बाहर आ गया और चुपचाप उसके साथ टहलने लगा।

—और कुछ कहा क्या? कुछ देर बाद अमित ने धीरे से पूछा।

—हूंअअ···, और वह फिर चुप हो गया।

कुछ देर बाद मेरे मुंह से निकला—लेकिन अमित···यह बात शायद सच है कि लाला···शायद उनकी हालत सचमुच काफ़ी खराब है। यु नो ही इज ऑल अलोन।

—हूंअअ···, उसकी आवाज में कोई जवाब नहीं था।

सुबह नाश्ते की मेज पर जब अमित कुछ देर तक नजर नहीं आया तो मैंने शांता से पूछा—क्या अभी उठा नहीं है ?

—कौन ? शांता अंडा छीलते हुए बोली।

—अमित · भई, और कौन ?

—वो तो कब के चले गए नाश्ता करके। साढ़े सात पर ही निकल गए थे।

मुझे याद आया—नौकरी। कॉफी का घूंट लेकर फिर मैंने कहा—हां, बताया तो था उसने कल कि कोई नौकरी मिल गई है। तभी मुंशीजी आ गए तो बात अधूरी रह गई। लेकिन सुबह साढे सात से कौन-सी नौकरी शुरू होती है !

—कह रहे थे कि कोई पेट्रोल पंप बन रहा है। यहां से बीस मील दूर है जगह। बस से आना-जाना रहेगा। शांता ने प्लेट मेरे सामने सरकाते हुए जवाब दिया और फिर जरा धीमी आवाज में बोली—कह रहे थे कि कोई मकान भी ढूंढ़ लिया है। यहां से थोड़ी दूर पर ही है···वह नई कॉलोनी बनी है न एल० आई० जी० वाली, उसमें।

—हूअअ !

शांता कुछ देर तक चुप रही फिर जैसे अपने आप से ही बोली—अंजलि और अजित कैसे रह पाएंगे उस मकान में·· बस ग़नीमत यही है कि नौकरी ठीक-ठाक है। आठ सौ रुपये बुरे नहीं होते।

मैं कुछ नहीं बोला। मेरी आंखों के सामने अमित की रिस्टवॉच का पट्टा घूम गया। यूं तो उसके रहन-सहन की ज्यादातर आदतें शौकीन रईसों जैसी थी लेकिन हम सब यार-दोस्तों के बीच उसकी घड़ी के स्ट्रेप का मजाक हमेशा चलता था। चमड़े के स्ट्रेप या चेन की बजाय अमित सूती सफ़ेद कपड़े का बना स्ट्रेप पहनता था जिसमें सोने का बना एक बहुत सादा बकल था। लांड्री से जब उसके कपड़े धुलकर आते थे तो उनमें सबसे ऊपर वो 15-20 पट्टे रखे रहते थे, कलफ लगे हुए, बिल्कुल साफ़ सफेद। हर रोज वह एक नया स्ट्रेप बदलता था। इस बात को लेकर दोस्तों के बीच न जाने कितने लतीफे बनते रहते थे। अलबत्ता उसकी यह आदत आजकल भी बदस्तूर चल रही थी।

शाम को जब वह घर लौटा तो सात बज रहे थे। हाथ-मुंह धोकर जब वह मेरे कमरे में आया तो हमेशा की तरह मेरे लिए अंदाज़ा लगाना कि उसका दिन कैसा बीता, मुश्किल था। लेकिन फिर उसने अपने आप ही बताना शुरू कर

दिया — शहर के एक पुराने रईस जिनका कि काफ़ी ट्रांसपोर्ट का कारोबार था, शहर से एक कस्बे में नया पेट्रोल पंप खोल रहे थे। अमित को पेट्रोल के धंधे का बहुत बड़ा अनुभव था और इसलिए वह नौकरी उसके हाथ आ गई थी।

—बुड्ढा है वैसे खुर्राट · लेकिन पहले राउंड में ही फ्लैट हो गया। अमित ने हंसते हुए कहा—वह समझ रहा था कि कम-से-कम 6 महीने लग जाएंगे पंप शुरू करने में···बस अपन ने कबूतर निकालकर उड़ा दिया। मैंने कहा—देखिए, पंप की बिल्डिंग और पूरा इनले वगैरा दो महीने में तैयार हो जाएगा···शुरू आप जब से चाहे करें।

—लेकिन हो भी जायेगा दो महीने में ? मैंने पूछा।

—प्यारेलाल···दो महीने में तो अगर जमीन खोदनी शुरू कर दो तो उसमें भी हैंडपम्प लगा के पेट्रोल निकल जायेगा···और फिर यहां किया ही क्या है ज़िंदगी भर···बहरहाल मतलब यह कि अभी तो दो महीने के लिए मामला फिट है, और वह चुप हो गया।

—तो फिर सेलीब्रेशन हो जाए इसी बात पर···मैं हंसते हुए उठा और अल्मारी से रम की बोतल और गिलास निकालते हुए बोला—शांता बता रही थी कि तुमने कोई मकान वगैरा ढूढ़ लिया है।

—हां, ढूढ़ा न। वह बड़े सहज ढंग से बोला—मेरे लिए मत डालना···

—छोड़ो भी यार···एक पेग में क्या फ़र्क पड़ता है, नाटक मत किया करो हर बात को लेकर। मैंने कुछ झुंझलाकर कहा।

—प्लीज केशव···एंड लेट्स नॉट स्पाइल द फन एट दिस···राइट ? यू नो मी ! उसने बहुत आत्मीय मुस्कुराहट के साथ कहा।

—ठीक···मैंने कहा और अपने लिए एक गिलास में रम और पानी लेकर मैं बिस्तर पर आकर बैठ गया।

अमित कुछ देर तक उसी तरह बैठा रहा फिर अपनी कुर्सी आगे खिसकाकर उसने अपने पैर पलंग पर टिकाकर फैला लिए और कुर्सी में धसकर लेट-सा गया।

—इधर आकर लेट जा न ठीक से, मैंने कहा।

—नहीं ठीक है ··वह बोला और उसने अपनी आंखें बंद कर ली।

यह तय था कि वह थक गया था। शरीर की अपनी एक अलग भाषा होती है। यह दूसरी बात है कि अक्सर दूसरे तो क्या खुद उस शरीर का मन उसे नहीं पाता।

—अब मुझे फिक्र नहीं है बस···उसी तरह आंखें मूंदे हुए लेटा हुआ अचानक बोलने लगा—यू नो···देयर इज नो पैनिक नाऊ। और अब मैं संभाल लूंगा। असल में अंजलि और अजित की वजह से मैं थोड़ा घबरा गया था। ओवरडो आई

में चक्कर क्या है कि अभी तक जब घर से भागते थे तो अकेले होते थे। इस बार कहानी जरा सीरियस है···

—अब घर से भागने के बारे में तो अगर मैंने कुछ कहा तो तू बुरा मान जाएगा···मैं मुस्कराया—लेकिन हां···इस बार कम-से-कम इतनी तो तुममें सद्बुद्धि जगी कि उस बिचारी को वहां मेमने की तरह बंधा हुआ नही छोड़ा।

—औरतों का दरअसल इक्विपमेंट ही दूसरा होता है, केशव, कुछ देर बाद वह बोला—दे लिव इन टर्म्स ऑव सफरिंग·· हम लोगों की तरह नही होती वो···वह चुप हो गया। लेकिन मैं जानता था कि उसने अभी अपनी बात पूरी नहीं की है।

कुछ क्षणों बाद वह मुस्कराया—अब तुम फिर कहोगे कि खरबूजा तरबूज हो रहा है लेकिन सच केशव, मुझे लगता है कि बहुत बड़ा फर्क होता है आदमी और औरत की जिंदगी में। इट्स लाइक ' हाउ शुड आई से···वह अपनी कुर्सी में सीधा होकर बैठ गया था और अचानक फिर वह खड़ा हो गया—देयर···देयर यू आर···याद है स्कूल मे एक ड्राइंग टीचर थी—पतली-दुबली नाज़ुक सी?

—हां, हां···मुझे फौरन याद आ गया। दुबली-पतली गोरी-सी ड्राइंग टीचर जिन्हें हम सब बच्चे बहुत पसंद करते थे।

—तुझे याद है, अमित के स्वर में एक उत्तेजना-सी भर गई थी—वो रंगों के बारे में बताया करती थीं हम लोगों को। याद है···प्राइमरी कलर्स···सेकेन्ड्री···टर्शरी···?

—हां···याद है।

—बस वो ही चक्कर है···इस बात में भी।

मुझे वह पाठ अभी तक याद था···कितने रंग होते है दुनिया में···वह गोरा, सफेद चेहरा 50-60 बच्चों की क्लास से पूछता था, और फिर उस चेहरे की वह मुस्कराहट गायब हो जाती थी—बहुत सारे रंग होते हैं···कहते हैं न कि दुनिया रंग-बिरंगी है। लेकिन जो चीज तुम लोगो को हमेशा याद रखनी चाहिए वह यह है कि इतने सारे रंगों मे बस तीन रंग होते हैं जिससे सब रंग बनाये जा सकते है। लाल···नीला और पीला···यानि प्राइमरी कलर्स···

—आदमी के रंग बहुत होते हैं। और उसके किसी भी रंग को छाना जा सकता है, तोड़ा जा सकता है···उसके अलग-अलग हिस्से किए जा सकते हैं···लेकिन औरतें···उनका बस एक ही रंग होता है·· कुछ क्षणों के लिए वह चुप हो गया और फिर बोला—मां का भी वही हाल था। अंजी का भी वही है।

कुछ देर के लिए हम दोनों चुप हो गए। मेरा गिलास खाली हो गया था। अमित ने उसे उठाकर पास वाली छोटी टेबल पर रखी रम की बोतल उठाकर दूसरा ड्रिंक बनाया और मुझे देते हुए कहने लगा—मैं सोच रहा हूं, परसो इतवार

है तो शिफ्ट कर लूं उस मकान में। तुम्हारी भी छुट्टी रहेगी तो तुम हाथ बंटा देना।

ऐसी जल्दी क्या है ?

—नहीं, जल्दी कोई नहीं है लेकिन मैं चाहता हूं कि एक पैटर्न-सा सेट हो जाए तो फिर मैं ज़रा कायदे से जुट जाऊं, असल में इस नौकरी और जो काम मुझे करना है उसमें कोई ज्यादा दम नहीं है। वह तो बस ऑर्गेनाइज़ करना है एक बार। उसके अलावा मैंने कुछ और लोगों से बात की है लियाजां वर्क की। बाहर की कई बड़ी कंपनीज़ बिजनेस करती हैं इस शहर में और काफ़ी काम है उस तरह का। पैसा भी है उस काम में। अब आठ-सौ रुपये से तो काम नहीं चलने वाला न !

—नहीं, यह तो बहुत ही बढ़िया बात है···और मैं मुस्करा पड़ा—यानि इस बार बगावत पूरी है !

वह हँसने लगा—बगावत काहे की है यार···फालतू के चक्कर हैं साले ! ख़ैर···उसे जैसे कुछ याद आया—एक बात मैं यह पूछना चाहता था कि क्या अजीत का एडमिशन यहां हो सकता है किसी स्कूल में ? मिड-सेशन है···लेकिन अगर कहीं हो जाए तो यह साल बच जाएगा।

—हो जाएगा। तुम उसकी चिंता मत करो···मैंने कहा।

—लेकिन कॉन्वेन्ट या पब्लिक स्कूल का कोई चक्कर नहीं है, वह बोला।

—क्यों ? बेवकूफ़ी की बात मत करो। अभी तक भी तो पढ़ रहा था वह पब्लिक स्कूल में। बच्चों पर इस तरह की चीज़ों का बहुत खराब असर पड़ता है।

—कोई खराब असर नहीं पड़ता, वह बहुत संयत स्वर में बोला—ये सब मिथ्स हैं जो हम लोगों ने बना रक्खे हैं। और इन्हीं चक्करों में पड़कर हम बच्चों का कबाड़ा कर देते हैं।

मैं चुप हो गया। मैं जानता था कि अब आगे बात करनी फ़िज़ूल थी। लेकिन फिर भी मेरे मुंह से निकल ही गया—कहीं तुम पैसे के ख्याल से तो नहीं सोच रहे ऐसा ?

—नहीं यार·· पैसे का इसमें क्या सवाल है···और पैसे की जो थोड़ी-बहुत तंगी है वह थोड़े दिनों की बात है। मुझे मालूम है कि मुझे कितना पैसा चाहिए और उसे किस तरह कमाना है। बात वह नहीं है। उसकी नज़रें सामने वाली दीवार पर टिक गईं।

—असली चक्कर कुछ और है···कुछ देर बाद वह बोला और फिर मेरी तरफ देखकर मुस्कराने लगा—गोश्त वही होता है केशव, जानवर भी वही···फ़र्क सिर्फ उसे काटने का होता है। और वह इतना बड़ा फर्क होता है कि पूरा ज़ायका बदल जाता है। और आदत ही कभी-कभी कमज़ोरी बन जाती है। ख़ासतौर से ऐसी

आदतें जिनकी जड़ों में आदमी का अपना अनुभव नहीं होता। मेरे साथ यही चक्कर है, और वह हंस पड़ा—खानदानी रईसों में यह बड़ी आम बीमारी होती है !

—तुम कहना क्या चाहते हो आख़िर ?

—सिर्फ यही कि मैं चाहता हूं कि अजीत मेरी तरह बड़ा न हो। आई वान्ट हिम टु यूज हिज़ ओन डिवेपमेन्ट। और फिर काफ़ी तेज लड़का है वह, जाहिर है कि अपने बाप की औलाद है, वह हंसते हुए बोला—कम-से-कम यार, उसे इतना तो मालूम होना ही चाहिए कि मां-बाप सिर्फ अच्छाइयों का गुलदस्ता ही नहीं होते, उनमें कुछ बुराइयां भी होती हैं।

—मसलन वो घर से भाग जाते हैं'''मैंने मुस्कराकर कहा और हम दोनों हंसने लगे।

इतवार को फिर वे लोग दो छोटे-छोटे कमरों के उस मकान में चले गए थे। अमित उस दिन भी सुबह ही अपने काम पर चला गया था लेकिन दोपहर बाद लौट आया था। शाम को खाने के लिए शान्ता ने उन लोगों को घर बुला लिया था।

अगले हफ्ते के दौरान ही अमित ने गृहस्थी चलाने की ज़रूरी चीज़ें ख़रीद ली थीं और अंजलि ने खाना भी घर पर बनाना शुरू कर दिया था। उसके बेटे अजीत का दाखिला भी शहर के एक सरकारी स्कूल में हो गया था। शाम को लगभग रोजाना ही मैं उसके यहां चला जाता था और वह दिन-भर की सारी ख़बरें बताता था। उसकी पत्नी अंजलि दिन में अजीत को स्कूल भेजने के बाद शांता के पास आ जाती थी। वे दोनों आपस में काफ़ी घुलमिल गईं थीं। और इसलिए शाता के ज़रिये मुझे उन सब बातों का भी पता चलता रहता था जो अमित नहीं बताता था। शाता के ज़रिये ही मुझे मालूम था कि दिल्ली से चलते वक़्त अंजलि ने अमित के घर से मिला सारा जेवर वहीं छोड़ दिया था, बस अपनी ही चीज़ें साथ लाई थी और पिछले दो हफ्तों में उसने लगभग पच्चीस-तीस हज़ार का जेवर बेच दिया था।

—लेकिन कमाल है भई ''बहुत जीवट है इस लड़की में। कह रही थी कि *जिस आदमी से मैंने अपना घर-बार और सब कुछ छोड़कर ब्याह किया था, उसके* साथ रहने का मौका तो अब मिल रहा है पहली बार ! अमित पर कमाल का भरोसा है अंजलि को'''शांता ने अघाते हुए कहा था और फिर हंसने लगी थी—लेकिन ये तुम्हारे दोस्त भी'''बहुत फुर्सत से गढ़ा है भगवान ने'''मुझे तो कभी-कभी हैरत होती है कि आप लोगों की दोस्ती अव्वल तो हो कैसे गई और फिर इतनी पुरानी'''

—''हां आआं'''साधू और शैतान वाला चक्कर है। मैंने धीरे से कहा और

अनायास ही मैं इसी बारे मे सोचने लगा। अमित और मैं···हम दोनों वास्तव में एक-दूसरे से बिल्कुल ही अलग थे···बादलों और हवा की तरह थे हम दोनों। मुझे अमित की मौजूदगी और उसकी गैरमौजूदगी दोनों ही स्थितियों में बचपन से लेकर आज तक कितनी ही बार कितने ही अवसरों पर महसूस होता था जैसे मैं अकारण हूं। या अकारण नहीं भी तो बस हूं। बहता रहता हूं। मेरे होने या न होने से न कुछ छिपता है, न उभरता। न कोई परछाईं उगती है मेरी, न ही कोई और खेल अंधेरा या रोशनी मेरे साथ खेलते हैं। एक बीमार, अनमने बच्चे की तरह मैं अपने कोने मे पड़ा रहता हूं। बस ज़िंदगी की ख़ातिर। और वह···? अमित···वह तो अपने निष्क्रिय से निष्क्रिय क्षणों में भी किसी दृश्य, किसी चमक, किसी रंग, किसी मौसम, उम्मीद या आशंका से जुड़ा रहता था। वह अकारण नही था। हो ही नही सकता था। और कोई भी कारण या बात उसे बरसा सकती थी। ज़िंदगी को वह बेचैन कर सकता था। लोग उससे मुहावरे बनाते थे। वह सूरज तक को ढक सकता था। किसी भी मौसम को वह बदल सकता था···सोचते-सोचते मैं अचानक रुक गया—मौसम? शायद वही वह सिरा था जिसे मैं सालों ढूंढता रहा हूं—हम दोनों की दोस्ती के संदर्भ में। बादलों की हवा से दोस्ती हो सकती है। बल्कि वह स्वाभाविक है···क्योंकि तभी तो मौसम बदलते हैं।

—क्या सोचने लगे? शांता मुझसे पूछ रही थी।

—ऐं अअअ···, मैंने उसकी तरफ देखकर कहा—कुछ नही। कुछ क्षणों बाद फिर मैंने कहा—लेकिन देखो, तुम ध्यान रखना ज़रा हर बात का। मुझे दरअसल बहुत-सी बातें पता ही नही चलती हैं।

—हां···वैसे अब सब ठीक-ठाक हो गया है।

सब ठीक-ठाक तो हो गया था, लेकिन इसका विश्वास और इसके सबब से जो तसल्ली मुझे होनी चाहिए थी वह नही हो रही थी। इसका वैसे कोई कारण था। सारी बात कुछ-कुछ वैसी थी जैसे कोई बेहद खूंखार और खूबसूरत जंगली जानवर नया-नया किसी अजायबघर के पिंजरे में आता है। जानवर के पहले आंखें पिंजरा देखती हैं लेकिन फिर भी उस जानवर मे उस वक्त कुछ ऐसा होता है कि डर ख़त्म नही होता।

कुछ रोज़ पहले जब शाम को मैं उसके यहां बैठा था तो बातचीत के दौरान उसने कुछ कागजात निकाले थे। अपने पिताजी के बिज़नेस मे पार्टनरशिप छोड़ने और बिज़नेस संबंधी सारे अधिकार बिना किसी मुआवज़े के उन्हें दे देने के संबंध मे—जिन पर वह बतौर गवाह मेरे दस्तख़त चाहता था।

—अमित, तुमने सोच लिया है अच्छी तरह? उसके हाथ से कागज़ात लेकर मैंने पूछा था।

—सोच लिया यार···उसकी आवाज़ में हल्की-सी झुंझलाहट थी जिसे फिर

उसने एक हुंगी के पीछे छिपा लिया—हर चीज साउथ इंडियन फ़िल्म नहीं होती कि गुर्गो और फलते-फूलते परिवार के शॉट के बिना कहानी खत्म नही होती।

मैंने दस्तखत कर दिये थे।

कागज रजिस्ट्री के लिफाफे में रखकर उन्हें सील करते हुए, वह मुस्कराते हुए बोला—भाई साहब'''हाथी को पानी पिलाना भी भारी पड़ रहा है आजकल, यू नो, दिस डैम मार्डर ऑव मारल इज कॉस्टिग मी अ हैल लॉट ऑव मनी। ये अफसाना पहुंच जाएगा तो कम-से-कम ये फालतू के चोंचले तो खत्म होंगे, अगले रोज उसने बताया था कि उसने वह रजिस्ट्री भेज दी है।

आज इतवार था। उसे इस शहर में आए आज एक महीना होने जा रहा था। मैंने दो-तीन दिन पहले ही शांता से बात करके आज शहर के एक अच्छे रेस्ट्रां मे उन लोगों को डिनर देने का प्रोग्राम बनाया था। यू मुझे अच्छी तरह मालूम था कि अमित जितने शौक से घर का खाना खाता था, उतना अच्छे-से-अच्छे रेस्ट्रां मे उसे पसंद नही आता था। वैसे भी खाने के मामले में शुरू से ही उसकी आदतें बहुत सादी थीं। लेकिन सब यार दोस्तों मे रेस्ट्रां, बार, क्लब या होटल मे कुछ खाने-पीने को लेकर जितना मजा अमित के साथ आता था, वह किसी के साथ नहीं। एक ख़ास सलीका, वह नफ़ासत और बिल्कुल स्वाभाविक ढंग से उस सारे माहौल की धड़कनों मे शामिल होना सिर्फ़ अमित के साथ ही संभव था। दिल्ली में चेम्सफोर्ड क्लब जहां कि अमूमन शहर के रईसो में हमेशा एक ख़ास ढंग की खींचातानी चलती रहती थी, अपनी रईसी या दबदबे की होड़ मे, अमित के बिना सूना और उजाड़ लगता था। दिल्ली में ऐसा शायद ही कोई बड़ा होटल या रेस्ट्रां था जहां का स्टाफ उसे जानता नही था। दरअसल अपने यार दोस्तो, आसपास के नजदीकी लोगों की हमारे भीतर, मन की दीवार पर एक तस्वीर टंगी रहती है। कोई एकांत मे कहीं अकेला टहल रहा है। कोई उसी तरह के एकांत मे बिल्कुल दुनियादारी से भरपूर किसी धंधे या खरीद-फरोख्त की बात कर रहा है। कोई अपनी दुकान में बैठा साहित्य या दर्शन की कोई किताब पढ रहा है। कोई एक छोटे-से कमरे मे रिकार्ड प्लेयर पर कोई रिकार्ड सुनते हुए चुपचाप शराब पी रहा है। कोई सब कुछ एक खास ढंग से साबित कर देने मे लगा हुआ है, कोई अपनी मजबूरियों के सीखचों के पीछे से बार-बार बाहर झांक रहा है'' कोई जिंदगी के जंगल के बाहर से ही किसी बाई पास की खोज मे है, मशहूर बन जाने की आस में'''अमित की तस्वीर धीमी रोशनी से भरे किसी रेस्ट्रां हॉल या किसी क्लब लॉन की थी जिसमे वह बेफिक्री के साथ सचमुच किसी के संग बैठा हुआ है। जिंदा, पूरा और सच्चा।

अनजाने ही मुझे शाम का इंतज़ार-सा था। चार बजने वाले थे। दोपहर के खाने के बाद मैं कुछ पढ़ते-पढ़ते सो गया था। मेरे बेटे ने मुझे आकर जगाया—

पापा, आपका तार आया है। मैंने उसके हाथ से कागज लेते हुए अपनी ऐनक उठाई। मुंशीजी का तार था—लाला एक्सपायर्ड, अमित अवेटिड फॉर क्रिमेशन। कांटों की तरह नुकीले शब्द मेरी आंखों में चीघे दे रहे थे।

शांता सब कुछ जानते हुए भी फिजूल की बातें किये जा रही थी। शायद बच्चों की खातिर। अमित खाने की मेज पर मेरे दाईं तरफ मेरे बेटे के साथ बैठा हुआ था। शांता और अंजलि उन लोगों के सामने थी।

रह-रहकर अमित का चेहरा मेरी आंखों के सामने घूम जाता था। जब मैं टेलीग्राम लेकर उसके घर पहुंचा था तो वह नंगे-बदन नेकर पहने अपने घर के सामने कोई पौधा लगा रहा था।

—श्रमदान करो, श्रमदान करो, मुझे देखते ही वह मुस्कराते हुए कुछ गाते हुए-सा बोला था।

जवाब मे, पास पहुचकर मैंने चुपचाप वह तार उसे दे दिया।

कागज पर लिखी इबारत पढ़ते ही उसके हाथ से खुरपी छूट गई थी और एक बेहद थकानभरी सांस उसके सीने से बाहर निकल पड़ी थी। कुछ क्षणों बाद वह अंदर कमरे की तरफ चलता हुआ मुझसे बोला था—आओ।

कमरे में जाकर वह कुछ देर तक चुपचाप बैठा रहा था। बीच-बीच मे वह उस तार को उलट-पुलटकर देखने लगता।

—जाना तो पड़ेगा···आखिरकार उसने कहा था—लेकिन···और वह चुप हो गया था।

साढे पांच पर ही गाड़ी थी। मैं उसे स्टेशन छोड़ आया था। चलते समय मेरे मुंह से बस इतना ही निकला था—टेक केयर अमित।

—आई नो, वह बुदबुदाया था।

मैंने सरसरी-सी नजर से एक बार आस-पास देखा। मेज पर एकाएक खामोशी-सी छा गई थी। शांता भी बात करते-करते चुप हो गई थी। अंजलि नज़रें झुकाये आहिस्ता-आहिस्ता खाना खा रही थी। मेरी नजरें अजीत के चेहरे पर टिक गईं। उसने अपने लिए पिट्जा मंगवाया था—उसकी पसंदीदा डिश। शुरू में ऑर्डर करते वक़्त ही उसने मुझसे कहा था—ताऊजी, मैं तो बस पिट्जा खाऊंगा··· वट टू ! और वह हसने लगा था। वह अपनी पहली प्लेट खत्म करने वाला था।

—अजीत, उससे कहें लाने को ? मैंने पूछा।

—यो यैस···अच्छा बनाते है ये लोग भी···उसने कहा और फिर नैपकिन उठाकर अपना मुह पोंछने लगा।

मैंने वेटर से उसके लिए दूसरी प्लेट लाने को कहा और बातचीत की खातिर उससे कुछ कहना ही चाहता था कि उसकी आवाज आई, लेकिन ताउजी···क्या

आपको भी लगता है कि दादाजी की डैथ के बाद, पापा अब भी हम लोगों को दिल्ली नही ले जाएंगे ?

मेरी नजरें जो उस तक उठ ही रही थी, सामने पड़े सिगरेट के पैकेट पर ही चिपक गईं।

मेज पर सन्नाटा छा गया था।

बच्चे कभी-कभी बहुत मुश्किल सवाल पूछ बैठते हैं।

नैनसी का धूड़ा

सूनी, काली, पानीदार, बड़ी-बड़ी आंखें टग-टग आसमान को ताक रही हैं। उनमें कोई ऊष्मा, कोई जीवन, कोई हरकत नही है। एक त्रासद याचना है सिर्फ़। 'मुगती दिराओ !' बस···बहुत हो चुका···अब मुक्ति दो।

मुक्ति कहां है ? मुक्ति का रंग शायद हरा है। डंडों की मार में···भूख में··· अपमान मे···उपेक्षा मे···हर अनसुनी फरियाद मे हरहमेस हरा रंग दिखाई दिया है। हरा कच्च ! सुग्गे की पांखडी जैसा।

उस हरियाली मे एक चितकबरा धब्बा है···अक्सर अचल···वह मां है। और एक झक्क सफेद बिन्दु है ··कूदता-फांदता···फिर-फिर पलटता···कुदकता··· वह उसका बचपन है। खुद का।

खेत के बीच मचान पर खडी 'बाई' की तरह···चारों तरफ़ नजरें दौडाती··· कान खड़े करती···सारे परिदृश्य पर नजर रखती···देर हो जाने पर बुलाती··· संकट देखकर दौड़ी आती···कानों की पुट्ठो को···बदन को प्यार से चाटती··· यह मां है।

मां के गुलाबी तने हुए थन हैं। दूध से लबालब भरे हुए ··वे दौड़ते हुए आते हैं और एक टहोके में अमृत की धार छोडने लगते है···एक नही, चार-चार। सबके सब भरे हुए। हरहमेस।···कभी एक से पीता है···फिर उसे छोड़ दूसरे पर लटकता है ··फिर तीसरे को जांचता है। सबमें। क्या-क्या पी ले ! जल्दी-जल्दी। और मां पुट्ठे चाटती रहती है···प्यार से···ममता से···तृप्ति से। लेकिन बहुत जल्दी उसे खींचकर परे कर दिया जाता है। विरोध में टांगें फटकारती मां के पैर बांध दिए जाते हैं। उसे थनो से फुटेक भर की दूरी पर रखा जाता है ··तरसता हुआ···और मां की आंखें अटूट कातरता में नम हो जाती हैं···और दोनो की आंखों के सामने उसके हिस्से का आहार दूसरे छीन ले जाते है।

यह अन्याय से उसका पहला परिचय था। और विवशता से भी।

लेकिन बचपन के दुखो की उम्र छोटी होती है। फिर कुदानें शुरू हो जाती हैं। नैनिया उसे चुहल मे लगा लेता है। कभी गरदन पर हाथ फेरता है, कभी

पीठ पर धप्प लगाता है···कभी सामने बैठकर मुंह में पत्तियां ठूंसता है, कभी अपनी भाषा में जाने क्या-क्या बातें करता है। उसके स्वर मे प्यार है। अत: वह दोस्त है। दोस्त उसे पीछे दौड़ाता है। चकमा देकर पीछे पलटता है।···वह दोस्त को देखते हुए खड़ा हो जाता है। मानो थक गया हो। और नैंनिया किलकारियां मारते हुए तालियां बजाता है। अचानक वह सिर आगे झुका तेजी से लपकता है···और सीधे नैंनिया के दृगों से टकराता है। धीरे से। नैंनिया खिलखिल हंस पड़ता है और उसकी गरदन से लिपट जाता है।

दोस्त और भी कई हैं। उनके नाम नहीं हैं। उन्हे 'केडा-केड़ा' के सामूहिक नाम से पुकारा जाता है। वे अभी छोटे हैं। उसके हमउम्र। जब वे कुछ बड़े हो जायेंगे तब उनके नाम रखे जायेंगे।

वे सब सुबह घूमने जाते हैं। खूब मारे। साथ-साथ। जुलूस की तरह। पीछे-पीछे छोटी-छोटी लकड़ियां लिये मुंह मे टर्टटिरिक आवाजें निकालते दो-तीन नन्हे रवाही होते हैं। बड़ों की तरह पगरखी पहने, पोतिये पहने (जबकि हो सकता है अंगरखी तो हो, नीचे धोती जैसी चीज सफा गायब हो!) पहले नैंनिया भी साथ आता था! उसकी आवाज़···उसकी हसी···उसकी किलकारियां दूर से पहचान मे आती थी। नैंनिया बुलाता तो वह कान खड़े कर, पूंछ उठा फौरन भागता। जरूर कोई मजेदार बात होगी। पर अब नैंनिया नही आता। स्कूल जाने लगा है।

रबारी लोग पेड़ों के नीचे पसर जाते, सोलासार खेलते, गप्पें ठोकते, मोरचंग बजाते, ऊलजलूल ताने भरते···सो जाते···इस बीच तुम मस्ती से टहलते रहो, कच्ची दूब टूंगते रहो, एक-दूसरे से माथे लड़ाते रहो···एक-दूसरे की पीठ पर चढ़ते रहो···थक जाओ तो बैठ जाओ और आंखें मीचकर जुगाली करते रहो। मस्ती से। सिंजारे वे टिरिक-टिरिक करते सबको समेटकर घर ले जायेंगे··· जहां···किसी दूसरी जगह से मा आएगी···अपने गुलाबी···तने हुए·· दूध भरे थनों के साथ···और नैंनिया···और अंधेरा···विभिन्न आवाजें···और एक खूंटे के पास की ठंडी जमीन।

घर बहुत बड़ा था। और उसमे बहुत सारे जने थे। कुछ नैंनिया जैसे, और कुछ बहुत बड़े-बडे। एक खूब बड़ी लुगाई थी जो खूब बड़ा काले रंग का घाघरा पहनती थी। और उसके हाथ भी खूब बडे-बडे थे। उसका खूब रौब था। पर वह भी दोस्त थी। वह बाजरी के सोगरे खिलाती थी, कभी राबड़ी, कभी लापसी, और कभी मौज मे आती तो गुड़। वह बहुत जोर से बोलती थी और सब लोगों पर रुआब छाटती थी। उसे सब 'बाई' कहते थे। एक खूब बड़ा आदमी था। पर वह सिर्फ सिंजा के बाद दिखाई देता था। कभी-कभी उसके मुंडे से खूब सारा धुआं निकलता था। और भी बहुत जने थे।

एक दिन घूमने जाते समय रास्ते में एक खेत में उसे खूब बड़ी-बड़ी घास दिखाई दी। लादन से लगी हुई। टांगों तक ऊंची। वह रुक गया। टोले से अलग हो गया और खाने लगा। यह मीठी घास थी। खूब रसदार। उसने सोचा वह रोज यहां रुककर यह घास खाया करेगा। लेकिन तभी एक रखारी दौड़ता हुआ आया और उसकी पीठ पर कसकर चार-छह लकड़ी जमा दी। वह हड़बड़ा गया और भाग छूटा। काफी आगे जाकर रुका और सोच में पड़ गया। क्यों? क्यों मारा उसने? तुम मुझे दूध भी नहीं पीने दोगे और घास भी नहीं खाने दोगे। क्यों? वह उस रखारी से नाराज़ हो गया। उसके जी में आया'''उसने सोचा जब वह बड़ा हो जाएगा, ज़रूर इस रखारी के ढूंगे मे सीगडे मारेगा।

समय आने पर सींग भी आये'''लेकिन वह अपना बचपन का निर्णय भूल गया। और भी बहुत सारी बातें थी'''एक से एक नयी और दिलचस्प, कि वह बात याद न रहना स्वाभाविक था। मां का दूध उससे एकदम छुड़ा दिया गया था। और कुछ दिन बाद मां ने दूध देना ही बंद कर दिया। अब उसकी नांद खाली पड़ी रहती थी और उसके बदन की चिकनाई खत्म हो चुकी थी—बल्कि हड्डियां निकलने लगी थीं। अब न मां उसे देखकर कोई प्यार जताती थी, न उसे मां के प्रति पहले जैसा लगाव महसूस होता था। न मां में पहले जैसी व्याकुलता थी''' न उसमे पहले जैसी ललक। नैनिया रोज सवेरे दफ्तर-पट्टी लेकर स्कूल चला जाता था और शाम को इस-उस काम में लगा दिया जाता था। उसके दोस्त भी दूसरे हो गये थे। और खोल भी दूसरे। वह कभी-कभी ही उसके पास आता''' आता भी तो पहले की तरह बातें या खिलवाड़ नही करता'''चुपचाप इधर-उधर से उसका बदन टटोलता-सहलाता, पुट्ठे ठपकारता, पूंछ मरोड़ता'''मुंह खोलकर दांत देखता'''और चला जाता। उसका नाम भी नैनिया से बदलकर नैनसी हो गया था।

नैनिया के व्यवहार मे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह भी था कि अब वह उसे 'धूड़ा' कहकर पुकारता था और यह बात वह सचमुच काफ़ी कोशिश और वक्त के बाद ही समझ सका कि धूडा कहकर उसे ही पुकारा जा रहा है, उसी का नाम धूड़ा है।

समय आने पर वह यह भी समझा कि उसके टोले के केड़े 'जिनावर' होते हैं। और सब केडे एक जैसे नही है। कुछ केड़े हैं कुछ केडी हैं। दोनों के शरीर के वैज्ञानिक अन्तर उसने लक्षित किया। अब तक उसके साथियो में से कइयो के दांत और सींग निकल आये थे और टोले मे कई नये केड़े आ मिले थे। छोटे-छोटे। जिनकी वह उपेक्षा करना ही ज्यादा पसन्द करता था। जिस अनुपात में उसकी भूख बढ़ती जा रही थी उसी अनुपात मे दूब-घास-हरियाली कम होती जा रही थी। हरियाली सिर्फ़ खेतों मे थी। और खेतो में मुंह मारने की मनाही थी। पानी

पीने वह वेरे पर जाते'''हरियाली के ऐन बीच'''पर कोई हरियाली में मुंह नहीं मारता। भूख की कसर घर पर मूंगे भूंगे-चारे से किसी हद तक पूरी होती पर उस मूंगे-पीले-निर्जीव पदार्थ को मुंह में भरना, लार से गीला करना, चबाकर नरम करना, और सटकना भी वह काफी मेहनत और कष्ट से सीख पाया। उसे मनपसन्द खुराक नहीं मिलती थी, लेकिन उसके रग-पुट्ठों में चढ़ती जवानी की ताकत थी और वह चलता तो दरबा की तरह गिर उठाये ''आंखों में विश्वास'' और चाल में मस्ती। नदी की उठती हुई लहरों की तरह मगरूर और मसरूर। वह यह भी समझता कि दुनिया का सबसे बलिष्ठ, सबसे स्वाभिमानी, सबसे प्रभावशाली और मस्त कोई प्राणी है तो वह सांड है'' जिसका डकराना एक विजय घोष है'''और जिसके लिए अच्छे-अच्छे रास्ता छोड़ देते हैं। उसने तय किया कि वह बड़ा होकर सांड ही बनेगा।

लेकिन समय ने उसे यह भी समझा दिया कि घर उतना बड़ा नहीं है जितना कि समझता था, न उतना सम्पन्न। और लोग तो कतई उतने बड़े नहीं हैं। कि मां सिर्फ ममतामयी, दूधदात्री नहीं है'''वह पुसकारती भी है, पूछ भी फटकारती है और पास जाओ तो सींग भी घुमाती है। एकदम जनावरों की तरह। कि नैनसी एक लम्बी-काली टांगों और सिकुड़े-मुहासेदार चेहरे तथा खड़े बालों, पीले दांतों वाला कमजोर-सा मिनख बनता जा रहा है जिसे आदमी हरदम गालियां बकता रहता है और बाई तो ठीक भी डालती है। कि हरियाली दिन व दिन सिकुड़ती जा रही है और भूसे का-सा पीला-उदास रंग धरती पर फैलता जा रहा है। कि भूख और भोजन जीवन का सबसे बड़ा सत्य है और खूंटा एक तकलीफदेह चीज का नाम है। उसे मिनखों की भाषा और उनके स्वर संघात थोड़े-थोड़े समझ में आने लगे थे—और उसे लगता था कि घर की आवाजों में से किलकारियां दिन व दिन घटती जा रही हैं और लाचारियां दिन व दिन बढ़ती जा रही हैं। बाहर प्रोल में लोग आते-जाते रहते हैं, झगड़े-झंझट होते रहते हैं, आदमी मुंडे से खूंटिया निकालता ही रहता है और भीतर घर में बाई दिन भर झींकती रहती है और इस-उस पर हाथ छोड़ती रहती है।

फिर भी मां मां थी, बाई बाई थी और घर घर था।

फिर ऐसा समय भी आया कि मां गुम हो गई, बाई 'डोकरी' बन गयी और घर'''घर भी छिन गया। लेकिन इस दुर्भाग्य का अध्याय शुरू होने में अभी कुछ देर थी।

जब वह पांच साल का हुआ, मान लिया गया कि वह जवान हो गया है। गबरू तो वह था ही। अपनी भूख और रहस्यमयी जिज्ञासाओं के बावजूद। हर आता-जाता यही कहता था कि धूड़ा अब जवान हो गया है। कुछ की आवाज में लालच होता, कुछ में ईर्ष्या और कुछ में चिढ़। कुछ मोलाने तक लगते। चार

हजार। तीन हजार। यह सही है कि उसने दो-चार बार उटपटांग हरकतें करने वाले, खामखा डंडा मारने वाले और चोटें के लिए पुट्ठों से चिपके रहने वाले, लोगों को सींग मारा था, दस-पांच बार (अपने हिसाब से मौका देखकर) खेतों में मुंह मारा था और कुछ डरपोक और बेवकूफ कलियों के पीछे भी पड़ा था। तो कहा यह जाता था कि अब वह जवान हो गया है। लाओ और जोतो।

एक दिन उसके दांत गिने गए, एक हाटिया को बुलाया गया, उसे टांगड़े बांधकर जमीन पर पटक दिया गया, नाक में रस्सी डाल दी गई" और खस्सी कर दी गई। वह छटपटा रहा था, मुंह से झाग फेंक रहा था लेकिन बेबस कर दिया गया था। हाटिया के हाथ में एक ब्लेड थी। सिर्फ़ ब्लेड। उसने उसके अंडकोषों में चीरा लगाया, अंडकोष निकालकर फेंक दिये और चमड़ी को अंगूठे-उंगली के बीच रखकर दबा दिया और बस। दो मिनिट में सारा काम हो गया। धूडा को बिल्कुल नहीं पता कि उसे किस प्रकृति-प्रदत्त अधिकार से, किस सुख से, किस संभावना से वंचित किया जा रहा है। किस आफत के तहत उससे सहज जीवन का उसका अधिकार छीना जा रहा है। मानो कहा जा रहा हो, न सोचो न सपना देखो। क्योंकि उन्हें हम कभी पूरा नहीं होने देंगे।

एक उत्सव की तरह उसे एक जोड़ीदार के साथ हल में जोत दिया गया। और पीठ पर चाबुक छिटकने लगे। उसने कभी अपनी पीठ पर मक्खी तक नहीं बैठने दी थी। वह दुम उठाकर भाग रहा था—यथाशक्ति—छूटने के लिए। और उसकी प्रशंसा की जा रही थी। जोड़ीदार उसकी इस हरकत से खुश नहीं था—लेकिन वह भी कर कुछ नहीं सकता था—भागना तो उसे भी था ही।

धीरे-धीरे वह इसका भी अभ्यस्त हो गया। और जोड़ीदार का भी। यहां तक कि उसे अपने गले में पड़ी घंटी और उसका टुनटुनाना अच्छा लगने लगा। पीठ की संवेदनशील थिरकन बुझ गई। पैर चलने और गरदन जुतने का अभ्यास हो गया। अब सामने जुता आता तो ज़रा-सी टिचकारी मिलते ही वह जुए के नीचे गर्दन घुसेड़ लेता।

एक दिन उसे नहलाया गया, उसकी पीठ पर रंगीन ठप्पे लगाए गये, बदन पर रंगीन झूल डाली गई, सींगों को रंगकर उन पर फुंदने लटकाये गए. पैरों में झालर बांधी गई, गले में कौड़ियों की माला पहनायी गई और गाड़ी में जोतकर कहीं ले जाया गया। वह एक नयी दुनिया थी, नया अनुभव था और नया मजा। गाड़े पर बना-ठना नैनसी बैठा था। जहां गए वहां खूब बढ़िया हरी घास खाने को मिली, खूब आराम करने को मिला। जोड़ीदार के पास दिन भर छाया में बैठे-बैठे जितना मन करे खाते रहो और जुगाली करते रहो और बस्स। और तीसरे दिन गोरी भवक ठेकेदार की लुगाई को नैनसी के साथ बैठाकर वे वापस आ गये।

कुछ दिनों जैसे रूठी हुई बहारें घर में लौट आईं। चाई बीमारी और बुढ़ापे

के बावजूद थिरकने और रुआव मारने लगी। नैनिया लाड़ करने लगा। उसकी लुगाई कुछ-न-कुछ खाने को देने लगी। आदमी के मुंडे से धुआं निकलना कम हो गया। पौ फटने से पहले उनका दिन शुरू हो जाता। बाई चूल्हा जलाकर रोटी पकाती, नैनिया की लुगाई जानवरो के आगे भूसा-पानी डालती, छाछ-बिलोना करती, झाड़ू-बुहारू करती, सुबह से पहले वे रवाना हो जाते, दिन भर खेत मे खटते, बीच दोफेरी के क्षणिक आराम के सिवा, और सिंजारे घर आते, खा-पीकर पड रहते। बेहद व्यस्त और थकाने वाले दिन। फिर भी कोई गा लेता था, कोई हंस लेता था। दुर्भाग्य से यह इस घर की आखरी हंसी थी। इसे फिर कभी नही हंसना था।

काल पड़ गया।

बुआई के बाद एक छीट पड़ी और बस। अंकुर फूटे और बस। थोडा चारा हुआ और बस। बेरों का पानी नीचे उतर गया। जहां बेरों पर मोटर लगी थी वहां हरियाली थी और बस!

भूसे की मात्रा कम होने लगी। मां डकराती रात मे। कोई नही सुनता। झगड़े-झंझट फिर चालू हो गए थे। अब उसका कही कोई काम नही था। उसे खिलाना घर वालों को भारी पड़ रहा था। नैनसी ने दूसरो के खेतों पर काम करना शुरू कर दिया। जहां बेरों पर मोटरें लगी थी, जहां हरियाली थी, वहां अकाल केन्द्र में नही, हाशिये पर था।

फसल पकने तक आदमी के मुह से निकलने वाला धुआं और गाढा हो गया। उसमे गालियां आ मिली। घर में खाने का टोटा पडा था। वे लोग कर्ज में डूबे हुए थे। जमीन टुकड़े हुई जा रही थी। टुकड़े बोहरा की बाद मे सरकने जा रहे थे।

एक दिन किसी बात पर आदमी ने नैनसी को ठोक डाला। बाई बीच-बचाव करने गई। उसे भी दो हाथ पड गए। नैनसी की लुगाई रोने लगी। बाई भी। वह बडी-बड़ी, आश्चर्य से फटी-फटी आंखों से सारा घटनाक्रम देख रहा था। चुपचाप। मां भी मानो झगड़े की जड़ मे यही हो। मानो अभी ये भी पिट सकते है। उस रात नैनसी ने उसे खूब लाड़ किया। गर्दन से लिपटा। पीठ पर हाथ फेरा। घूड़ा-घूडा करता रहा।

दूसरे दिन उसे किराये पर दे दिया गया। गाड़े मे जोतने के लिए।

सुबह-सुबह आदमी उसे अजनबी मकान मे छोड़ गया। जुतने मे उसे कोई परेशानी नही थी। खेत के भुरभुरे ढगलों मे या कच्ची नम ज़मीन में चलना उसे आता था। पर यहां दशा और थी। गाडे पर खूब सारा भार था। जोड़ीदार नया था। कालाकलूटा और ठिगना एकदम। सारा भार घूडा पर आ रहा था। और तिस पर हांकने वाला ऐसा उल्लू...जिसे चाबुक फटकारने रहने की बीमारी।

बार-बार लगाम खींचता। बार-बार चाबुक मारता। बिना वजह। घूड़ा जोर लगाकर बढ़ता, जोड़ीदार की नानी मरने लगती। जबकि उसे पूरे रास्ते एक भी चाबुक नहीं पड़ा। जमीन पत्थर की तरह सख्त और काली। बड़े-बड़े चढ़ाव-उतार और तीखे घुमाव। एक चढ़ान पर हांकने वाले ने चिल्लाते-गलियाते हुए उसकी पीठ में डंडा घोंप दिया। घूड़ा गुस्से से बिफर गया। वह जोर से फुमकारा। उसने जोड़ीदार को कनपटी में सींग मार दिया। गाड़ी हचक-मचक हो गई। इस उपलक्ष में और मार पड़ी।

रात ढले घर लौटे। लेकिन यह घर अपना घर नहीं था। यह खूंटा वह खूंटा नहीं था। न मां थी, न बाई, न नैनिया, न उसकी लुगाई। घूड़ा चुपचाप खड़ा हो गया। उसके आगे कोई भूसा डाल दिया गया। उसने सूंघकर छोड़ दिया। पानी दो-चार घूंट पी लिया और सिर ऊंचा किये खड़ा रहा। उसकी गर्दन पर गट्टा पड़ गया था। दुख रहा था। पर क्या किया जा सकता था? सहानुभूति के—प्यार के दो झूठे बोल बोलने वाला भी वहां कोई नहीं था। घूड़ा इनका कौन लगता है? घूड़ा मर भी जाए तो इनको क्या फ़र्क पड़ेगा? सब सो गए। वह खड़ा रहा। हर आहट पर उसके कान खड़े होते। आंखें चारों तरफ टग-टग देखतीं। अभी कोई आएगा और छुड़ाकर ले जाएगा।'''शायद नैनिया आ जाए'''शायद बाई'''लेकिन कोई नहीं आया। रात भर कोई नहीं आया। उसकी आंखों से आंसुओं की काली लकीरें निकलने लगीं। नथुने फुफकार छोड़ते रहे। मन में ढेरों गुस्सा इकट्ठा होता रहा। सुबह जो सामने आयेगा उसकी खैर नहीं।

वहां घूड़ा खटता रहा और पिटता रहा और घर के लिए तरसता रहा। और गुस्सैल हो गया। मौका मिलते ही लोगों के सींग मारता। जहां मर्जी आती अड़ जाता। एक बार एक छोरे को उसने सींग पर उठाकर पीछे फेंक दिया। तबसे उसके पास कोई नहीं आता। हांकने वाले के सिवा। जो दोस्त नहीं है। अब भी। घूड़ा को उसकी खुराक के हिसाब से खाने को नहीं दिया जाता। वह रास्ता चलते अंड-बंड चीजों में मुंह घुसेड़ता रहता है। उसके पुट्ठों का सारा मांस सूख गया है। चोट के निशान पक्के हो गए हैं। अब वह निसरडा और मार का अभ्यस्त हो गया है। एक बार उसे डाम भी चेंटाया जा चुका है। जिसको काम की कदर नहीं उसके लिए क्यों खटो? खामखा सताते रहने वाले के लिए कौन अपने हाड़ गलाएगा? इसका वास्ता या तो कभी अच्छे जिनावर से पड़ा ही नहीं होगा, या ये इस काबिल ही नहीं कि कोई अच्छी तरह इसके पास काम करे। प्यार के दो बोल नहीं। पेट भर खाना-खुराक नहीं। मार कभी रुकती नहीं। घूड़ा-गुस्सैल घूड़ा सिर्फ़ कभी-कभी सोचता पुराने घर की। अधिकतर तो यही सोचता कि खूंटा तुड़ाकर भाग जाए—एकदम आजाद और मस्त हो जाए—सांड की तरह। और एक दिन खूंटा तुड़ाकर भाग भी गया—रस्सी-खूंटे समेत—पर काफ़ी देर मस्ती

मारने के बाद उसे घर की याद आई और 'अपने' घर पहुंच गया। लेकिन वहां किसी की आंखों में उसके लिए पहले का-सा स्वागत भाव नही था और बावजूद उसके डकराते रहने के आदमी उसे फिर इसी राक्षस के यहां छोड़ गया।

दूसरे साल भी पानी नही बरसा। तीसरे साल भी नही। काल। गांव के आसमान पर चीलें चक्कर काटने लगी। मां ऽऽ य—मां ऽऽ य ! चौफेट सरणाट —सुनसान ! हरियाली का कही छिटका तक नही। आंखो मे धूल और धूप की करकती फुलझड़ियां और गले में खुभ प्यास के भरूट कांटे !!

जमीन गई। बाई गुज़र गई। नैनसी नौकरी करने रामनगर चला गया। उसकी लुगाई पीर चली गई। घर मे कौन ? धुआं छोड़ता आदमी। मा—एक कोने मे भूख से रम्भाती···घूडा, दूसरे कोने मे···खुरों से सूखी जमीन खूंदता···मिट्टी · चाटता।

कोई ले ले। कोई हमारे जिनावर ख़रीद ले। ऐसे ही ले ले। बेचारे मरेंगे तो नही। पर कौन लेगा ? मिनख भूखे-तिरसे फिर रहे हैं—जिनावर की हत्या कौन लेगा ?

सारा घर सारे दिन निचाट सूना पड़ा रहता। सुबह का गया आदमी सिंजारे घर लौटता और हांफता या धुआ छोड़ता या करवटें बदलता दाता···दाता···करता रहता। मां और घूडा उसे कातर देखते रहते। चुपचाप और अहिल। क्या बात है ? क्या तकलीफ है ? क्या हम तुम्हारे कोई काम नही आ सकते ?

चारूंमेर लोग बीमार पड़ रहे थे और मर रहे थे। जिनावर पड़ते···खून उगलते और खतम। लोग···बंजर और कडियल लोग ये···बरसात न होने के आदी थे···सूखे के अभ्यस्त थे। वर्षा के लिए याचना करने वाला कोई गीत उनकी भाषा मे नही था। वे पशुधन बल्कि पशुबल के बूते पर पीढ़ियों से प्रकृति के आगे छाती खोले खड़े थे। ज़मीन ऐसी थी कि दो बरसात ठीक टेम पर हो जाती तो खूब सारा नाज हो जाता था जिसे वे बरस-दो-बरस-तीन बरस तक भी कजूसी के साथ बरतते रह सकते थे। इसके अलावा ज्यादा चीज़ की उन्हे दरकार भी नही थी। उनकी रीढ का, उनकी हेकडी का राज़ था उनका पशुधन। बैल, गाय, ऊंट, बकरी, भेड़—। लेकिन अगर पशुओ को देने के ही लिए पानी न मिले ? ये तो सीधे पेट पर लात है बापजी ! पेट के निचले हिस्से पर। हुख। ईश्वर कितना क्रूर है।

लोग टोले बनाकर गांव छोड़ने लगे। जानवरों के साथ। अपनी छोटी-मोटी गिरस्तियो के साथ। इलाके मे कसाइयों ने फिरना शुरू कर दिया था। गाय की कीमत—बीस रुपये ! बैल की ! तीस !—मरे जल्लाद। कौन बेचेगा इनके हाथों अपना लाड़-कोड़ से पाला जानवर ! लेकिन कोई तो बेचता ही होगा। वरना ये आते ही क्यों ?

आदमी की हंफनी में, उसकी अंतहीन करवटों में, उसकी दाता-दाता की गुहार में—ऐसे ही न जाने कितने हाहाकार घकराती आंधी की तरह घुमेरे मार रहे थे।

एक दिन कहीं से आटा लाकर आदमी ने टिक्कड़ बनाये। अपने हाथों से मां को खिलाये। गुड़ खिलाया। सब करते हुए हांफता रहा। दरअसल वह रो रहा था। अंदर से रोली लाकर मां के माथे पर टीका किया—उसके हाथ जोड़े—और रस्सी खोलकर उसे बाहर हकाल दिया। प्रोल का दरवाजा खूंट दिया और *वहीं जमीन पर धप्प-से बैठकर विलाप करने लगा।*

मां जोर-जोर से रम्भा रही थी। अनिष्ट की आशंका से उठाकर उसे आतंक के भुतैले गह्वरों में धकेल दिया गया था। यकवयक। एक केड़ी के रूप में वह इस घर में आई थी। अपनी मां के साथ। चार बार वह ब्याई। वह इस परिवार की सदस्य थी। है। जिन्दा। नहीं है क्या? कोई कहे तो? और कैसी निर्ममता के साथ उसे हकाल दिया गया!! उसकी करुण और कातर बां ऽऽ बांऽऽन जाने कब तक बन्द दरवाजे पर बिलखती रही। कौन सुनता? आदमी—आदमी पत्थर की तरह। जड़ और निस्पंद।

और एक दिन एक तेली घूड़ा को खरीद ले गया। सिर्फ़ पचास रुपये में।

घूड़ा की आंखों पर पट्टी बांध दी गई और उसे कोल्हू में जोत दिया गया। और चल भई। ऐसी रात घूड़ा की जिन्दगी में कभी नहीं आई थी, जिसमें कहीं कुगंध भी न दिखाई दे। एक ही गंध। एक ही। मारग। एक ही जुवा। रात दिन। खाने को सूखा भूसा और थोड़ी-सी खली। पांवों के नीचे गीला पुआल। घानी के बाहर पानी की नांद। वहीं खाना। वहीं सोना। जो भी थोड़ा-बहुत तेली सोने दे। पर तेली क्यों सोने दे?

चला।चला। चक्कर आ गए। गिर पड़ा। मार पड़ी। उठा। फिर चला। फिर लड़खड़ाया। फिर मार पड़ी। नहीं चला। नहीं चलेगा। मार ले कितना मारना है।

लेकिन मार की भी हद होती है। भागा। पर कहां भागेगा? वही गोल-गोल-गोल। आने दो। किसी को नजदीक आने दो। वह ऐसा सींगड़ा मारेगा। और *सींग उसने मारा। लेकिन मार तो पड़ी जो पीड़ा, सितम ये कि उसके सींग ही* कटवा दिये गए।

पूरी जिन्दगी यन्त्रणा बनकर रह गई। नरक। और वह बुझता गया, बुझता गया। उसकी आंखों की रोशनी ही नहीं—आत्मा की रोशनी भी बुझने लगी। सारा उत्साह, सारा विद्रोह, सारा स्वाभिमान—बूंद-बूंद निचुड़ गया। कुछ भी खा लेना है ''कुछ भी सह लेना है ''कैसे भी मर लेना है। कोई अरमान नहीं, कोई सपना नहीं, कोई स्मृति नहीं। अत्याचार ही होता'''अगर अब कोई उसकी

आंख पर बंधी पट्टी खोल देता और उसे आज़ाद कर देता।

लेकिन उसके साथ यही किया गया।

चार साल अच्छी तरह रगेरने के बाद, हड्डियों का सारा सत निचोड़ लेने के बाद भी, न काम बन्द हुआ न मार। उसकी गरदन पर ज़ख्म हो गया। ज़ख्म पर दिन भर मक्खियां बैठती—जिन्हें वह खड़ा-खड़ा न पूंछ से उड़ा पाता न सींग से। सींग तो थे ही कहां ? ज़ख्म में पीप पड़ गई ''वह गधाने लगा'''और फैलने लगा'''और नासूर बन गया ' और उसकी दशा ऐसी हो गई कि वह सिर भी नही उठा पाता। रात-दिन मोटे-मोटे गाढ़े-गाढ़े आंसू रोता रहता और घटता रहता। बीमारी-कष्ट-मार-आतंक-मृत्यु सबके प्रति उसका बाहरी ही नहीं, भीतरी प्रतिरोध भी नष्ट होता चला गया और वह लाश बनता चला गया।

सारी घाणी ज़ख्म-मवाद की बदबू से भर गई। बदबू तेल में भी उतरने लगी। ग्राहक चिड़चिड़ाने, भड़कने और कतराने लगे। लेकिन तेली—जो दीवाली के दिन भी बैल को नही बख्शता, उसे रगेरता रहा। रगेरता ही रहा।

एक दिन घूड़ा ऐसा गिरा कि उठा ही नही। लाख कोशिशें की उठाने वालों ने। आखिर उसकी आंख की पट्टियां खोली गईं। पेट के नीचे डंडे फंसाकर, रस्सियों से बांधकर-खींचकर उसे खड़ा किया गया, खोला गया, बाहर लाया गया और छोड़ दिया गया। जा'''जहां तेरा भाग तुझे ले जाए।

एक बीमार, मरियल, बूढ़ा जानवर'''मक्खियों, कौवों और कीड़ों से घिरा '''रो रहा है और घिसट रहा है। वह भूखा है'''और किसी ने दयावश उसके सामने घास डाल दी है'''हरी घास'''और इसमें इतनी भी शक्ति नहीं है कि''' उसे जबड़ों में ठूस ले'''या चबा ले। प्यासा है ' और पानी है'''और पानी में मुंह डाल लिया है'''पर उसे नीचे नही उतार पा रहा है। ऐसे जीव को मौत आ जाए'''इससे अच्छा और क्या हो सकता है ?

लेकिन बदसूरत से बदसूरत जिन्दगी, खूबसूरत से खूबसूरत मौत से ज्यादा अच्छा होती है। धीरे-धीरे अपने मरियल बीमार शरीर और उसके उपजीवियों को ढोते हुए न जाने किस चेतना—किस अंत.प्रेरणा—किस आवेग के सहारे—उसने अपने गांव की डगर ढूंढ ली। जानवरों की जो बहुत-सी बातें मनुष्य कभी नही समझ पाएगा, उनमें से यह भी एक थी। चलता रहा। घिसटता रहा। निरुद्देश। रुकता। चलता। जाना ही है।

अब गांव सामने था—पहले की तरह लहलहाता हुआ—हरा कच्च—सुग्गे की पांखड़ी की तरह ! आह ! यह देखने के लिए उसकी आंखें कब से तरस रही थी। रुक गया। टग-टग देखता रहा। बस अब। ठीक है। फिर चल पड़ा। धीरे-धीरे। चाल में ज़रा भी उतावली नही थी। आंखों से आंसू बह रहे थे। काली लकीरें। गरदन नीचे झुकी हुई थी। भारी प्रयत्न धीरे-धीरे सरक रहे थे।

गांव पर सुबह की चंदेरी धूप फैली हुई थी। ठंडी हवा चल रही थी। फसलें लहलहा रही थी। केड़े-नेड़ियों का सफेद कूदता-फांदता झुंड चरने जा रहा था। पीछे-पीछे टर्र टिरिक करते रबारियों के दो-तीन बच्चे।—कोई मोरचंग भी बजा रहा था—पता नहीं—शायद नहीं बजा रहा होगा। सिर्फ भ्रम हुआ होगा।

एक सूने-हरे-ऊंचे टीले पर पहुंच गया। हरियाली अनन्त तक फैल गई। केड़े-केड़ी सफेद धुंधले फब्बे बन गए। वह अपने बचपन के चारागाह से काफ़ी दूर था। पर कितना पास था। गांव से बाहर—एक आज़ाद ज़मीन पर—जैसा कुदरत ने उसे बनाया होगा। पहुंचा और गिर पड़ा। गिरा और मर गया। आंखें खुली रह गईं। टग-टग आसमान को देखती।

अब कौए आएंगे और इन काली-पनीली-खाली आंखों में चोंचें घुसेड़कर मांस की नरम-नरम लीरियां खींचेंगे। फिर गिद्ध आएंगे। डरावने और मनहूस। और उनके लिए आंखों के नरम रेशे छोड़कर कौए खुरों के नीचे के नरम मांस को नोचना शुरू करेंगे। चारों तरफ दुर्गन्ध फैल जाएगी। जिससे आकर्षित होकर फिर कुत्ते आएंगे और अपने पैने दांतों से उसका पेट चीथकर उसकी आंतें चबायेंगे। फिर गिद्धों का एक पूरा झुण्ड होगा और वे इतना खा चुके होंगे कि उनसे उड़ा भी नहीं जाएगा और वे फिर-फिर खाएंगे। चमड़ी गिरती-चिरती-उतरती जाएगी—मांस बीतता जाएगा और पंजर झलकने लगेगा—हालांकि अब भी उस पर जगह-जगह गुलाबी सफेद मांस चिपका होगा। फिर धीरे-धीरे सिर्फ सफेद पंजर रह जाएगा... और इससे पहले कि वह भुरभुराकर मिट्टी में मिल जाए...कोई उसे किसी के हाथ बेच देगा।

रामनगर की कच्ची बस्ती के बाहर कूड़े के ढेर पर एक लाश मिली है। वह एक आदमी की लाश है। वह एक कारखाने में डेली वेज मजूर था। बड़ा होशियार कारीगर। एक दिन उसने अपने मालिक के मुंह जोर बेटे की ठुकाई कर डाली थी। जो सबको गंदी-गंदी गाली देता था। नया-नया गांव से आया था। ताव खा गया। पुलिस पकड़ ले गई। वहां उसने दो-चार सिपाहियों से भी मारा-कूटी की। लॉकअप में रखा गया। मार-मारकर घुटने तोड़ दिए गए। मुंह में पेशाब किया गया। उसके दाहिने हाथ की उंगलियां तोड़ दी गईं। उसे बताया गया कि उस पर चोरी का इल्ज़ाम है। मगर उसे कभी अदालत नहीं ले जाया गया।

फिर एक दिन उसे छोड़ दिया गया। सुनते हैं बड़ा मेहनती लड़का था, पर अब उसका दाहिना हाथ बेकार हो चुका था। कुछ दिन किसी और तरह के काम की तलाश में भटकते रहने के बाद आखिर तंग आकर सचमुच चोरियां करने लगा। कई बार पकड़ा गया, कई बार जेल गया। बार-बार की आवा-जाही से उसे एक विचित्र बीमारी लग गई। उसके सारे शरीर पर फोड़े-फुंसी हो गए और

राकेश वत्स

अकालग्रस्त

"अम्मा मुझे बहुत भूख लगी है !"

"हां मेरी बच्ची, मैं जानती हूं !"

"अम्मा मुझे भी बहुत ज्यादा भूख लगी है।"

"हां मेरे बेटे, मुझे मालूम है !"

"अम्मा, मुझे लग रहा है कि मेरी आंखों के सामने अंधेरा ही अंधेरा है !"

"हाय मेरी बच्ची, मैं क्या करूं ? मेरी छाती में दूध भी नही है कि जिसे पिलाकर इस जानलेवा अंधेरे से तुझे बचा लूं !"

"अम्मा, मेरी पीठ मे जोरों की खुजली हो रही है। मै हाथ उठाना चाहता हूं पर वह उठ ही नही रहा है।"

"हाय मेरे लाड़ले, ला मैं तेरी पीठ पर खुजली कर दूं। पर ऐसा करने से तेरे पेट की आग थोडे ही बुझेगी। लेकिन मै कर ही क्या सकती हूं ? तू कोई बाघ या चीता होता मेरे बच्चे, तो मैं अपनी देह का एक-एक अग खिलाकर तुझे बचा लेती।"

सहसा नदिनी को लगा कि बच्ची कुछ ज्यादा ही परेशानी महसूस कर रही है। अगर अब भी इसके पेट में कुछ न गया तो मौत बिना कोई आवाज दिए आएगी और चुपके से इसे उठाकर ले जाएगी।

आखिर वह उठी। उसने कापते हाथों से कूजे की बनी भगवान शकर की एक छोटी-सी प्रतिमा डिब्बे से बाहर निकाली और उसको तुलसी के सूखे पत्तों के साथ उबालकर दोनों बच्चो को गरम चरणामृत की तरह पिला दी।

बाहर दामोदर उकडू बैठा बूंदाबादी मे भीग रहा था। जैसे अन्दर घट रही अनहोनी के साथ उसका कोई वास्ता ही न हो। जबकि थोड़ी देर पहले वह शेर की तरह दहाड रहा था, " - मैं तो बस एक बात जानता हू, मेरे बच्चों को कुछ हो गया तो मैं तुम्हें जिंदा नही छोडूगा।"

नदिनी ने दरवाजे पर खडी होकर उसे पीठ पीछे से देखा। कानों की लाली से अनुमान लगाया कि चेहरे की अकडन अभी तक गयी नही होगी और आखों में भी गुस्से की लाली उसी तरह कायम होगी।

उसने महसूस किया कि दैवप्रकोप की छाया दामोदर के तन-बदन पर ही नहीं बल्कि मन और आत्मा के अन्दर तक पसर गयी है। बाहर की धरती की तरह अदर की धरती भी पपड़ाकर फट गयी है जिसमें तरलता नाम की कोई चीज भी नहीं बची है। हे भगवान, तो फिर अगला पड़ाव अब क्या होगा?

जवाब में लगा कि किसी गुमनाम आवाज के रुदन-स्वर उसके ठीक कानों के पास गूंज रहे हैं। उन स्वरों में एक थोड़ा जाना-पहचाना भी है—दामोदर की दहाड़ का स्वर। साथ ही किसी कुत्ते के रोने की धीमी-धीमी गुर्राहट भी है--शायद कलुआ की झुंझलाहट भरी गुर्राहट। हां रे, कल दोपहर से कलुआ कहां चला गया? ...कहीं कोई उसे मारके तो नहीं खा गया?

सहसा उसे बहुत साल पहले की किसी सती के चिता में जलने की घटना याद हो आयी। उस साल भी लोग अपने जानवरों को मारकर खा गए थे। एक बहुत ही सुन्दर जवान-सी लड़की को चिता पर बिठाकर आग लगा दी थी, और वह लड़की गीता की पोथी में अपना मुंह छिपाकर बिना चीखे-चिल्लाए जलकर राख हो गयी थी। लेकिन इस पर भी इन्द्र देवता प्रसन्न नहीं हुए थे। जब प्रसन्न हुए तो बाढ़ से सारे गांव बरबाद हो गए थे। कहीं इस साल भी फिर किसी सती को···

उसके माथे पर पसीने की बूंदें चुहचुहा आयी। लगा कि चिता का ताप अब भी उसकी चमड़ी को झुलसा रहा है। उसने आधा गिलास पानी पीकर पल्लू से माथे का पसीना पोंछा, गले को उंगलियो से सहलाया, और फिर लम्बी सांस खींचकर बाहर निकल आयी। कुछ पल वह ठिठकी, फिर मन पक्का करके दामोदर की तरफ बढ़ी, और धीरे से उसके कंधे पर हाथ रखकर बोली, "चलो उठो, मुझे ले चलो।"

दामोदर ने उसे जलती आंखों मे देखा, "लेकिन अभी-अभी तो दनदना रही थी कि धर्म और इज्जत को मैं किसी भी कीमत पर नहीं जाने दूंगी?"

"नहीं, मैं गलत दनदना रही थी। बच्चों की जान के सामने धर्म और इज्जत का कोई मतलब नहीं!"

दूसरी सांस में ही वे दोनों फटी-पपड़ाई जमीन के बीचोबीच बने पगडंडीनुमा सीले रास्ते पर चल रहे थे। आगे-आगे दामोदर और पीछे-पीछे रस्सी से बंधी गाय की तरह नंदिनी।

बढ़ते हुए पैरों के साथ नंदिनी के दिमाग में नौटंकी मे देखी नल-दयमंती की कहानी भी चल रही थी। साथ ही साथ वह सोच भी रही थी कि राजा ने अपनी रानी को जब भरे जगंल मे अकेली छोड़ा होगा, तब भी जरूर-बर-जरूर कोई न कोई ऐसी ही मजबूरी रही होगी, भूख जब राजा-महाराजाओं को गिरा सकती है तो हम जैसी की उसके सामने क्या बिसात है?

पर दामोदर के दिमाग में एक दूसरी ही फ़िल्म चल रही थी—पूर्वजों की जमीन और उसको छोड़कर जाने वालों की फ़िल्म।

वह एक-एक खेत के बीच बनी एक-एक झोंपड़ी को देखता चला जा रहा था। साथ ही हिसाब भी लगाता जा रहा था, कितने लोग इलाका छोड़कर चले गए हैं और कितने उसी की तरह पूरी जिद और हिम्मत के साथ टिके रहने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

चलते-चलते उसकी नजर खजूर के पेड़ के सहारे खड़ी फत्तू की झोंपड़ी पर ठहर गयी। कितना जीवट है उस बूढ़े आदमी में और कितना पक्का है उसका मन। उसके कानो में फत्तू के बोले शब्द वीराने के मन्दिर में बजने वाली घंटियों की तरह गूंजने लगे, "हमारे बाप-दादों और नकड़दादों ने इन झोंपड़ियों में महाकाल तक काट दिए। फिरंगियों का अत्याचारी राज तक झेल लिया। हमारे क्या ऐसे सुरखाब के पर लगे हैं कि हम ज़रा छोटे से सूखे को भी बर्दाश्त नही कर सकते। नही जी, हम तो यही रहेंगे। ठेकेदार की मदद बन्द हो गयी तब भी यही रहेंगे, पुरखों के हाथों जगल काटकर बनायी गयी इसी धरती पर, भले ही आज क़ानूनन यह धरती पुरखों की नही, जमीदार की कहलाती है, पर इसे तोड़ने मे तो पसीना पुरखों का ही बहा है!"

और दूसरी मुलाक़ात में फत्तू के मुख से ही रूह कंपा देने वाली एक ख़तरनाक सूचना—"इलाका छोड़कर जाना भी अब इतना आसान नही रह गया है मेरे भाई! जाने वालों की ज़मीन और झोंपड़ी जमीदार साहब दण्ड के रूप मे छीन-कर उन काश्तकारो को बाटने का निर्णय ले चुके हैं जो इन मुसीबत के दिनों में उनका साथ देंगे, यानी कि भूख और प्यास सहकर यहा बने रहेंगे!"

फत्तू और अपनी बेबसी के साथ-साथ उसे जमीदार साहब और उसके मुनीम की बेबसी का भी ध्यान हो आया—उसे लगा कि अपने हितों की रक्षा के लिए एक धनवान और चालाक आदमी ने, और उसके हाथो की कठपुतली मुनीम ने ठीक ही निर्णय लिया है। अगर बारिश होने के तुरन्त बाद काश्तकार अपने खेतों मे नही होंगे और जुताई-बुआई ठीक वक्त पर नही हो सकेगी तो समझो कि जमीदार साहब की तो जमीदारी ही चौपट! ना उसको अपनी जमीन में उगा आधा अनाज मिलेगा और ना डेरी फार्म के विलायती डंगरों के लिए हरा चारा, उस नामुराद का तो चौखटा ही ढीला पड़ जाएगा सारा!···

पर साथ ही साथ उसका दिमाग बिल्कुल सामने दिखाई देने वाली मुसीबत को लेकर भी कुलबुलाने लगा। जमीदार साहब को इस बार अपने काश्तकारो को बीज की उधारी के लिए ठेकेदारों जैसे कमीने लोगो के चगुल से ज़रूर बचाना चाहिए, सूखे का मारा काश्तकार इतने बड़े सूद का बोझ कैसे बर्दाश्त कर सकता है भला, जबकि पहले से ही वह उसकी बही का पुराना कर्जदार है?

न चाहते हुए भी उसकी आंखों के सामने ठेकेदार का गदराया चेहरा नाच उठा। उसे लगा कि जैसे सुअर की गर्दन पर किसी वन-बिलाव का चेहरा फिट कर दिया गया है। देखो, कैसी-कैसी मीठी बातों से भोले-भोले लोगों को अपने चंगुल में फंसाता है वह कंबख्त—"चिंता क्यों करते हो भाई, हम अगर आप लोगों के ही काम नहीं आयेंगे तो भला किसके काम आयेंगे ! बस, बैलगाड़ियां आने ही वाली हैं, जितना बीज चाहिए बिना किसी संकोच के उठा लेना, और देखो, दूसरों को भी यह खबर सुना देना, समझे !"

उसे लगा कि जैसे अब भी ठेकेदार उसके साथ-साथ चल रहा है और अपनी भवों में बल डालकर बोल रहा है, "बड़े भाग्यवान हो दामोदर ! जोरू तो ऐसी पायी है जैसे बिजली हो बिजली ! जरा इसके कपड़े-लत्ते का तो ख्याल रखा कर !" उसके पांव एक झटके के साथ रुक गये—अरे, नंदिनी कहां है ! पीछे मुड़कर देखा तो नंदिनी बहुत दूर चली आ रही थी। उसे नंदिनी पर गुस्सा आया—भगवान औरत को बनाता जरूर है पर ठीक से चलना भी नहीं सिखाता।

इस सबके बावजूद, जब नंदिनी पास पहुंची तो उसके मन में आया कि वह नंदिनी से कहे—अगर ठेकेदार बहुत ज्यादा बदतमीजी दिखाये तो तू बिना किसी बात की चिंता किए वापस चली आना ! देखो, रुकना नहीं ! पर वह यह सब केवल आंखों से ही कह सका। जुबान से एक भी शब्द नहीं निकला—इस ख्याल से कि कहीं वह भावुकता में आकर लौट न जाये।

बारिश थोड़ी तेज हुई तो वे दोनों ठेकेदार के दरबार में हाजिर थे। दामोदर हाथ बांधे अपनी मजबूरी खुले रूप में स्वीकार कर रहा था। "हां सरकार, मैं प्यार बेचने आया हूं ! इतनी कीमती चीज को कौड़ियों के भाव। बोलिए—क्या दाम लगाते हैं इसका ?"

ठेकेदार को दामोदर कुछ ज्यादा ही नशे में दिखाई दिया। उसने नंदिनी को सिर से लेकर पैरों तक गौर से देखा। वह बारिश में भीगी बकरी की तरह सिकुड़ी खड़ी थी और सिर झुकाए शीशों वाले मकान की पक्की जमीन को एकटक देख रही थी।

बाहर बिजली कड़क रही थी और दरवाजे से आने वाली हवा के झोंकों में नमीदार ठंडक थी। पिंजरे की मैना एक तरफ दुबककर बैठी थी। तोता भी गर्दन समेटे टुकुर-टुकुर झांक रहा था। सिर्फ विलायती चिड़िया थी जो फुर्र-फुर्र उड़कर चुर्र-चुर्र गा रही थी। ठेकेदार को परिंदे पालने का बहुत शौक था।

ठेकेदार ने पिंजरा घुमाकर तोते से पूछा, "क्यों गंगाराम, मिरची खाएगा ? बहुत तीखी मिरची आई है आज हमारे पास !" इसके साथ ही वह फिस्स करके हंस पड़ा और दांतों पर तर्जनी उंगली फिराकर फिर से जबड़ों को धीरे-धीरे चलाने लगा।

इसके बाद वह आस्तीनें चढ़ाकर गद्देदार आराम कुर्सी पर पसर गया। कुछ पल उसने अपने बाएं हाथ को पूरा खोलकर दामोदर की गुहार का जवाब दिया, "तन में प्रेम थोड़े ही होता है, प्रेम तो मन में होता है। मैं समझूं कि अपनी जोरू का मन भी तुम तन के साथ मुझे बेच रहे हो?"

दामोदर के माथे पर बल पड़ गए, यह तो उसने सोचा ही नहीं था। वह नंदिनी के शरीर पर मुग्ध था, गदराए-चिकने-सांवले बदन पर। खासतौर पर उसे नंदिनी की हिरनी जैसी बड़ी-बड़ी आंखों में प्यार दिखाई देता था। वह इन आंखों से उसे देखती थी तो उसका रोम-रोम पुलकित हो उठता था। दिल की धड़कन तेज हो जाती थी। उस वक्त उसे लगता था कि औरत भगवान की दी हुई सबसे बड़ी नियामत है। उसके बिना आदमी अधूरा है। इसी अधूरेपन को पूरा करने वाली किसी चीज को ही प्रेम समझता था। सो आज वह उसी प्रेम को बेचने आया था। उसने आगे बढ़कर नंदिनी के सिर पर हाथ रख दिया, "नहीं साहब, यह अपना मन भी तन के साथ आपको बेचेगी ''जरूर बेचेगी!"

ठेकेदार को याद हो आयी वे आंखें जिनसे प्रेम नहीं बल्कि घृणा बरस रही थी। एक दोपहर उसने अपना हाथ फैलाकर नंदिनी की खुली पीठ को छुआया भर था कि वह नागिन की तरह बिफरकर फुंकार उठी थी। लकड़ियों का बोझा सिर पर से जमीन पर पटक ऐसे घूरने लगी थी जैसे उसे कच्चा चबा जाएगी।

सब कुछ याद आते ही ठेकेदार की मुस्कराहट और भी अधिक गाढ़ी हो गयी और वह बिल्ली नस्ल के जानवरों के उस पैत्रिक स्वभाव में पहुंच गया जिसमें वे अपने शिकार को एकदम मारना पसंद नहीं करते, बल्कि मारने से पहले उसके साथ जी भरकर खेलना पसंद करते हैं। उसकी हाथ की उंगलियां फिर पीठ पर चलने लगीं, "लेकिन इसका सबूत क्या है कि वह अपना मन भी हमें बेच रही है?"

"सबूत यह खुद देगी साहब! नंदो दे दो सबूत! बोलो कि मैं तन के साथ अपना मन भी बेच रही हूं!"

नंदिनी दामोदर के बाजू के साथ झूलकर उसके पैरों में जा गिरी, "नहीं, मन नहीं, मन मेरा अपना नहीं है, बिल्कुल नहीं!" और साथ ही दहाड़ मारकर रो पड़ी।

ठेकेदार का चेहरा बुझ-सा गया। होंठों की मुस्कान सिकुड़न में बदल गयी। माथे पर गहरे बल डालकर वह गुर्राया, "यह सब क्या है? हटाओ, इसको हमारे सामने से हटाओ!"

"कैसे हटाएं साहब!" दामोदर को लगा कि भेड़िया जान लेने के बाद लहास को खाने में इनकार कर रहा है, "फत्तू के हाथ आपने कहलवाया नहीं था कि अगर मैं अपनी जोरू को फकत एक रात के लिए आपके हवाले कर दूं तो आप मेरे सारे गुनाह मुआफ कर देंगे! और इतना ही नहीं बल्कि ईनाम के तौर पर

इतना अनाज देंगे कि इन मुसीबत के दिनों में हमारे बच्चों को पेट पर हाथ रखकर चीखना-चिल्लाना नहीं पड़ेगा !"

बहुत अर्से के बाद ठेकेदार नंदिनी की पराजय को भोगने की सहूलियत में आया था। उस दुश्मन औरत से बदला लेने की सहूलियत में, जिसने अपनी *औकात भूलकर उसको अपमानित करने का साहस किया था।*

उस दिन शाम तक जंगल काटने वाले मजदूरों में यह खबर आग की तरह फैल गयी थी कि दामोदर की जोरू ने ठेकेदार के गाल पर तमाचा जड़ दिया है। इस वार से उसे अपने दोस्तों तक में मजाक का भागी बनना पड़ा था।

उसने दामोदर की छटपटाहट से भरी बात का जवाब बड़े ही ठण्डे मन से दिया, "लेकिन यह सब तो तभी हो सकता है अगर औरत अपने मन से आये, जबरदस्ती का खेल खेलना तो हमने बहुत देर पहले से बन्द कर दिया है !"

नंदिनी भी ठेकेदार के मन की टीस को पहचानती थी। उसे इतनी समझ तो जरूर ही थी कि अब ठेकेदार से उस व्यवहार की आशा करना मूर्खता होगी, जिसकी एक औरत किसी मुग्ध आदमी से किया करती है। फिर भी वह दामोदर के साथ चली आयी थी। आती नहीं तो और क्या करती, उधार भी अगर कहीं से मिलना था सो वह भी तो ठेकेदार से ही मिलना था।

बाहर जोर की बिजली कड़की, और साथ ही बादल भी दनदना उठे। नंदिनी ने एक बार शीशे के बाहर के बादली अंधेरे का जायजा लिया। लगा कि बिजली की कौंध में उसकी झोंपड़ी उसके सामने चमक रही है। फिर उसने बच्चों की तरह हथेलियों से आँखों का पानी पोंछा और धीरे-धीरे चलकर ठेकेदार की बगल में जा खड़ी हुई। पति द्वारा मन बेचने के सौदे में सहमत होने का सबूत बस वह इसी तरह पेश कर सकती थी।

अब दामोदर की आवाज भी भर्रा उठी, "लीजिए साहब, आपको सबूत मिल गया। अब आप जल्दी से मुझे पैसे और अनाज दें, ताकि मैं घर पहुंचकर अपने बच्चों और गिरने वाली झोंपड़ी की खबर-सार लू !"

नंदिनी ने गर्दन घुमाकर दामोदर के जुड़े हुए हाथों की तरफ देखा। उसे लगा जैसे वह पांचों पांडवों की प्रेतात्मा है, और वह खुद दुर्योधन की आत्मा के सामने खड़ी पांचाली।

ठेकेदार की मूँछों में हल्की मुस्कान की छाया फिर कौंधी। पर उसके माथे पर गहरे बल ज्यों के त्यों बने रहे। वह कुछ पल दामोदर के नंगे सुडौल बदन की तरफ गौर से देखता रहा। मन में आया कि इस भालू जैसी पुष्ट देह का क्या मतलब, जो अपनी ब्याहता पत्नी की भी इज्जत की रक्षा नहीं कर सकती।

वह घुटनों पर हाथ रखकर खड़ा हो गया, "हे प्रभु !" इसके बाद खीसे में से नोटों का एक बड़ा-सा बंडल निकालकर उसने कुछ पुराने नोट छांट-छांटकर

अलग किए और कुत्ते के सामने फेंके जाने वाले टुकड़ों की तरह दामोदर के सामने उछाल दिए।

दामोदर ने हवा में छितरे नोटों को बड़ी ही मुस्तैदी के साथ बीन लिया और फिर बड़े ही अधिकार के भाव से बोला, "और अनाज सरकार?"

ठेकेदार उसे पीछे आने का इशारा करके बाहर निकल गया।

दामोदर चलने को हुआ तो नंदिनी ने आगे बढ़कर उसका हाथ थाम लिया, "देखो, सिलबट्टे के नीचे बीड़ियों के साथ माचिस की डिबिया संभालकर धर रक्खी है, जाते ही उठा लेना, कहीं सील ना जाए!···और देखो, दोनों बच्चों को बार-बार गाल चूमकर मेरा प्यार देना!" इसके साथ ही वह पल्लू में मुंह छुपाकर रोने लगी।

दामोदर ने धीरे से उसका कंधा थपथपाया। जैसे वह कह रहा हो, अब तुम घर की चिंता छोड़ो। फिर वह तुरन्त ही नोटों को लुंगी के लड़ के बीच लपेटता हुआ भागकर चला गया और ठेकेदार के पीछे-पीछे चलने लगा।

ठेकेदार ने चाभी लगाकर गोदाम का ताला खोला, और फिर झीने अंधेरे की तरफ उंगली उठाकर बोला, "वो सामने गंदम और चावल की बोरियां लगी हैं, जो जी में आए एक बोरी उठा लो!"

दामोदर ने जिन बोरियों के पास चावल बिखरे देखे उनमें से एक को झटके के साथ दूसरी बोरी पर खड़ा किया और फिर बड़ी ही सहजता के साथ पीठ पर लादकर गोदाम से बाहर हो गया।

ठेकेदार बुत बनकर उसे नंगे पैर जाते देखता रहा। ख्याल आया कि विदा होते वक्त वह एक भी शब्द नहीं बोला, यहां तक कि एक बार मुड़कर भी नहीं देखा, जबकि आते और जाते वक्त झुककर सलाम करना इसका जन्मजात स्वभाव है।

उसे जाता हुआ दामोदर एक बदला हुआ आदमी लगा। सवाल उठा कि वह कौन-सी चीज है जो आदमी को एकदम अपने स्वभाव और संस्कार से काट देती है?

जवाब मिला—"भूख!"

उसने अपने आपको टटोला। वह हैरान हुआ कि उसके खून में भूख का नामोनिशान भी नहीं था। भूख की जगह उसे अपने मन पर विनाशलीला की एक झीनी-सी छाया जरूर मंडराती हुई दिखाई दी। उसने अपने आपको थोड़ा डरा हुआ भी महसूस किया। इस ख्याल के साथ कि अब गरीब आदमी इतना भोला और सादा नहीं रहा कि उसको जिस बर्तन में चाहो तेल की तरह ढाल लिया जाए। इसके अलावा आजकल उसे इस दूरदराज इलाके में सूखे के प्रभाव का जायजा लेने के लिए हेलिकाप्टर पर बैठकर किसी मन्त्री के आने का भी पूरा अंदेशा था।

उसने ताले को बन्द करके चाभी को बंडी की जेब मे रखा और फिर उसके पैर नंदिनी के पास जाने से पहले दामोदर के हिसाब का कागज फाड़ने के लिए तहखाने की अलमारी की तरफ चल दिए।

चलते-चलते दामोदर की नजर अचानक पोखर के कीचड़ मे उभरे काले सीग पर जा पड़ी। वह ठिठक गया—जरूर इसके साथ पशु का पंजर भी होगा।

लेकिन हड्डियां उठाकर ले जाने वाले जमीदार के आदमी इस पंजर को अनदेखा कैसे कर गए ? जरूर उनमे से किसी बेईमान ने खेत मे से पंजर उठाकर इस कीचड़ मे दबा दिया होगा, ताकि अंधेरे-सवेरे निकालकर व्यापारी के हाथ बेच सके। पर इस अनुमान की सचाई पर उसे थोडी शंका भी हुई। उसका मन हुआ कि वह इस तर्क पर दृढता से जमे कि पंजर चाहे इस कीचड मे किसी भी तरह आया हो, उसका अधिकार है कि वह उसे अपने हित मे इस्तेमाल कर ले।

फिर उसका विचार बना कि नही-नही, पंजर निकालकर वह जमीदार साहब को सौप देगा। कितने खुश होंगे वे और उसके मुनीम उसकी इस तरह की ईमानदारी को देखकर। आजकल के जमाने मे ईमानदारी कहां मिलती है ? पैसे तो उसके पास हैं ही, इस वक्त भी ईमानदारी नही दिखाएगा तो कब दिखाएगा !

साथ ही उसे इस ख़याल ने तकलीफ पहुचाई कि यह पंजर उसे ठेकेदार के पास जाते वक्त ही क्यों नही दिखाई दे गया। ऐसा हो जाता तो वह यही से लौट जाता। आगे बढ़ता ही क्यो !

पंजर के बारे में इसी तरह सोचता-विचारता अभी वह खजूर के कुंज के पास ही पहुंचा था कि उसे लगा कि दोनों बच्चे कीचड वाली बावडी के बीच घुसे पेंदे रहित टोकरी को कीच पर रखकर मछलियां पकड़ने की कोशिश कर रहे हैं। बिल्कुल वैसे ही जैसे कई दिनों से नदिनी जगह-जगह की बावड़ियों मे अपनी मेहनत बेकार करती रही थी।

उसने पूरी ताकत के साथ हांक लगाया, "देखा, बरफी, देखो मैं क्या लेकर आया हूं ! छोड़ो यह बेकार का धंधा और आकर भात आओ !"

लेकिन बच्चे कहां थे ? यह तो मात्र उसका वहम था। थकी पुतलियों की मृगतृष्णा थी। मन के अन्दर की एषणा थी जो दिवा-स्वप्न की तरह साकार हो उठी थी।

अब उसको याद आया कि बच्चे तो भूखे-प्यासे झोंपडी में पडे हैं। उनके शरीर मे इतनी ताकत ही कहां रह गई है कि वे इस तरह उछल-उछलकर मछलियों का शिकार कर सकें। नंदिनी ने उन्हें सिर्फ गर्म पानी ही तो पिलाया था। उसे भी वह गर्म पानी का हिस्सा जरूर देती, अगर उसने उसके साथ झगड़ा न किया होता तो···

लेकिन झगड़ा न करता तो और क्या करता ?···बर्दाश्त की भी तो एक

सीमा होती है । यह टके का हाड़-मांस का शरीर ज्यादा कीमती चीज है या बच्चों की जिन्दगी ? औरतें तो अपने बच्चे के लिए जान तक कुर्बान कर देती हैं। वह बक रही थी कि···

लेकिन तू क्या कुर्बान कर रहा है दामोदर ?—अचानक उसके अन्दर से एक जलता हुआ सवाल फूट पड़ा । जवाब के रूप में उसकी छाती में अजीब-सा दर्द उठा और उसे जोर के खांसी के तूफान ने घेर लिया । कुछ देर तक तो वह उस तूफान के साथ लड़ता रहा, वश से बाहर हो गया तो बोरी को एक तरफ पटक, दोहरा होकर जमीन पर बैठ गया ।

झोंपड़ी अब बिल्कुल सामने दिखाई पड़ रही थी । सवाल उठा कि चूल्हे में गीली लकड़ियां जलाकर भात बनाएगा कौन ?···लगा कि नंदिनी चूल्हे के पास बैठी रोटियां बना रही है । वह उसके सामने पालथी मारकर बैठा फूली रोटियां खा रहा है । उसके ना-ना करने पर भी गर्म-गर्म रोटी उसकी थाली में डाल देती है, " बस सिर्फ यही एक रोटी, तुम्हें मेरी कसम !" इसमें कसम दिलाने की क्या जरूरत होती थी भला ?···उसके मुंह से फिसल गया, "औरत जात बड़ी भावुक चीज होती है !"

लेकिन ना-ना करते हुए भी उसका अपना भावुक मन ठेकेदार के मकान की तरह लौट चला—घर की निकाली हुई दारू पीकर वह सूअर का बच्चा, पता नहीं नंदो के कोमल शरीर के साथ कैसा व्यवहार कर रहा होगा ?···

सहसा उसकी आंखों के सामने एक काल्पनिक दृश्य कौंध गया । बरसात में भीगी एक हिरनी और एक कद्दावर भूखा खूंखार बाघ । छलांग भरकर बाघ ने हिरनी की गरदन दबोच ली और हिरनी बिना चीखे-चिल्लाए बाघ के जबड़ों में फंसकर छटपटाने लगी ।

उसे लगा कि इतनी ठंडक में भी उसकी छाती पर पसीना सरसरा रहा है और पांव हैं कि जैसे उनके साथ किसी ने पत्थर बांध दिए हैं । उसके सामने सवाल आया कि यह मात्र एक टके के शरीर का सवाल है? जवाब मिला नहीं, यह शरीर नहीं बल्कि शरीर से बिल्कुल बाहर की किसी दूसरी चीज का सवाल है । सवाल फिर जागा कि वह कौन सी चीज है ? उसने महसूस किया कि इस सवाल का जवाब उसके पास नहीं है···

चिंतन किसी दूसरी दिशा में मुड़ गया—आदमी के अन्दर केवल राक्षस ही तो नहीं होता, उसकी आत्मा के कोने में कहीं देवता भी तो बैठा होता है, नंदिनी को देखते ही आदमी के अन्दर का देवता जाग उठता है—उसने अपने आपको तसल्ली देनी चाही, और इस तसल्ली ने उसके सामने एक दूसरा ही दृश्य पेश कर दिया—

ठेकेदार ने आगे बढ़कर नंदिनी के सिर पर हाथ रख दिया, "डरो नहीं

देवी ! जाओ, अपने घर जाओ। तुम मेरी तरफ से आजाद हो !"

"लेकिन आपने तो···"

"पैसे देकर तुम्हें एक रात के लिए ख़रीदा है, यही न !"

"जी !"

"मैंने एक घमंडी औरत का घमंड तोड़ना चाहा था, सो तोड़ दिया। अब तुम घर जाओ, तुम्हारे बीमार बच्चे तुम्हारा इंतजार कर रहे होंगे !"

"मैं और मेरा पति आपका यह अहसान जिन्दगी भर नहीं भूलेंगे !"

"अहसान की कोई बात नहीं है। आज के बाद तुम्हारा पति भी मेरे कर्ज से पूरी तरह आजाद रहेगा। कुछ दिन बाद बुआई के लिए बीज की ज़रूरत पड़ेगी। दामोदर से कह देना कि वह मेरे पास आए और बिना किसी हिचक के बीज ले जाए !"

दामोदर के पैर फिर ठिठक गए। उसे लगा कि उसकी झोंपडी के सामने के पीपल के पेड़ पर कही से आम का फल निकल आए हैं और पीपल की टहनियों पर रंग-बिरंगे पक्षी अपने स्वभाव के मुताबिक रहने के लिए घोसले बना रहे हैं। नंदिनी मुट्ठियां भर-भरकर उन पक्षियों के सामने चावल के दाने बिखेर रही है और पक्षी बिना डरे-सहमे उन दानों को चुग रहे हैं।

पर झोंपड़ी में पहुंचने के बाद उसने जो कुछ देखा वह इससे बिल्कुल विपरीत था। दोनों बच्चे अपनी-अपनी जगह पर लेटे छत से टपकते पानी मे भीग रहे थे। जमीन पर दो-तीन जगह धार गिरने की वजह से गड्ढे से बन गए थे और बोरी रखने के लिए भी कहीं पूरी तरह से सूखी जगह दिखाई नहीं दे रही थी।

उसने बोरी को थम्मी के साथ सटाकर बरफी के ऊपर से गीला कपड़ा हटाया। उसे एक सूखे कपड़े में लपेटकर उस जगह लिटाया जहां की छत पर खजूर की सफ डाली होने के कारण पानी कम टपक रहा था। लड़के को भी उसने उसी जगह पहुंचाया। उसके बाद बोरी खोलकर चावल निकाले और उन्हें आलमोनियम के बर्तन मे डालकर चूल्हे पर पकने के लिए चढ़ा दिया।

अब वह बच्ची के पास बैठ गया। प्यार से उसका बदन सहलाया। सिर के बाल ठीक किए। फिर उसका गाल चूमकर गाल के पास धीरे से फुसफुसाया, "मेरी प्यारी बिटिया, बड़ी बहादुर है। अभी भात तैयार होता है, बस जी भर कर खाना !"

बच्ची ने भात का नाम सुनते ही थोड़ी आंखें खोली और धीरे-धीरे होठ हिलाकर कुछ कहना चाहा। वह तुरन्त समझ गया कि पानी मांग रही है।

उसने बच्ची को पानी पिलाया। देवा को भी पानी दिया। फिर वह सिलबट्ट के नीचे से बीड़ी निकालकर बड़े ही इत्मीनान से धुआं उड़ाता हुआ भात पकने का इंतजार करने लगा।

सुबह से पहली बार तंबाखू का धुआं हलक के नीचे उतरा था। उसने काफी अच्छा अनुभव किया। बच्चे भी लगभग ठीक ही हैं, घर में चावल की बोरी धरी रखी है, जमींदार को पंजर का पता बतायेंगे तो इज्जत भी काफी बन ही जाएगी, और झोंपड़ी की मरम्मत करवाने के लिए पैसे उसके पास हैं ही, और क्या चाहिए इस जीवन में उसे? पर नंदो? उसे नंदो चाहिए! उसका ध्यान फिर ठेकेदार की घर की निकाली दारू की तरफ चला गया, और इस बार उसके सामने एक और ही दृश्य आ धमका…

नंदिनी ठेकेदार के सामने टूटी हुई बोतल का अगला हिस्सा त्रिशूल की तरह दोनों हाथों में थामे महाकाली बनी खड़ी है। वह बार-बार ठेकेदार को अपने पास न आने की चुनौती दे रही है। पर नशे में धुत्त ठेकेदार निडर भालू की तरह आगे बढ़कर उसको आलिंगन मे दबोच लेता है। पल भर में ही बोतल का तीखा कांच गचर की आवाज के साथ ठेकेदार की बगल मे उतर जाता है। खून का एक फव्वारा फूटता है और ठेकेदार वहीं फर्श पर गिरकर दम तोड़ देता है और फिर इसके बाद…

दामोदर ने घबराकर अपनी आंखों पर हथेलियां गड़ा लीं। पर सिनेमा के अंधेरे मे किन्ही दूसरे पात्रों के साथ देखा यह दृश्य और भी अधिक चमकता हुआ दिखाई देने लगा। वह हड़बड़ाकर खड़ा हो गया और दरवाजे पर पहुंचकर घुमड़ते हुए बादलों का नजारा लेने लगा।

इसी समय बिजली जोर की चमकी और बादलों की भरपूर गर्जना के साथ बारिश मूसलाधार बन गई।

दो पल में ही झोंपड़ी की टपकन भी बदल गई। उसने भीगती चीजों को उठाकर बच्चों के आसपास सजा दिया। क्योंकि अब वही एक सुरक्षित जगह थी जहां कुछ बचाया जा सकता था। खुद थम्मी के साथ पीठ लगाकर बैठ गया और भात पकने का इंतजार करने लगा।

अचानक उसे लगा जैसे कहीं तोता बोल रहा है। तोता और इस वक्त बारिश में इस झोपड़ी के पास? वह हड़बड़ाकर बाहर निकल आया और आवाज के सहारे तोते तक अपनी नजरें पहुंचाने की कोशिश करने लगा।

नजरें पहुंचीं तो उसे तोता पीपल के पत्तों मे छिपा बैठा दिखाई दिया। गले मे दो कण्ठे, पैरों में झांझर और भीगे पंखों में से वही पहचाने रंग झांकते हुए।

"अरे यह ठेकेदार का तोता यहां तक कैसे चला आया!" दामोदर ऐसे चीखा जैसे वहीं से अपनी आवाज ठेकेदार तक पहुंचा देना चाहता हो। पर एक नया विचार आते ही वह गुमसुम भी हो गया— पर इस तोते को पिंजरे से निकाला किसने? किसने आजाद कर दिया तोते को? तो क्या सचमुच मे नंदिनी ने ठेकेदार को…

दिल में आया कि आगे बढ़कर नंदिनी के पास पहुंच जाए। हो सकता है वह सचमुच मुसीबत मे हो और उसे उसकी मदद की जरूरत हो। वह भागता हुआ बहुत आगे तक बढ़ा भी, पर एक अनजाने भय ने उसके पैरों को जकड़ लिया। उस मूरख ने अगर सचमुच में ही ऐसा कर दिया हुआ तो?···अगर ठेकेदार के आदमियो ने उसे पकड़कर कस्बे के पुलिस थाने पहुचा दिया तो···वह धीरे-धीरे चलकर झोपड़ी मे लौट आया और थम्मी के साथ माथा लगाकर खड़ा हो गया।

देवा की चौकसी कर देने वाली आवाज़ उसके कानों के साथ टकराई, "बापू, भात ?"

उसने मुड़कर देखा—पतीले का ढक्कन छद-छद करके उछल रहा था और उसके नीचे से निकल-निकलकर दूधिया पानी बाहर गिर रहा था। उसने उसे संभाला और फिर ध्यान दिया कि एक जानी-पहचानी खुशबू है जिससे एक मुद्दत बाद उसकी झोंपड़ी का खालीपन महका है।

उसने ढूढ़कर मिट्टी के तीन कटोरे बाहर निकाले। उनको साफ पानी से साफ़ किया। फिर बच्चों के कटोरों मे पतला-सा भात निकालकर वह बारी-बारी से उनको पिलाने मे व्यस्त हो गया।

अब हवा तेज़ होकर पानी की बौछार को चूल्हे तक भी पहुंचाने लगी थी। लेकिन उसे कोई चिन्ता नही थी। भात पककर तैयार था और वह बच्चों को पहले माड और उसके कुछ देर बाद भात के दाने देने की सहूलियत में था।

बरफी को मांड़ पिलाते-पिलाते अब उसका ध्यान चूल्हे की आग की तरफ गया। वह उसे पहले छन्न-छन्न की आवाज़ के साथ धीमी पडते और फिर धुआं छोडकर बुझते साफ़ देखता रहा। इस वक्त उसे इस अहसास ने जरूर कचोटा कि नंदिनी होती तो इस आग को वह कभी न बुझने देती। अपने तन-बदन को छतरी की तरह तानकर केवल मुझे और बच्चो को ही नही बल्कि घर की हर चीज़ को भीगने से बचा लेती। इस मुसीबत के मौके पर भी हंस-हसकर सबको प्रसन्न रखती। तुलसी के सूखे पत्तों की बिना दूध और मीठे की चाय बनाकर सारे परिवार को पिलाती और खुद कागज को गोल करके, बिना तंबाखू की बीड़ी सुलगाकर, एक तरफ बैठी ममतामयी आंखों मे सबको निहारती रहती।

पर दूसरे ही पल उसके अन्दर के अकाल ने कामधेनु की शक्ल को एक भेड़ की शक्ल मे तब्दील कर डाला। उसके मुंह से निकल गया, "भेड़ चाहे किसी के हाथ से क्यों न मुडे आखिर उसे मुंडना ही है।" साथ ही उसने बच्चो के पास से उठकर अपने कटोरों को गर्म-गर्म भात से किनारों तक भरा और उसे दो ईंटों की ऊंची जगह पर सजाकर पालथी मारकर बैठ गया।

बमुश्किल दो-चार कौर ही उसके अन्दर गए होंगे कि दरवाज़े के बीच दिखाई देने वाली रोशनी का दृश्य देखकर वह हक्का-बक्का रह गया। सामने

बारिश में भीगती हुई नंदिनी चली आ रही थी। इस तरह के उतावलेपन के साथ जैसे हाथों से बंधा कोई आदमी डूबने से बचने के लिए केवल पैर चला रहा हो—जल्दी-जल्दी।

कुछ देर वह उसे एकटक घूरता रहा। जैसे अपने काल्पनिक दृश्यों में से किसी एक को उस पर फिट बैठाने की कोशिश कर रहा हो। फिर हाथ का कटोरा उसने एक तरफ रख दिया और एक चौथे कटोरे की तलाश करने लगा। जैसे ठेकेदार के यहां से छूटे तोते के लिए पिंजरा तलाश कर रहा हो।

जगदंबा प्रसाद दीक्षित

मुहब्बत

जरूरी नही है फूला बाई का जिक्र। फिर भी एक बस्ती है, जिसे सबने देखा है। पहली बार मैं भौचक रह गया था। पुराने मकानो मे अजीब-अजीब लोग रहते थे—दूर-दूर से आए हुए लोग। लगता था, पिछड़ गए हैं। आगे बढने की लड़ाई मे लगे हुए हैं। कुछ लड़कियां थी, जो वेश्याएं थी। कुछ लड़के-दलाल थे। दिन भर लोग खामोश रहते थे—सोये हुए। शाम से हलचल शुरू होती थी। पूरी सड़क गाड़ियों, दलालो और ग्राहकों से भरी होती थी। बड़े-बड़े होटलों की बत्तियां चमकने लगती थी। इनमे पांच या तीन तारे होते थे या किसी मे कोई तारा नहीं होता था। तारे दिखाई नही देते थे। हम उन्हे सिर्फ़ महसूस कर सकते थे।

दूर-दूर देशों के लोग यहां आते थे। देखकर पता चलता था कि गोरे हैं। अरब हैं। लोग खासतौर पर अरबों के आने का रास्ता देखते थे। दुकानो, होटलों, लड़कियों और दलालों को अरबो का इतजार होता था। भिखारियो, बाजीगरो, हिजड़ों को भी अरबों का इंतजार होता था। अपने-अपने कमरों की ऊंचाइयों से अरब लोग नीचे की दुनिया को देखा करते थे। यहा हिजड़े नाचते थे। बाजीगर खेल दिखाते थे। भिखारी औरतें-बच्चे भीख मांगते थे। नटो के बच्चे सर्कस करते थे। हर खेल के बाद एक ही सवाल होता था—गरीब···भूखा···पेट के लिए खाना···अल्ला···रफीक···रहम कर! सूखे-दुबले-फटेहाल हिंदुस्तानी अपना खाली पेट पीटते थे। औरतें काले-बीमार बच्चे दिखाती थी। अरब ··रफीक··· रहमदिल अल्लाह के नाम पर ऊपर से नोट फेंकते थे। दुबले काले इंसान उन पर टूट पड़ते थे। सबमे समझौता हो गया था। नोटो को लेकर लड़ाइया होती थी··· फिर नही होती थी। लेकिन फिर और मांगते थे ··अल्लाह के नाम पर···रफीक ···रहमदिल ! अब अरब सिर्फ़ हंसते थे। कभी-कभी कागज के टुकड़े फेंकते थे। एक बार फिर दौड़ पड़ती थी।

हम सब लोग खुश थे। यहां रहना जरूरी था। सारी दौलत यही थी। सब कुछ यही था। सिर्फ़ रहने की जगह नही थी। इसका भी इंतजाम हो गया था।

एक कोना था एक खाट काफ़ी थी। यहां मैंने फूला बाई को देखा था। पचपन या साठ साल की थकी हुई काली औरत। बालों में बदरंग खिजाब लगाया था। बालों की जड़ें सफेद हो रही थी। कई जगह सफ़ेद बाल छूट भी गए थे। आते-जाते एक बार उसने मुझे गौर से देखा था। दूसरी बार मुसकरायी थी। तीसरी बार उसने आंख मार दी थी। मुझे क्या हुआ था, मालूम नहीं। शायद मैं घबरा गया था। इससे पहले किसी औरत ने ऐसा नहीं किया था। उस दिन से मैं होशियार हो गया था। आते-जाते हमेशा दूसरी तरफ देखता था। लेकिन फिर भी चीजें ठीक नहीं हो रही थी। किसी-न-किसी तरह फूला सामने आ जाती थी -- और ज्यादा बनी-ठनी, और ज्यादा थकी हुई। ज़रा-सा खांसती। फिर आंखों के कोनों से ताकती। वही मुस्कराहट। मैं परेशान हो गया था।

मगर लोग अब भी उसी तरह चल रहे थे। सूरज समदर मे डूब जाता था। पुराने मकानों में लड़कियां बन-ठनकर तैयार हो जाती थी। टैक्सियां या कारें होटलो मे पहुंचा देती थी। सामने की बड़ी इमारत की बत्तियां चमकती रहती थी। अमीर हिंदुस्तानियों और अरबों की गाड़ियां वहां जरूर आती थी। यह इमारत होटल नहीं थी। इसके फ्लैटों मे शरीफ लोग रहते थे। लेकिन लड़कियां वहा भी होती थी। दलाल वहां भी घूमते थे। मैं अक्सर उकता जाता था। समंदर की लहरें भी दिल नहीं बहलाती थी। गांधी की मूर्ति आंखें बंद किए मुस्कराती रहती थी। प्रेमी लोग लिपटते रहते थे।

भिखमंगे···हिजड़े · दलाल···ठेलेवाले···सब अपना काम करते रहते थे। मगर मुझे···मुझे क्या तकलीफ थी, मालूम नही। इस समय मुझे फूला बाई का ख़याल आ जाता था।

बड़ी इमारत के एक फ्लैट से कोई अक्सर यही नाम पुकारता था। फूला फौरन अदर चली जाती थी। अदर शायद काम करती थी। फिर बाहर आ जाती थी। एक बीड़ी लेकर बैठ जाती थी। लेकिन फौरन ही फिर पुकार होती थी। दम लेने की फ़ुरसत भी नहीं मिलती थी। दुकानो से सामान ले-लेकर अदर पहुंचाती थी। होटल से चाय, दुकान से पान-सिगरेट वगैरह। उकता कर कभी-कभी मैं सोचता था कि मेरी सही जगह क्या है। इस भीड़ मे मुझे किस तरफ जाना है? क्या मैं भी आगे बढ़ूं और दलालों की दुनिया में शामिल हो जाऊं? गांधी की मूर्ति के पास अरबो और अमीरो के सौदे पटाना शुरू कर दूं?

रात लेकिन हमेशा बहुत हो जाती थी। कभी आख़िरी बस मिलती थी, कभी नहीं। जूते घसीटता हुआ मैं पैदल उस ठिकाने पर पहुंच जाता था, जहां मेरी खटिया थी। पार्टनर कभी ड्यूटी पर होता था, कभी सोता रहता था। इधर जबसे वह घर गया था। रात को लौटने पर खोली मुझे काटने दौड़ती थी। जितना ज्यादा हो सकता था, मैं बाहर रहता था। इस समय, जब मैं स्टेशन से बाहर

आया, आखिरी बस जा चुकी थी। घड़ी में डेढ़ बज रहे थे। खाली रास्ते पर मैंने चलना शुरू कर दिया था। दारू के अड्डे खुले हुए थे। मीट-अंडे के खोमचों के पास भीड़ थी। रेडियो की तलाश अब भी जारी थी। ठिकाने पर पहुंचते दो-ढाई बज गए। सारी जगह सुनसान लगती थी। सिर्फ फ्लैटों की बत्तियां जल रही थीं। शायद कोई नशे मे दीख रहा था। अंधेरे गलियारे से जब मैं गुजरा, तो लगा कि कोई खड़ा है। फूला बाई थी···मैं पहचान गया। पल भर रुककर मैं आगे निकल गया।

लेकिन चाबी मेरे पास नही थी। शायद कही गिर गई थी या कही रह गई थी। मैं समझ नहीं पाया कि क्या करूं! देर तक वही खड़ा रहा। फिर बाहर आ गया। फिर अंदर चला गया। इस तरह दो-तीन चक्कर हो गए। मुझे देखकर अब कुछ कुत्तों ने भूकना शुरू कर दिया। इस समय फूला बाई अंधेरे से उजाले में आ गई। मैंने देखा कि चेहरे पर बहुत-सा पाउडर लगाया गया था। बदरंग बालों मे मुरझाया हुआ एक गजरा अटका हुआ था। एक अजीब-सी साड़ी पहनी थी, जो न जाने कब नई रही होगी। पहली बार मुझे मालूम हुआ कि फूला भी रोज रात शायद ग्राहक तलाश करती थी। पहली बार उसने मुझसे कहा, "क्या हो गया? चक्कर क्यू लगाउं?"

मेरी समझ में नही आया कि क्या करूं! फिर भी मैंने कहा, "मेरी किल्ली गुम हो गई। खोली पे लॉक है।"

इस समय रात पूरी तरह सुनसान थी। बड़ी इमारत के 'मसाज पार्लर' से निकलकर कोई बड़ा आदमी कार का दरवाजा खोल रहा था। हल्के उजाले में फूला चुपचाप खड़ी रही। मैं चलने लगा, तो बोली, "जरा रुको तो···कैसा ताला है तुम्हारा?"

हिचकिचाकर मैंने उसे ताले के बारे मे बताया। बोली, "ऐसा करो···हमारी किल्ली लगा के देखो ना।"

उसकी चाल में लड़खड़ाहट थी। जब इमारत से लौटी, तो हाथ मे चाबियों का गुच्छा था। मैंने कई चाबियां लगाईं। एक भी नही लगी। फिर उसने कोशिश की। चाबियो पर चाबियां बदलती रही। पता नहीं कैसे, ताला खुल गया। मैं पल भर वैसे ही खड़ा रह गया। अंदर जाकर बत्ती जलाई। अपने आप ही फूला अंदर आ गई। इस समय मेरी हिम्मत नही हो रही थी कि उसकी तरफ देखू, लेकिन मैं उसे देखने लगा। वह चेहरा उस उजाले मे और भी काला-थका-बूढ़ा लग रहा था। बालों का बदरंग खिजाब, झुरियों पर पाउडर की परतें और पुती हुई लाली। मुझे क्या लगा, मालूम नही। शायद बहुत बुरा लगा। शायद थोड़ा दुख हुआ।

फूला बोली, "मैं तुमकू···आते-जाते रोज देखती।" अब उसके होठ धीरे-धीरे

कांपने लगे। मुंह के कोनों में झाग इकट्ठा हो गई। रुककर बोली, "तुम कि नईं"' मेरे कू भोत अच्छे लगते।"

एकाएक ही मैं कुछ बोल नही सका। अजीब-सी चुप्पी पल-भर छाई रही। अब फूला सभल गई। बोली, "तुमकू लगता कि मेरी ऊमर भोत जास्ती नईं क्या? पर मैं सच्चो बोलती। मेरी उमर जास्ती नईं हैं।"

मुझे मालूम नही था, मैं क्या कहूं। फिर भी मैंने कहा। "नईं, ये बात नईं। तुम मेरे को ग़लत समझा। मैं ऐसा आदमी नईं हूं।"

उसी तरह फूला ने कहा, "नईं, सब आदमी लोग कमती उमर की छोकरी से मोहोबत करते। पर मैं सच्ची बोलती, मेरा उमर जास्ती नईं। तब्बेत थोड़ा बिघड़ गया, बस!"

मैंने जैसे जिद करते हुए कहा, "नईं, तुम मेरे को समझा नईं। मैं वो टाइप का आदमी नईं। मैं तुमकू बहुत अच्छा समझता, पर'''"बोलते-बोलते मैं रुक गया। मालूम नही, क्या कह देता। फूला जैसे और सभल गई। बोली, "देखो ना, मैं तुमकू भोत पसंद करती। आते-जाते हमेशा देखती। तुम अकेले'''मैं अकेली। मैं तो तुमकू'''बोले तो'''मोहोबत करती। और भी जास्ती मोहोबत करूंगी। क्यूं? तो इस वास्ते कि मेरे कू भी मोहोबत मंगता। थोड़ा हेल्प मंगता।"

सुनसान रात के तीन बजे'''एक अकेले कमरे में'''फूला मुझसे मुहब्बत और हेल्प की भीख मांग रही थी। उसके लिपे-पुते चेहरे पर अचानक इतनी बेबसी दिखाई दी कि मुझे तकलीफ हुई। लेकिन मैंने कहा, "नईं बाई, तुम मेरी बात समझो। मेरे को तुमसे कोई नफरत नईं है। पर मैं'''मैं वो टाइप का आदमी ही नईं हूं। नईं समझी?"

फूला ने कुछ नही कहा। अब उसका काला चेहरा और ज्यादा काला हो गया था। अब उसे कोई आशा नही थी। बड़ी देर तक उसी तरह चुपचाप खड़ी रही। धीरे-धीरे बोली, "उमर जास्ती होने से क्या होता है? मोहोबत नईं मंगता? हेल्प नईं मंगता?"

मैं चुप रहा। आखिर फूला ने कहा, "चलो, जाने दो। कोई बात नईं। पर एक बात बोलूं क्या?"

मैं उसी तरह उसकी तरफ देखता रहा। वह बोली, "मेरेकू थोड़ा पैसा मंगता। चार-पांच रुपिया'''उधारी। मैं जल्दी वापस कर देऊंगी। भरोसा करना, सच्ची बोलती।"

इस तरह फूला बाई से मेरी पहली बातचीत खत्म हुई। मैं अब भी उसी रास्ते आता और जाता था। बीडी फूकती हुई फूला मुझे देखती थी। मुसकराती थी, लेकिन मुसकराहट मे अब पहले वाली बात नही थी। मेरे पास पैसों की बहुत कमी थी। फिर भी थोड़ा कुछ मैंने उसे दे दिया था। लेकिन बातचीत कभी नहीं

हो पाती थी।

लेकिन एक रात ''जब बिना कुछ खाये-पिये मैं सोने की कोशिश कर रहा था, दरवाजे पर दस्तक हुई। सामने फूला खड़ी थी। उसके मैले आंचल मे कुछ ढका हुआ था। कुछ चिड़चिड़ाकर मैंने कहा, "क्या है ?"

आंचल के नीचे से एक रकाबी उसने मेरी तरफ बढ़ा दी। खोली मे एक खुशबू-सी फैल गयी। प्लेट मे पुलाव या इस तरह की कोई चीज थी। मैं उसकी तरफ देखता रह गया। उसने कहा, "मुबू को प्लेट ले जाऊंगी। ऐसा खाली पेट नई सोने का ?"

मुझे ताज्जुब हुआ था। उसको किसने बताया कि शाम मुझे खाना नही मिला था।

इसके बाद कई बार ऐसा होने लगा। गुजरते समय कई बार वह मेरे चेहरे को देखती। उसे बहुत कुछ मालूम हो जाता था। कई बार उसने मुझे रोका। अंदर जाकर चुपचाप कोई रकाबी या प्लेट ले आयी। लेकिन बातचीत अब भी नही होती थी।

लेकिन अब वह मुझे बाहर भी मिलने लगी थी। समंदर के किनारे गांधी की मुसकराती मूर्ति के पास कभी-कभी बीड़ी फूकती हुई बैठी रहती थी। धीरे-धीरे मैंने उसके पास बैठना शुरू कर दिया था। अब वह ज्यादा थकी, ज्यादा हारी हुई मालूम होती थी। काम अब उससे होता नहीं था। 'मसाज पार्लर' मे काम बहुत करवाते थे। रात को काम होता था। दिन मे भी काम होता था। 'पार्लर' मे कई लड़कियां थी। रात को ये अरबों और हिंदुस्तानी रईसों की 'मालिश' करती थीं। बद कमरों के अंदर से लगातार फूला की पुकार होती रहती थी। कभी यह पहुंचाओ'''कभी वह पहुंचाओ! शराब'''बर्फ'''सोडा''' सिगरेट'''! बीच-बीच मे लबी चुप्पियां छा जाती थी। खाना भी पकाना पड़ता था। बड़ी रात लडकियां बहुत थक जाती थी। फौरन खाना मागती थी। फूला को बहुत गालिया देती थी। नशे मे कभी-कभी मारना शुरू कर देती थी। कहां का गुस्सा कहां निकालती थी। कोई-कोई कस्टमर खाना भी खाते थे। ये लोग खूब पैसा लुटाते थे। इतना पैसा है इनके पास कि सोच भी नही सकते। मगर लड़कियों को बहुत कम मिलता था। 'पार्लर' के पलैट का भाड़ा ही पंद्रह हजार रुपिया महीना था। बचा हुआ बहुत-सा रुपिया 'पार्लर' वाला ले जाता था। कुछ दलाल लोग ले जाते थे। लड़कियो के लिए थोड़ा-सा बच जाता था। बस अच्छी तरह पहन-ओढ़ लेती थी। लड़कियां बड़े बेमन से काम करती थी। कई बार बुरी तरह पीटी जाती थी। कुछ को चरस'''और पता नही क्या-क्या की लत लग गयी थी।

दिन भर भटककर शाम को मैं अकसर मूर्ति के चबूतरे पर बैठ जाता था।

उस समय मुझे फूला का इंतजार होता था। अपने दिल का सारा गुबार अब मैं उसके सामने निकालने लगा था। लेकिन अकसर वह नहीं आ पाती थी। कई बार मूर्ति के पास रोशनी की जाती थी और भाषण होते थे। लेकिन टैक्सीवाले अरब अमीरों को यहां ले आते थे। इनके साथ हिंदुस्तानी या नेपाली लड़कियां होती थीं। छोटी-छोटी लड़कियों को अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाकर अरब लोग इन्हें सैर कराने लाते थे। इन सूखी-मुरझायी लड़कियों पर फौरन की जींस और कमीजें बड़ी अजीब लगती थीं। इन कपड़ों को पहली बार पहनकर ये लड़कियां बहुत खुश दिखाई देती थीं। हिंदुस्तानी दलाल और टैक्सी ड्राइवर हाथ बांधे पीछे-पीछे चलते थे। बीच-बीच में छोटी लड़कियों को डांट-डांटकर बताते रहते थे कि कैसी हरकत करनी चाहिए और कैसी नहीं। रेत के किनारे के रेस्तरां और होटल बहुत ऊंचे और मंहगे थे। अरब लोग इन लड़कियों को वहां जरूर ले जाते थे। उस समय ऐसे खाने को पहली बार देखकर इन लड़कियों की आंखों में पता नहीं कैसी चमक आ जाती थी। फिर इस तरह खाती कि बस देखते ही बनता था। अरब लोग इन लड़कियों को बहुत खुश करते थे। कभी घोड़ों पर बिठाते, कभी ऊंट पर। तरह-तरह से इनकी रंगीन तसवीरें उतरवाते थे। इतनी खुशियां एक साथ पाकर ये छोटी-छोटी लड़कियां उछल-उछलकर कभी यह मांगती थीं, कभी वह।

यह देख-देखकर फूला को बहुत गुस्सा आता था। एक दिन झल्लाकर बोली, "सुनते क्या! एक दिन इनका भी कोई हाल होगा, जो मेरा हो रया है। मेरे कू भी ये सब मे मौत मजा आता था।"

अचानक फूला जैसे रुआंसी हो गयी। हो सकता है, यह सही हो। शायद कभी फूला का भी एक जमाना रहा हो। यह बात सच हो कि दूर-दूर से लोग फूला का पता लगाकर आते थे। दलाल लोग बड़े-बड़े ग्राहकों को हमेशा फूला के बारे में बताते थे। लेकिन फूला की इस हालत को देखकर, पता नहीं क्यों, उसकी इन बातों पर भरोसा नहीं होता था।

इधर वह कुछ ज्यादा ही चिड़चिड़ाने लगी थी। हर चीज'''हर बात पर झल्ला उठती थी। अब सिर्फ़ लड़कियों, दलालों, पार्लर वाले को ही नहीं कोसती, सारी-सारी दुनिया को गालियां देती थी।

एक शाम, जब सूरज को डूबे काफ़ी समय बीत गया था, गांधी की मुसकराती मूर्ति के पास हम दोनों बैठे थे। जोड़े प्यार कर रहे थे। लड़कियां ग्राहक तलाश कर रही थीं। हिजड़े नाच रहे थे और भिखारी भीख मांग रहे थे। फूला कुछ ज्यादा ही चुप थी। मैं भी चुपचाप तमाम लोगों को देख रहा था, जो बहुत खुश दिखाई दे रहे थे। अचानक मैंने महसूस किया कि फूला मेरे पास सरक आयी है। लेकिन मैं अनजान बना रहा। वह कुछ और पास आ गयी। उसके शरीर का

इतना पास होना मुझे कुछ ज्यादा तकलीफ देने लगा। फिर भी मैं बैठा रहा। अब उसने हाथ मेरे कंधे पर रख दिया और बोली, "ऐसा क्या करते। चलो ना, अपुन चलेगा···किधर भी ! अपुन मोहोबत करेगा।"

मैं अब भी उसी तरह बैठा रहा। उसका मुह अब मेरे बहुत करीब आ गया था। उसने कहा, "सच्ची, मैं तुमकू भोत मोहोबत करती·· भोत। ऐसा क्या करते। चलो ना भी !"

अब मैं उठकर खड़ा हो गया। मैंने कहा, "एक बार बोला न तुमको, मैं वो टाइप का आदमी नईं हूं। समझ में नई आता क्या ?"

मेरी आवाज में शायद कुछ गुस्सा था। पल भर वह उसी तरह बैठी रही, फिर खड़ी हो गयी। इस समय मैंने महसूस किया कि वह बहुत ज्यादा गुस्से में है। उसका काला चेहरा उस धुंधले अंधेरे मे कांपने लगा। बहुत ही नंगी गालियां देकर वह बोली, "जा रे साला जा-जा ! तू क्या मोहोबत करेगा ! हिजड़ा ! तेरा बाबा भी मोहोबत नईं कर सकता। साला · कलेजा मंगता···कलेजा ··मोहोबत के वास्ते। साला, तेरा बाप भी कभी किया क्या ! तू···तू···तू······तो !"

इसके बाद नंगी गालियों की कोई हद नही रही। मैं चुपचाप उसे देखता रहा। मेरे मन मे अब कोई गुस्सा नही था। उन गालियों का मुझे बुरा भी नही लग रहा था। उसे देखकर मुझे कुछ तकलीफ हो रही थी। वह बोलती रही, मैं सुनता रहा। वह थक गयी। लड़खड़ाती हुई चली गई। मैं उसी तरह धुंधले अंधेरे में खड़ा रह गया। सागर की लहरों के थपेड़े पास आते गए और लोगों का शोर कम होता गया। लेकिन अब भी मेरी समझ मे नही आया कि क्या करूं।

लेकिन इसके बाद फूला ने मेरी तरफ देखना बिल्कुल बंद कर दिया। कई बार मैं पास से गुजर जाता था, फिर भी वह मेरी तरफ नही देखती थी। क्या वह मुझसे हमेशा नाराज रहती थी ? मुझे ऐसा नही लगता था। लगता था कि कोई सवाल है। शायद जिंदगी का सवाल। इस सवाल से अब वह अकेले ही लड़ेगी। अब उसे किसी की जरूरत नही है। मैं भी उसके लिए बेकार हूं। या वह शायद बहुत थक गयी है। अब किसी को देखना, किसी से बोलना उसे अच्छा नही लगता।

लेकिन मैं फूला से बोलना चाहता था। एक दिन मैं बहुत ज्यादा दुखी हो गया था। इधर दफ्तरों और कंपनियो में लोगों को सिर्फ छह महीनों के लिए काम पर रखा जाता है। इससे काम करने वाले हमेशा टेंपरेरी रहते हैं। उनके परमानेंट होने का कोई खतरा नही होता। हर छह महीने के बाद उन्हे काम से अलग कर दिया जाता है। इसके बाद नया अप्वाइंटमेंट दिया जाता है। इस बार कंपनी ने मुझे नया अप्वाइंटमेंट देने से इनकार कर दिया। अचानक ही मैं बेकार

हो गया। इतना परेशान मैं पहले कभी नहीं हुआ था। लगा कि खूब रोऊं। उस दिन बहुत मन हो रहा था कि फूला से सब कुछ कह दूं। लेकिन मूर्ति के चबूतरे पर आना उसने बंद कर दिया था। लौटते समय रास्ते में मिली जरूर, लेकिन देखकर भी मुझे अनदेखा कर दिया। मैं वहां से बार-बार गुजरा, मगर उसने मेरी तरफ देखा तक नहीं। उस समय मुझे उस पर गुस्सा भी आया था।

मेरा रूम पार्टनर हमेशा सोता रहता था। उसकी ड्यूटी हमेशा रात को रहती थी। मेरी-उसकी बातचीत बहुत कम हो पाती थी। अब मैं अकेला ही सागर किनारे दूर-दूर तक घूमता रहता था। इस इलाके में नयी-नयी और ऊंची-ऊंची बिल्डिंगें खूब बन रही थीं। हम लोग इन्हें बस देख सकते थे। मैंने सुना था कि बिल्डर लोग एक-एक फ्लैट से कई-कई लाख रुपये लेते हैं। बहुत-से बड़े-बड़े स्मगलर लोग बिल्डर बन जाते हैं। बहुत-से लोग लाखों रुपये देकर ये फ्लैट खरीदते हैं। फिर लाखों रुपये खर्च कर इन फ्लैटों को सजाते हैं। ये सारी बातें सुनता था, लेकिन मुझे भरोसा नहीं होता था। मैंने यह भी सुना था कि लोग बहुत जल्द बहुत अमीर हो जाते हैं। इस बात पर भी मुझे भरोसा नहीं होता था।

इन दिनों मेरे मन में फूला से बात करने की बड़ी इच्छा होती थी। दिन भर धक्के खाकर शाम जब मैं लौटता था, तो हर रोज मेरे पास एक नयी कहानी होती थी। ये कहानियां अकसर निराशा, बेइज्जती और दुख की कहानियां होती थीं। काम मिलना बड़ा मुश्किल हो रहा था। हर जगह अपने-अपने लोगों को काम दिया जा रहा था। ये सब कहानियां मैं पहले की तरह ही फूला को सुनाना चाहता था। लेकिन अब फूला ने दिखाई देना ही बंद कर दिया था।

एक दिन जब मैं लौटा, तो बहुत खुश था। अगले दो-चार दिनों में मेरा काम पर लगना पक्का हो गया था। उम्मीद थी कि इस बार छह महीने वाली नौकरी नहीं होगी। पक्का हो जाने की पूरी आशा थी। मैं इतना खुश था कि किसी भी हालत में फूला से बात करना चाहता था। काफ़ी रात तक मैं मूर्तिवाले चबूतरे पर बैठा रहा। मेरे सामने हंसते-खेलते लोग गुजर गए। मेरे सामने सूरज पानी में डूब गया। लेकिन फूला नहीं आयी। यह कोई नयी बात नहीं थी। रात तक बैठकर मैं वहां से उठ गया। इमारत के सामने से गुजरते-गुजरते कई बार मैंने उधर देखा। फूला कहीं दिखाई नहीं दी। यह भी कोई नयी बात नहीं थी। लेकिन इस बार मुझे कुछ अजीब-सा लगा। मुझे फिर खयाल आया कि पिछले दिनों से मैंने उसे नहीं देखा है। क्या हुआ? क्या वह कहीं और चली गई? इस खयाल से मैं कुछ परेशान हो गया। मैं किसी से फूला के बारे में पूछना चाहता था, लेकिन यहां कोई किसी से बात ही नहीं करता था।

दो-तीन दिन और गुजर गए। 'मसाज पार्लर' की बत्तियां बड़ी रात तक

चमकती रहती थी। बार-बार आते हुए···जाते हुए···मैंने ध्यान से देखा, फूला कहीं नहीं थी। मुझे मालूम हो गया, फूला कहीं चली गई। शायद मुझे काफी बुरा लगा। लेकिन मैं ऊंची इमारतों में रहने वाले लोगों की बातें सोचने लगा। लाखों रुपये खर्च करने वाले लोगों की बातें सोचने लगा। स्मगलरों, बिल्डरों, अरब अमीरों के साथ घूमती छोटी लड़कियों···सभी की बातें सोचने लगा। लेकिन फूला के बारे में भी सोचता रहा।

लेकिन एक रात एक और ही बात हो गयी। मुझे लौटने में काफी देर हो गयी थी। अगले दिन मुझे काम पर बुलाया गया था। मैं थका था। लेकिन काफ़ी खुश था। आखिरी बस छूट जाने के कारण मैं पैदल चल कर ही ठिकाने पर पहुंचा था। जब मैं अंधेरी गली में दाखिल हो रहा था, मैंने देखा कि लाड़ी की दुकान के तख्ते पर कोई औरत पड़ी है। मैं आगे निकल गया। लेकिन फिर लौट आया। हां, यह फूला ही थी। मैं कुछ समझ नहीं पाया। इस समय रात के दो बज रहे थे। सड़क करीब-करीब खाली थी। लड़कियां और दलाल जा चुके थे। मुझे लगा कि फूला सो गयी है। लेकिन मैं फिर गुजरा और मुझे लगा कि नहीं, सोयी नहीं है। शायद छोकरियों के साथ इसने भी बहुत शराब पी ली है। मैं अपनी खोली तक गया। ताला खोलने से पहले फिर लौट आया। अब मुझे लगा कि फूला बेहोश है। कुछ हिचकिचाकर मैंने आवाज़ दी, "फूला! फूला बाई"! कोई जवाब नहीं आया। अब मैं उसके एकदम पास पहुंच गया। मैंने उसे हिलाया और···और मुझे लगा कि फूला बहुत बीमार है। उसका बदन बहुत ज्यादा गरम है और मुंह के चारों तरफ झाग फैली हुई है। अचानक ही सब कुछ समझ में आ गया। शायद फूला कई दिनों से बीमार थी। मुझसे झगड़ते समय भी शायद बीमार थी। पार्लर वालों ने शायद आज उसे निकाल दिया। वहां से निकलकर वह किसी तरह तख्ते तक पहुंची···या शायद लोग उसे यहां डाल गए। इसके बाद मेरी समझ में नहीं आया कि क्या करूं! क्या मैं फूला को उसी तरह वहां छोड़ दूं और चला जाऊं? मुझे लगा कि ऐसा नहीं हो सकता। वहां अंधेरी गली में कोई नहीं था, जिससे मैं कुछ कह सकता। सिर्फ ऊंची इमारतों की बत्तियां चमक रही थीं और सड़क पर एक-दो टैक्सी वाले अपनी-अपनी टैक्सियों में सो गए थे। मैं चाहता था कि किसी को पुकारूं, आवाज दूं, लेकिन वहां कोई नहीं था।

उस समय मैंने हिसाब लगाया कि मेरे पास कुल कितने रुपये बचे हैं। इसके बाद मैंने एक टैक्सी वाले को जगाने की कोशिश की। मुश्किल-ही-मुश्किल थी। फिर भी मैंने सोच लिया था कि अब क्या करना है।

इसी तरह रात बीतती गयी थी। अस्पतालों ने उसे लेने से इनकार कर दिया। म्युनिसिपल अस्पताल ठसाठस भरा था। मैंने बड़ी मिन्नत की थी। नर्सों

थे दूसरी रूम में एक बिस्तर डालकर उसे लिटा दिया गया था। ग्लूकोज की बोतल लगा दी गयी थी। वहीं नर्स ने मुझसे कहा था कि मैं बोतल की जगह दूसरी ला दूं। अस्पताल में दवाइयाँ भी नहीं हैं। मैं बाहर से खरीदकर दवाइयाँ ले आऊं। लेकिन मैं चुपचाप सुबह का इंतजार कर रहा था। बरामदों में, गलियारों में, पलगों पर, ज़मीन पर, हर जगह मरीज़-ही-मरीज़ पड़े थे। नर्स ने कहा था कि इंजेक्शन भी लाना होगा। बहुत-सी चीज़ों की ज़रूरत थी। लेकिन हमारे पास कुछ नहीं था। फिर भी मैं सुबह का इन्तज़ार कर रहा था। और बैंच पर बैठे-बैठे ही सुबह हो गयी थी। मुझे नहीं मालूम था कि यह कैसी सुबह थी। लोगों ने चलना फिरना और गाड़ियों ने दौड़ना शुरू कर दिया था। मैंने तमाम लोगों के बारे में सोचा था। वे लोग थोड़ी-बहुत मदद कर सकते थे। दूसरी रूम में जाकर मैंने एक बार फिर फूला की तरफ देखा था। वह अब भी बेहोश थी। चितकबरे बाल बिखरे हुए थे और वह पहले से ज्यादा सुन्दर लग रही थी। इसके बाद मैंने चलना शुरू कर दिया था।

दिन भर चलता रहा। इस जगह से उस जगह और उस जगह से उस जगह। इंडिया इन्टरनेशनल कारपोरेशन ने मुझे काम पर लेने से इनकार कर दिया। मुझे बहुत दुख हुआ। मेरी सारी आशाएं मिट्टी में मिल गईं। इस बार मुझे बहुत भरोसा था, काम ज़रूर लग जाएगा। सुबह-शाम की चिंता मिट जाएगी। मुझे लगा कि मैं जैसे फुटपाथ पर आ गया हूं। शाम होते-होते मैं लौट आया। इस समय दवाइयां और सलाइन की बोतलें मैंने खरीद ली थीं। कुछ लोगों ने थोड़े-थोड़े पैसे दे दिये थे। मैं बिल्कुल थक गया था।

जब मैं अस्पताल पहुंचा, तो फूला की हालत बहुत खराब थी। उसके मुंह पर कानों तक कै फैली हुई थी और बिस्तर भी कै में सना हुआ था। उसकी सांस घर-घरा रही थी। लगता था कि किसी भी समय उखड़ जाएगी। लेकिन फिर भी उसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं था। इस समय मुझे लगा कि फूला मर जाएगी। पता नहीं क्यों, मुझे यह भी लगा कि हे भगवान, फूला को इस तरह मरना नहीं चाहिए, किसी भी तरह उसे बचना चाहिए।

मैं दौड़कर बड़ी सिस्टर के पास गया था। बड़ी मुश्किल से उसने मेरी तरफ ध्यान दिया था। फिर एक डाक्टर आया था। उसने बताया था कि कै फेफड़ों में चली गई है। फूला पड़ी हुई कै करती रही थी और किसी ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया था। अब एक मशीन लायी गई। मशीन घर्र-घर्र चलने लगी। मुंह के अंदर नली डालकर डाक्टर चारों तरफ हिलाने लगा। अब फूला एक-एक सांस खींचने के लिए बिलबिलाने लगी। बिलबिलाकर सांस खींचती थी। छटा-पटाकर आंखें खोल चारों तरफ देखती थी। अब मुझे बार-बार लगने लगा कि किसी भी तरह उसे बच जाना चाहिए। बचकर क्या होगा? बचकर कहां

जाएगी ? मुझे कुछ भी मालूम नही था। बस, यही लग रहा था कि उसे बचना चाहिए।

मशीन चलती रही और आवाज आती रही। फूला बिलबिलाती रही और आवाज आती रही। धीरे-धीरे रात हो गई और सभी आवाजें चुप हो गयी। अब मशीन हटा दी गई और बोतल फिर लगा दी गई। अब मेरी समझ मे नही आ रहा था कि क्या करूं ? नर्स और डाक्टर कोई बताने को तैयार नही था कि क्या होगा। आक्सीजन के सारे सिलेंडर खाली पड़े थे। या दो-तीन थे, जो मरीजों पर लगे हुए थे। मैं बैठा रहा। फिर मैं बाहर आ गया। फिर मैं सोचने लगा कि रात क्या होगा ? क्या मैं वही कही सो जाऊं ? लेकिन ऐसी कोई जगह नही थी। रात कुछ हो गया, तो क्या फूला का दुनिया में कोई है ? क्या हमारा दुनिया मे कोई है ? तब मुझे लगा था कि हमारा कोई नही है···हमीं अपने सब कुछ हैं।

अब मैं वहीं लौट आया था, जहां स्मगलर, अरब, अमीर, लड़कियां, दलाल, हिजड़े···सब अपना काम कर रहे थे। कई सितारों वाले होटलों में बत्तियां जगमगा रही थी और महंगे रेस्तरांओं मे अजीब धुने बज रही थी। 'मसाज पार्लर' के सामने खूबसूरत गाड़ियां खड़ी थी। आज शायद कोई खास दिन था। गांधीजी की मूर्ति को लट्टुओ से सजाया गया था और सामने कोई नेता भाषण कर रहा था। काफी भीड़ लगी हुई थी। इस समय नेता गांधीजी, पंडितजी वगैरह की महानता का बखान कर रहा था और एक दलाल एक कार वाले को पटाने की कोशिश कर रहा था।

तब मुझे अचानक पहली बार खयाल आया कि मैं किस दुनिया मे हूं ? किसने इसे ऐसा बना दिया है ? मैं क्या करूं ? इसे ऐसा ही छोड़कर अपनी आखें बंद कर लूं ? चारो तरफ दलालो की भीड है। मैं भी दलालों की दुनिया मे, दलालों के दलालों की दुनिया मे शामिल हो जाऊं ? तब मुझे लगा कि नही, ऐसा नही हो सकता। मैं आंखें बंद नही कर सकता। मैं बेकार, बेघर, बेसहारा सही, पर मैं दलालों की दुनिया में शामिल नही हो सकता। नौकरी नहीं मिलेगी···कभी नही। कोई बात नही। फूला मर जाएगी, कोई बात नही। रास्ता मुझे मालूम नही, कोई बात नही। इन सबके लिए मेरे अंदर नफरत है, वह हमेशा जिंदा रहेगी। वही मुझे रास्ता दिखाएगी।

रात भर आवाजें आती रही। रात भर बाजे बजते रहे और धुने गूंजती रही। रात भर बत्तियां जलती रही। रात भर···मैं सो नही सका। या शायद सो गया और सपने देखता रहा। फूला मर गई और बाजे बजते रहे···धुने गूजती रही···बत्तियां झिलमिलाती रही। बार-बार मैं जागकर उठ बैठा। बार-बार मैं सो गया। बार-बार फूला मरती गई।

लेकिन जब सुबह हो गई, तो फूला मरी नही, जिंदा थी। मैं सबसे पहले

अस्पताल पहुंचा था। बोतल और नली को हटा दिया गया। नर्स ने कहा कि मैं चाय-काफी-दूध कुछ भी लाकर उसे पिलाऊं।

एक गिलास में चाय लेकर जब मैं उसके पास बैठा, तो आंखें खोलकर उसने मेरी तरफ देखा था। मैंने चम्मच से चाय दी। उसने चुपचाप पी ली। एक बार फिर उसने मेरी तरफ देखा। फिर चुपचाप आंखें बंद कर लीं।

लेकिन इसी समय बड़ी नर्स ने आकर कहा कि मैं उसे ले जाऊं और फौरन वह जगह खाली कर दूं। इमरजेंसी में उसे रख लिया गया था। अब जान के लिए खतरा नहीं है। अब ड्यूटी रूम में उसे रखा नहीं जा सकता। अस्पताल में कोई जगह नहीं है। बाकी दवाइयां मैं उसे घर ले जाकर दूं। तब मैंने सोचा था'''घर ? घर ले जाऊं ? कहां है घर ? 'मसाज पार्लर' वाले उसे रखेंगे ? काफी समय मैंने उसी तरह गुजार दिया था।

अचानक बड़ी नर्स बहुत तेजी से मेरे पास आई। फूला को न ले जाने के लिए उसने मुझे बहुत डांटा। आवाज देकर उसने कई वार्ड बाय बुला लिए। आखिरी बार उसने मुझसे कहा कि अगर मैं फूला को नहीं ले जाऊंगा, तो वह उसे बाहर डलवा देगी। इस बार मैं चुप नहीं रह सका। फूला के पास पहुंचकर मैंने कहा, "फूला बाई'''उठो ! अब यहां से चलना है।"

फूला उठने की कोशिश करने लगी, लेकिन उठा नहीं गया। तब आगे बढ़कर मैंने सहारा दिया। किसी तरह उठकर बैठ गई। फिर सहारे-सहारे खड़ी हो गई। फिर घिसट-घिसटकर हम दोनों ने किसी तरह चलना शुरू कर दिया। घिसटते हुए हम अस्पताल के फाटक पर आ गये। अचानक वह ठहर गई। मैंने देखा कि कुछ कह रही है। मैंने सुनने की कोशिश की। कांपती आवाज में उसने कहा, "तुम'''तुम'''मेरी जान बचाया। नईं तो · मर जाती—!"

इस समय उसकी आंखें डबडबायी हुई थीं। अचानक मैं जोरों से हंस पड़ा—हंसता रहा। वह देखती रही। हंसते हुए मैंने कहा, "तुम · बोली थी न'''कि मैं'''मुहब्बत नहीं कर सकता। अभी देखा ना, मैं कैसी मुहब्बत करता !''' बोलो !"

लेकिन फिर इसी समय मैं अचानक बहुत गंभीर हो गया। मैंने कहा, "इस'''मैं'''मैं वो टाइप का आदमी नईं हूं'''समझ गयी ना !"

इस समय घिसटते हुए, लड़खड़ाते हुए—हम अस्पताल से बाहर निकल रहे थे। लेकिन—हमें नहीं मालूम था—कि किधर जाना है !

चीरहरण के बाद

पहले मौसम ने पुरवैया का झीना घूंघट ढरकाया और फिर बादल का गढा ओढ़ लिया। जाने कैसे और कहां से सरदाई हवाओं ने गमक ली कि सुरसुरी छूट गई। आकाश के किसी कोने में दुबककर बैठी अमावस की भोर ने तभी आंचल निचोड़ा और देखते-देखते शहर का ओर-छोर भीग गया। धरती की सांस में मिट्टी की सौंधी सुगंध रच गई। पवन पेग कुरमुराकर ठहर गयी, एकदम सास रोके चुप। क्षमा की सांझ का आंचल लहराता कि विन मौसम की अनचाही छींटा-छांटी बिलमा गई और दीपावली के दीये आंगन-मुंडेर पर उजली किलकारी बिखेरने लगे। हाट-बाजार मे भीगी-भीगी नरम रोशनी, ठहरी हवा की हथेली की ओट, जगर-मगर हो उठी।

आदिवासी-हस्त-कला केन्द्र (सरकार का अपना प्रतिष्ठान)। बडी और ऊंची दूकान के माथे पर तिलक की भांति चढ़े नियोन लाइट्स के लेख जगमगाने लगे। इस प्रतिष्ठान का राज्य के उद्योग मंत्री के हाथों, दीपावली के शुभ अवसर पर, आज ही रात को नौ बजे उद्घाटन होना है। आदिवासियो के हाथो मे आदिकाल से सुरक्षित दस्तकारी को व्यावसायिक स्तर पर पनपाने के लिए नये मंत्री की कल्पना आज साकार होनी है। प्रांत के हर बडे नगर मे ऐसे एक केन्द्र की स्थापना के आदेश जारी किये जा चुके है। उत्तर भारत के वेनिस नाम से विभूषित इस ट्यूरिस्ट नगर में यह पहला केन्द्र है।

उद्घाटन समारोह मे कही कोई कोर-कसर न रह जाए, इसके लिए जिलाधीश ने स्माल इंडस्ट्रीज विभाग के तेज-तर्रार और चुस्त-चौबंद डिप्टी डायरेक्टर श्री तिरखा को खासतौर पर तैनात किया है। तिरखा साहब अपने चार सहायकों के साथ दो घंटे पहले ही आ पहुंचे हैं। अपने सजग एस्थेटिकसेंस का पूरा-पूरा उपयोग करके उन्होंने दस्तकारी के मुह बोलते नमूनो को यूं सजवाया है कि केन्द्र में पैर रखते ही मुंह से 'वाह खूब' निकल जाए तो अजब नही। तिरखा साहब चौफेर आंख डालकर जायजा ले रहे थे कि कही कोई कमी-कसर तो नही रह गई। सभी कुछ डायरेक्टर, स्माल स्केल इंडस्ट्रीज की पूर्ण योजनानुसार तो है

न ? वह साज-सजावट को अभी तौल ही रहे थे कि—उनकी निगाह ने ठोकर खायी।

"अरे ये कैसे खाली पडा है ?" इन्होंने अपने सिर से भी ऊपर निकलते हुए कांच के उग चमकते हुए आदमकद शो-केस के शीशों पर हाथ फेरते हुए कहा।

"वो साहब—इसमें आदिवासी युवती की डमी—प्लास्टिक की डमी लगनी है—और वह आ नहीं पायी। रिमाइंडर पर रिमाइंडर जा चुके हैं, परसों तार भी दिया पर···"

"वो सब तो किया पर अब वक्त कहां है ? शो-केस में आदिवासी युवती की डमी रखने का आइडिया खुद डायरेक्टर साहब का है, और यही शायद···यह केस लगा भी ऐसी कमांडिंग पोजिशन में है कि इसे हटा दें तो सारे केन्द्र की नाक ही उड़ जाएगी।" रंगीन सीमेंट में सीप के चमकीले चिप्स से चमकते पिलर से सटे शो-केस को निरखते हुए तिरखा साहब ने कहा, "भई कुछ भी करो, कैसे भी हो, डमी तो इसमें लगनी ही चाहिए। शहर में कहीं नहीं कोई डमी ?"

"हैं तो साहब, पर वे सब स्कूल के लड़कों की है।"

"अरे मारो भी गोली। अपना दिमाग फेंको कहीं···" तिरखा साहब अपनी बात पूरी करते कि तभी उन्हें सामने टेंट की कनात के पास एक भिखारिन दिखाई दी। वह कनात के पीछे बनने वाली पूरियों-कचौरियों की सुगंध से बंधी, मुंह चौडा कर अजीब ढब में चिरोरी कर रही थी, "बाबू एक कचौरी—बस एक पूरी।" तिरखा साहब के माथे मे 'जलूं-बुझूं-जल' जीरो बल्ब की दिप-दिप में नाचता हुआ बिजली का मोर बोल उठा, "ठीक आदिवासी ही लगती है यह जवान भिखारिन। इसे ही नहला-धुला, सजा-संवार कर आदिवासी पोशाक पहना कर शो-केस मे खड़ी कर दें तो ? यही कोई घंटे-आधे घंटे के लिए, बस। उद्घाटन का फीता कट जाए। एक राउंड मिनिस्टर साहब ले लें—फिर इसकी छुट्टी" तिरखा ने सब सोच लिया और अपने सेक्शन इंचार्ज को, दूर अलग ले गए। उसे जरूरी हिदायतें देकर—आंख का कोना दबा दिया। "देखो, शर्मे, तुम्हारे और केन्द्र के मैनेजर के बीच रहे यह बात। औरों को कानोंकान खबर न हो," तिरखा ने शर्मा के कानों में फूक मारी और साज-संभाल मे फिर जुट गए।

मंत्रीजी के आने के थोड़ी देर पहले ही केन्द्र की बिजली चली गई। तिरखा साहब हड़बड़ाकर बोले, "देखो तो वर्मे-शर्मे, यह सब गुल-गपाड़ कैसे हो गया ?" कोई पांच मिनिट अंधेरा रहा और फिर सब जगमगाने लगा, आदमकद शो-केस भी। युवती की डमी थी उसमें। एकदम सही सजग, ठीक वैसी-जैसी तीज-त्योहारों पर देखी जा सकती है। अपनी पारंपरिक वेश-भूषा में। गहनों से सजी-संवरी एक आदिवासी युवती की डमी लगी थी उसमें।

तिरखा साहब ने सब कर लिया था। एकदम सौ टंच। तभी कार का हार्न

सुनाई दिया। पुलिस के प्यादों में हलचल हुई। मंत्रीजी आ गये'''आ गये मंत्रीजी'''अगली कार के रुकते ही पिछली कार से कलेक्टर साहब उतर पड़े और कार के फाटक को अदब से अपनी ओर खींचते हुए 'पधारे सर' के बोल के साथ वह दोहरे हो गए। एम. पी., डी. एस. पी. ने सलाम ठोके और अगवानी में दायें-बायें चलने लगे।

नियोन लाइट्स में मुस्कराते हुए साइन बोर्ड पर मंत्रीजी ने नजर डाली। नन्ही ऊंचाई वाली सीढ़ी पर पैर रखा कि उनके गलों में फूलों के हार झूल गए। कैमरे की आंख चमकी और सामने आई तश्तरी में से चिलका मारती कैंची उठा कर उन्होंने फीता काट दिया। कैमरों ने फिर आंख चमकाई और चौफेर में तालियों की गड़गड़ाहट भर गई। मंत्रीजी आगे बढ़े। पहले एक नजर शो-केश पर गई। उन्हें लगा जैसे शो-केश के शीशे पर झूलते खादी के फूलों के पीछे आदिवासी लड़की की सूरत में कहीं कुछ सुरसुरी-सी जागी है। तभी उनका पी० ए० सॉरी कहता हुआ उनके पास आया और उनके कान में कुछ फुसफुसाकर परे हो गया। मंत्रीजी की चाल में तेजी आ गई और वह अब सब झटा-झट निपटाने के मूड में आ गए। चटपट उन्होंने केन्द्र का राउंड लिया और बाहर आकर शामियाने की ओर बढ़े। सामने लगे आसन को ग्रहण किया। स्वागत भाषण करते हुए जिलाधीश उनके मंत्रालय की उपलब्धियों को और गिनायें, इससे पहले ही वह चेहरे पर आभार का भाव लाकर खड़े होते हुए और 'दो शब्द' के बदले सौ-दो-सौ शब्द कहकर ही बैठ गए। उनकी उतावली को लक्ष्य करके आयोजक भी जान गए कि शायद राजधानी से बुलावा आया है। इधर मंत्रि-मंडल के हेर-फेर की बात भी राजनीतिक हलकों में गरम थी। धन्यवाद और औपचारिकता पूरी करते ही आगे वाले शमियाने की कनात हट गई। सामने बफे डिनर था। मंत्रीजी थोड़ा-सा चुग-चुगाकर क्षमा करें कहकर अपनी कार की ओर बढ़े। उनके रवाना होते ही टेबल पर तश्तरियां-चम्मच बजने लगे। अंग्रेजी ढब में परसा गया भारतीय खाना ठेठ हिन्दुस्तानी ढंग से खाया जाने लगा।

जिलाधीश के साथ दूसरे छोटे-बड़े अफसर रवाना हुए तो साढ़े नौ से ऊपर हो गए थे। दीपावली की रोशनी में लोगों के चेहरे चमक रहे थे। सब में एक हुलास था। सबके मन खिले-खिले थे पर वह शीशों के पीछे बन्द, रोशनी के धारों से घिरी हुई सांस रोके मुरदार खड़ी हुई थी। एकदम चुप। वेहिलबुत-डमी। गरम पूरी-कचौरी, हलवे-भात-सब्जी-सालन के तीखे भभके शो-केश पर दस्तक देते, पीछे के खुले हिस्से से घुसकर, उसकी भूख को भड़का रहे थे। आज उजाले के त्योहार पर भोर-किरन जागे ही दारू की वासी बू फेंककर उसका घर वाला उसके मन माथे पर अंधेरा उड़ेलता बोला था, "अंटी ढीली कर अपनी। आज दीवाली है। पीने के लिए आज भी ना बोलती है। भगतन छिनाल! तेवार के

मोके पर अपने जने को कोख मे उछालकर, उसके भूख-रोग की दुहाई लेकर, कल दिन भर मांगा-खाया और मुझे पदवे के पैरों पर टरका दिया रात''''ला और ला'''"

"अब और कां से दू? रात को पिया। अब, मूत पी ले जाके! कुंडी का जा'''पीऊं-पीऊं रात दिन पीऊं'''जे मान नी के बेटा भूखा है। सूखा रोग है उसे उसके लिए कुछ'''"

"सीख देत्ती है, मेरे को, मेरे साले की लुगाई तू। चल, कर ढीला अपने ब्लाउज का गूमड़। केवेती है मेरे कने, वो जो छाती पर गूमड़ दिख रिया—पैसे कहां खोसे है—मैं नी जानूं भला।"

"ले देख अपना भैना-महतारी का गूमढ, ले है कुछ इस चाटे-चाम मे!" इतना कहकर उसने अपनी छाती पर ढरके फटे ब्लाउज को ऊपर अरस दिया।

"सूकरी जोबन दिखाती है! जेठ-देवर सब हैं आसपास, सबके सामने नगी होवे तू'' "इतना कहकर वह डगमगाते पैर आगे बढ़ा और उसका झोटा पकड़ कर खेंच लिया।

"छोड़! कसाई छोड़'''!" वह चीखी और दोनों हाथों से उसे इस जोर से धकेला कि वह जमीन पर गूदड़ में लिपटे उसके 'बचवा' पर जा गिरा। बचवा बिलबिला उठा। वह उसे उठाने के लिए लपकी, तभी उसने सभलकर उसे अपनी गोद में उठा लिया।

"माटी-पूत दोनो को एक साथ सफ्फा कर किसी और यार के जाने की सोचे है तू। सब जानू।" उसने गहरी मार की।

"की जाई जानमी ही वैसा करें, मैं नी करती वैसा साग। कुआरी बहना और रांड मां, अपनी का, पेट देखा है, ऊंचा उभरा। मेरे सामने ऊंचा मत बोल हां'''छोड़ मेरे दूध-पूत को।"धारदार मार की उसने और अपने बचवे को छीनने लगी उसकी बाहों से।

"तेरा दूध है कि मेरा तुख्म'''इसी की दुहाई दे खूब भीख कमाई करे तू। अब इसे मैं अपने पास रखूगा। खुद मागूंगा। देखू तो अकेली कित्ता लावे है।" बचवे को उसकी पहुंच से परे कर वह बोला।

'जे बात, तो तू ले जा इसे। तू इसका भी पेट भर ले तो बोलना। देखूगी मैं।" उसने कहा और वह रोते-बिलबिलाते उसके बचवे को लेकर चल पड़ा। डेरे से दूर वह अकेली बैठी रोती रही। जुएं मारती रही। सूरज चढ़ा तो पेट मे घुड़घुड़ी बजने लगी। उसे ध्यान आया इस नसेड़ी मरदुए ने बचवा को चा-पानी भी पिलाया होगा के नी। चार पैसे हाथ चढ़ते ही वह कलाली की गैल लेता है। बचवा बीमार है। कही वह उसे भी दो घूट दारू नी पिला दे। इस सोच से ही उसे पसीना छूट गया। और अब वह 'उनकी' खोज मे निकल गई। गांजे के

अखाड़ों से लेकर ठेके की दूकानों तक, गली-हाट-बाजार सब नाप लिए उसने पर 'वह' कही नही दिखा उसे। घूम-फिरकर तीन-चार चक्कर अपने डेरे के भी लगाए उसने। वहां न वह था न उसका बचवा। अपनी जात-बिरादरी, सगे-संगियों से भी उसने पूछा, पर किसी ने 'बाप-बेटे' को कही देखने की हामी नही भरी।

भूखी बेहाल, सोच में डूबी वह यहां-वहा शहर मे डोलती रही। साझ हो गई पर उसे उसका बचवा नहीं मिला। दीवाली के दियों का उजास फैला और उसका मन अंधेरे मे डूब गया। भूख तो अजानी या पराई नही थी, उसकी रगो-नसो मे रहती आई थी। बचवे के विचार से उसके पैर कांप-काप गए पर रुके नही। अब वह हाथ फैलाए केन्द्र के सामने तने शमियाने के सामने खड़ी थी। तभी कुछ देने-दिलाने की बात कहकर उस बाबू ने उसे सूट-बूट वाले साहब के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। दस रुपये का नोट लहराया और उसकी आंखो में गोल-गप्पे-से बच्चे की झाईं तैर आई। डाक्टर ने बचवे को देखकर कहा था, "कैसे भी हो, दूध का एक डिब्बा ले आ। कुछ दिनों अपना दूध इसे मत पिला। सूखा हो गया इसे।" उसे बचवा की फिर याद आई। और नोट ढूगे से खोंसकर वह बाबू के पीछे हो ली।

जवान बनी उस बूढी चिकनी-चुपडी बाई ने जब उसे अपने ही बराबर आरसी के सामने खडा कर दिया तो वह अचकचाकर पीछे खिसक गई। आरसी में खड़ी जे रूपवंती कौन! वह पहचान नही सकी। जे वो सीलो है—नसेड़ी चन्ना की बू, सूखे बचवा की मतई, दर-दर हाथ पसारती भीखन? नही नही। और वह शीशे में उभरी अपनी ही परछाईं से झेंप गई।

बड़े मदरसे मे पढ़ने वाली जवान-जबर डीकरी-छोकरी ही तो दीखे है, वह इन सुधरे-संवरे, रंगे सजे भेस में। इधर वे लिखी-पढ़ी बाइया भी तो कभी-कभार धरे है ऐसे भेस, वैसी ही वो ही, पहाडी भीलन वाली घघरिया। वैसी ही आंगू-मांग और वैसा ही फैल-फूला उभरा ओढ़ना। चोली-चीर से धुधकती छाती पे जे चादी की सकल हसली, कानों मे बाले, बालो में जंगली फूल, फूलों मे पत्ती और पत्ती में फिर रंग, हाथों मे सीप धुधची के कंगना, पैरों में जे जकड़बन्द झांझर···अगो में बेहिल ठहराव, आंखें काच पर टिकी हुईं और पत्थर बनी हुईं। अंधेरे ने कुछ देर पंख फैलाए ही थे कि वह इस कांच की खोल में बन्द हो गई थी। जब उजाला आया तो वह एक मूरती बनी इसमें खडी थी। रूखे तने-सी अचल। धौली टोपी वाला वह नेता बाबू जब आंख गाड़ उसे जो रहा था, तब उसके भीतर ही भीतर जैसे कहीं कुछ हिल गया था। वह थोड़ी देर और उसके सामने रुकता तो वह चिल्ला उठती कि "मैं—मैं बेजान गुड़िया नही हूं, सील हूं सीलू भीखन। मेरा बचवा भूखा है, मैं भी भूखी हूं। बाकी दस का नोट और दो मुझे। मैं गबरू बच्चे छाप दूध का डिब्बा अपने बचवे के वास्ते लाऊंगी, उसे सूखा रोग है बाबू, मैं भूखी हू।"

"मैं भूखी हूं—मेरा बच्चा भूखा है। मुझे भी दो पूरी-कचौरी, हलवा कुछ।"

वह न जाने कब कांच के घर के बाहर निकल आई थी। तिरखा भी जा चुके थे और शर्मे-वर्मे भी केन्द्र के काउंटर बाबू को सब समझाकर, मैनेजर को भी हिदायत देकर चला गया कि वह उस भिखारिन को दस रुपये देकर कपड़े जेवर सब उतरवा ले और रजिस्टर में जमा कर ले। उसे यू भूख-भूख टेरते देख सब सकते में आ गए। बाबू को चेत हुआ तो देखा कि वह प्लेटो-प्यालों में बची झूठन को चाट-चाट रही है। उसे अपने आंचल-पल्ले का तो जैसे होश ही नहीं। नये लहंगे-लूगड़े को उसने चिकने-चुपड़ा होता देखा तो, "हे, नासकर डाला सबका!" कहता हुआ वह आगे आया।

"अरे तो मिनमिनाए क्यूं बाबू, ला हमारा अपना लूगड़ा-लीतर और संभाल अपना लहंगा आंगिया।"

"हां, हां, चल, उतार सब हमारा, संभलवाना है आगे।"

"कैसे खोलें, पर हमारे लीतर भी तो लाओ जो इन्हें उतार उन्हें फिर धार लू मैं।" बाबू ने सुना और पुकारा, "जंगो, अरे कहां है? इस भूतनी का सरोपा व ला दे, इसको।"

"वो बाबू इधर पिछवाड़े स्टोर में, कह दो इसे वहीं चली जाए और बदल ले।" वह डाटक जवान जंगी कह गया और आंख को दबाकर कुआरे बाबू पर ऐसा कुछ जता गया कि सीलो के पीछे वह भी चला।

दीपो के सिलसिले अब टूटने लगे थे। बिजली के बड़े डडे-लट्टू अब कम हो गए थे और टुइयां जुगनू बल्ब का उजाला माद-सा लगने लगा था।

"देख, सभल-सहजकर हटाइयो, लुगड़ा-लहगा, मसरु-मुसक न जाए कहीं, बड़ा महंगा है। नहीं तो हम हाथ लगा दें।" स्टोर की बड़ी अलमारी के पीछे कपड़े बदलने को खड़ी सीलू से जंगी ने भेद भरी बोली मे कहा और दोगली मुस्कान देकर बाजू मे आन खड़ा हुआ।

"अब जे मुंह झोसा मरदुआ, हमे सिखएगा लूगड़ा-चोली उतारना-पहनना। चल परे हो···सब ला हमारे लीतर, तभी उतारूं न जे कफन तेरा··"

"होय···होय। गजब की भरी, वो तेरा रेशम पाट तो वहीं रह गया। उसी सिंगार-घर मे जहा तेरा जे चोला बदला था। उस सिगारु बाई ने। तुझे भिखारिन से पर्वत सुदरी बनाया था!" जगी की सांस अब उसकी गर्दन-कानो पर तैर रही थी।

"वो सब भूल जा। ले आ मना ले मेरे सग दीवाली···नया लहंगा-लूगडा देंगे तुझे। ऊपर दस का नोट और बस कम दो ही हैं और कोई नहीं।" बिखरे-बौराए बोल बोले जंगी ने और झपटकर उसका आचल भर लिया अपनी मुट्ठी मे, फिर उसे अपनी तरफ खीचते हुए एक झुरझुरी हसी हंस दिया।

"ना ना···छोड़ मुझे अब्बी मैं हाका कर दूंगी, लोग मेली हो जायेंगे। छोड़···" इतना कहकर सीलो ने सब जेवर-जंजीरें उतारकर फेंक दी और छिटककर दूर खड़ी हो गई। उसका आंचल अब भी जंगी के हाथ में था। जंगी आंचल खींचता उसके लपेट-पेच खोल रहा था। वह उससे परे होती-होती दरवाजे की तरफ हुई तो सामने बाबू खड़ा था, आंखों में जिन्दा बोटी की भूख जगाए। इस छोर पर जंगी, उस छोर पर बाबू। सीलू अपनी धोवती छाती से आंचल सटाए दोनों के बीच सहमी खड़ी थी। "सिपाई·· सिपाई·· सिपाई ··आ गए" की टेर हवा में कौंधी। जंगी और बाबू वह तो यह जा और वो जा। सीलू हवा के पैरों पर उड रही थी और वे दोनों पत्थर के पैरों पर रुके खड़े थे। "साली नीच जात··· धोखा खाकर गई।" जगी बुदबुदाया, "मार गोली दगाखोर तिरिया को।" बाबू ने कहा और दोनो चुप हो गए।

दीपावली की टूटती रात के उजाले-अंधेरे में वह उड़ान भरती-सी उजले और नए कपड़ों से अपना आधा तन ढापे अपनी झुग्गी के सामने जा पहुंची। उसके सामने लड़खड़ाते पैरों पर चन्ना खड़ा था—

"तो आ गई पतुरिया। दीवाली मना के···वाह! तेरा निखरा-बिखरा जे रूप, बालों में पट्टी, गालों में गुलाल, आंखों मे कजरा, बालो मे गलरा—पे छमिया तेरा चीर कौन हर ले गया।" चन्ना नशे में भी पते की और सही बात बोल गया।

"चन्ना, मैं सौं लेकर कहूं, पर तू मानेगा नी, जे सब···"

"जे सब भीख में दे दिया दाता ने। गालों पर झाल भी और गले में नखमार भी। पे वे लूगड़ा चीर कौन हर ले गया। वा रे भोली सीलो' खूब मनाई तूने दीवाली। खूब किया उजाला तूने। लाई कुछ अपने बचवे-ललवे के हेत भी— यार···या फिर···"

"लाई हूं, जे देख दस का नोट इसके लिए डिब्बा दूध···"

"दस के नोट के बदले करवा लिया अपना काया-पलट। खोल दी कुत्तों के आगे अपनी छाती···पिला दिया दूध जारो को···"

"तू अभी नसे मे है चन्ना। मुझे अपने बच्चो की सौं, मैं सास रोककर मजूरी करके, काच के घर मे पत्थर बनके···कलाक भर के लिए मरके, जे दस रुपये लाई हूं, अपने बचवे के लिए।"

"अपना चोला उजाल के, लाज-लुटा के, लिखे-पढ़े बाबू लोगों के साथ कलाक भर सो ली तो लगी लिक्चर पिलाने, रात भर जो उनके संग होती तो अपनी खोली की गैल भूल जाती। चन्ने को, अपने बेटे को भूल जाती। पे मैं नी भूलूंगा। तेने चन्ने के भरोसे को लुटा दिया, बेच दिया, मेरे बिसास को नंगा कर दिया··· मेरी नाक कटा दी। मैं तुझे नंगा कर दूगा"··· इतना कहकर वह बिफरे चीते की

तरह सीलू की तरफ झपटा और उसका ब्लाउज चीरकर चिंदिया कर दी। सीलू संभले कि तभी उसके हाथ में उसकी घघरी की लाव आ गई। हाथों से अपनी लाज संभालती कि तभी उस पर टूट पड़ा, फिर विफरकर बोला, "मैं आज अपने हाथों तुझे नगी कर तेरी लाज लुटाऊंगा, अपने माई-बाप के आगे।" इतना कहकर वह उससे गुथ गया।

हड़बड़ी सुनकर पास के लोग खोली के पास आ गए तो देखा सीलू के डील-पर कपड़ा नही और चन्ना उसकी छाती पर बैठा मुक्के तान रहा है। सीलू की मुट्ठी बन्द है। मरद तो सब देखकर वहां से हट गए। बस गगनो बुआ आंखों पर पल्लू धर चिल्लाई, "दे भी दे सीलू जो तेरी मुट्ठी में है। जे नसेड़ी कसाई नी मानने का।" सीलू ने सुना और मुट्ठी खोल दी।

चन्ना नोट झपटकर बोला, "नही बुआ, नहीं मुझे नही लेना इसकी लाज का मोल'''नी पियेगा बचवा इसका दूध नी'''कभी नी।" और दोनों हाथो से नोट के टुकड़े-टुकड़े कर हवा मे उछाल दिया।

बछड़े की जान पर आए संकट को जानकर जैसे गाय कुत्ते को सींग पर झेलती-झपटती है, वैसे सीलू विफरकर उससे परे हो गई और दांत कटकटाते हुए गरजी---

"नसेड़ी, नाड़कटे, मैं तेरा लात-घूसा, जोर-जबर, झेलती रही अब्बी तक, जे समझ के कि अपनी सतफेरी की लाज लुटी जान, मेरा पति परमेश्वर हल्कान परेशान हो रिया'''पर तेन्ने तो मेरे बचवे का नोट फाड़ दिया'' उसके दूध भरे डिब्बे पे ठोकर मार दी'''अब मैं तुझे भी छोड़ूंगी'''तू'''तू मेरे बचने का बेटा!" इतना बोलकर वह विफरकर झपटी और उसकी पकड़ से छूटकर उसे यूं धकेला कि वह चित हो गया। अब वह उसके सीने पर चढ़ बैठी, फिर दोनो हाथों से उसके मुक्के मारने लगी। वह उसके मुक्के मारती जाती'''अपने बाल नोचती जाती थी। उधर उसका बचवा गगनो बुआ की गोद मे मिमिया रहा था।

नासिरा शर्मा

तावूत

नीम के पेड को जैसे ज़िद चढ गई थी, सुबह से बेतहाशा पीली पत्तियां कच्चे आंगन मे गिरा रहा था। जून का महीना था। सूरज सिर पर था। धूप मे गजब की तेज़ी थी। मगर खातून के लिए जैसे धुली सफेद ठंडी चादनी छिटकी हुई थी। पसीने मे सिर से पैर तक सराबोर बडी सहजता से आंगन में झाड़ू लगाने में व्यस्त थी, जैसे गरमी पड़ ही नही रही हो और उसी हल्के मन से नौहे (भक्तिगान : कर्बला के किसी पात्र की गाथा या युद्ध वर्णन) की पक्तियां गुनगुना रही थी—'करबो बला मे हुसैने प्यासे हैं ?'

आगन मे झाड़ू देने के बाद खातून फटे टाट के टुकड़ों पर आड़ा-तिरछा करके उनके छोटे-बड़े सुराखो के मुताबिक उन्हें बिछाने लगी, तभी दरवाज़े की कुडी बज उठी।

"कउन आया है रे ?" कहते हुए खातून ने दरवाजा भड़ाक-से खोल दिया।

"लेव भाई रसूल हिस्सा (प्रसाद) लेकर आए हैं" तेज़ी से चीखती हुई खातून ने दांत निकाल दिए।

"खुदा की मार तुझ पर ! दरवाजा वंद कर ! सामना हो गया कि नही !" खाला बी की फटकार आगन मे गूजी और वह पटरे पर से उठकर दालान के बडे खभे के पीछे खडी हो गई। खातून उसी तरह खड़ी रसूल को ताक रही थी। "हिस्सा तौलवा लेव। हमका अभी रानी मडी बुंदिया पहुंचाए का है ?" रसूल ने हांक लगाई। कंधे पर रखे बड़े-से सेव के टोकरे के कारण उसकी गरदन एक तरफ को झुकी हुई थी। काली गरदन से पसीना किसी बरसाती नाले की तरह बह रहा था। धूप से तपकर काला रंग उन्नावी हो गया था।

"ऐ भाई छुट्टन ! पेट्रोमेक्स को छोड़ो और हिस्सा तौलवा लो, मिया हवा के घोड़े पर सवार होकर आए हैं।" खाला बी ने दूसरी तरफ के दालान मे बैठे हुए अधेड़ आदमी से कहा।

"मालन तावूत की चादर लाई या नही ? कहा तो है निगोड़ी से कि गुलाब और बेले के फूल लगाना, मगर कही अधी-मारी चादनी के फूल न लगा दे।"

खाला बी ने अपने से कहा।

"बीस किलो रोव हैं।" छुट्टन की आवाज उभरी और धड़ाक-से खातून ने दरवाजा बंद किया।

"यह मुआ कत्था जाने कहां से उठा लाये हो अबकी छुट्टन तुम? सारा मुंह कचटा कर रह गया है। दांतों के नीचे अलग आकर किर-किर करता है!" खाला बी ने कुरते की जेब से बटुआ निकालते हुए कहा, फिर कत्था, सौंफ, डली का बुरादा तंबाकू के साथ फांककर बोलीं, "पान भी तो बाबा के मोल है।"

"वही नन्हे के यहां से लाये रहे।" छुट्टन की आवाज उभरी।

"अल्लाह की बंदियो! तुममें से किसी को होश आया कि चूने की हंडिया में पानी डाल दे—कहीं मर न गया हो? गरमी तो जहन्नुम की याद दिला रही है।" खाला बी ने चुनौटी से चूना चाटते हुए कहा।

"डाल दिया रहा ''इनका तो दिमाग खराब हो गया है'''बार-बार बताओ!" खातून ने सूखे पत्तों से भरी कूड़े की टोकरी को कमर पर रखते हुए कहा। आखिरी वाक्य धीमे से कहा था, किसी ने सुना नहीं।

"कूड़ा फेंककर जल्दी आना, सड़क पर खड़ी होकर बातें न बनाने लगना, समझीं!" खाला बी ने झूमती, बाहर जाती खातून से कहा, मगर वह इन सारी बातों से लापरवाह नौहा पढ़ने में लगी हुई थी। बाल बिखरे हुए थे, चेहरे पर पसीने की बूंदें मगर आवाज में थकान का नाम नहीं—"जैनब ने रोकर पुकारा।"

घर के सारे दालानों में दरी और सफेद चादर का फर्श लग गया था। इमामबाड़े वाले दालान में सफेद चांदनी पर सोज (मुहर्रम में पढ़नेवाली नज्म) पढ़नेवालियों के कालीन और सामने किताब रखने के लिए कामदार मखमली तकिया रख दिया गया था। हदीस (पैगंबर साहब की कही हुई बातें) पढ़नेवाली के लिए कुर्सी और उस पर काला गिलाफ डाल दिया गया था। बीच फर्श में पंक्ति से चमचमाते पीतल के उगलदान रख दिये गए थे। सजावट से निपटकर अब सब दूसरे कामों से व्यस्त थे। घर में शोर अब कम हो गया था।

नसीम दुल्हन ने पचास-साठ पान की गिलौरियां बनाकर गीले कपड़े से ढक दी थीं। अब साबुन से उंगलियों पर लगे कत्थे के धब्बों को छुटा रही थीं।

"उई! बारह बज गए! दो बजे से मजलिस का ऐलान कराया है, अभी तुम लोगों का काम ही नहीं खत्म हुआ है? नौहेवालियों के लिए नाश्ते का इंतजाम किया या नहीं? दरोगाइन के लिए जूस मंगवाया'''हदीस के बीच में दो गिलास तो पी लेती है।" खाला बी ने घबराई आवाज में कहा।

"काहे के वास्ते जूस?'''हुसैन प्यासे कर्बला में" खातून ने माथा पीटकर कहा।

"चुप। जबान बहुत चलने लगी है।" मुन्नी की अम्मा की फटकार से उसका

वाक्य अधूरा रह गया।

"सब कुछ तैयार है ख़ाला बी, आप परेशान न हों, वरना ब्लड प्रेशर फिर बढ़ जाएगा।" फ़हमीदा ने शलवार का पायंचा खोंसते हुए कहा। उसके ज़िम्मे नाली की सफ़ाई थी। उसने मुर्गियों को दाना-पानी देकर दरबे में बंद कर दिया था। अब झाड़ू से पानी निकाल रही थी।

दोपहर के ढलते-ढलते सारा काम निपट गया था, अब सब नहा-धोकर तावूत सजा रहे थे। ख़ाला बी सफ़ेद चादर पर लाल रंग के छींटे डाल रही थीं। फ़हमीदा, हुमैरा और फ़रीदा बड़े करीने से आहिस्ता-आहिस्ता फूल की चादर की तह खोल रही थीं। उन्हें डर था, फूल उलझकर झड़ न जायें। सफ़ेद चादर पर तारोंवाला गुलाबी दुपट्टा डालकर उस पर फूलों की चादर डाल दी गई। फिर सफ़ेद चादर और दुपट्टे में इत्र लगाया गया। तावूत सज गया था। मुहम्मद साहब की बेटी जनाब सय्यदा का तावूत था। उसके पाये से कौन मन्नत का धागा सबसे पहले बांधे! इसकी आरज़ू सबके दिल में मचल रही थी।

ख़ाला बी ने लड़कियों को इशारा किया। लाल-पीला धागा उन्हें पकड़ाया। पांच शमा और पांच अगरबत्तियां सुलगाकर तीनों ने मन्नत का धागा बांधा। लोहबान का धुआं बल खा रहा था। तीन कौरे कूंडे उन बहनों ने झिझककर उठाये और फिर आंखें बंद करके जाने क्या उस ख़ुदा से मांगा और चौकी पर औंधे कर दिये। इमामबाड़ा ख़ुशबू से भर गया था। सब बाहर निकल आये।

अब सब अमरूद के पेड़ के नीचे बैठकर खाना खा रहे थे। मुन्नी की अम्मा ने जूठी रकावियां समेटनी शुरू कर दीं। वह बार-बार अल्लाह का शुक्र अदा कर रही थी।

"ज़रा एक पान के पत्ते पर कत्था-चूना लगाकर देना।" ख़ाला बी ने इतना कहा और वहीं दालान में बिछी दरी पर लेट गईं। हफ़्तों की थकन उनके जोड़-जोड़ से पिघलने लगी और रोम-रोम टूटने लगा। जब तक पान आता, वह गहरी नींद में डूब गई थीं।

ख़ातून भी खाना खा चुकी थी और जूठे बरतन लेकर नल के नीचे पहुंच गई थी। जूठी हड्डियों को उसने बड़े आराम से चबाना शुरू कर दिया था।

"ख़ुदा के वास्ते ख़ातुन, यह हरकत मत किया कर।" हुमैरा ने डांटा।

"अल्लाह मारी की नीयत नहीं भरती है।" फ़हमीदा ने हल्के-से कहा।

"पागल शायद ऐसे ही होते हैं।" मुन्नी की अम्मा ने मुंह में बीड़ा रखा।

"का करे भाई···हम ठहरे गरीब मनई।" ख़ातून ने उदासी से सिर हिलाया और उसी तल्लीनता से हड्डी का ऊपरी सिरा दांतों से कुतरने में व्यस्त रही।

"सुन लिया जवाब।" कैसर ने कहा, जो कुछ देर पहले आई थी।

"अल्लाह क़सम, बात बनाने के लिए पागल नहीं है।" सालेहा ने झुंझलाकर

कहा।

"आये गवा हरामी ! ऐके मारे जान आफत मा है ! ले नदीदे, तू भी खा ले।" अंजीर की डाल पर बैठे कौवे की कांव-कांव से तंग आकर खातून ने रोटी का भीगा टुकड़ा उछाला। कौवे ने लपककर झपटा और उड़ गया।

"खातून ! जबान को लगाम दो !" मुन्नी ने गाली सुनकर उसे डांटा।

"गरीब सचमुच बड़ा हरामजादा होता है।" खातून ने इतना कहा और झूम-झूमकर बरतन मलने लगी। उसकी इस बेतुकी बात का किसी ने जवाब नहीं दिया। सड़क के किनारे से उठाई इस गुनाह की पोट को खाला बी ने पाला था। बहुत इलाज कराया, मगर दिमाग सही न हुआ, चौदह साल की लड़की, चार साल का दिमाग। मार-पीट कर खाला बी थक गई थी। प्यार-मनुहार करके ऊब गई थी। मगर खातून में कोई बदलाव नहीं आया। कभी-कभी ऐसी चुभती बात कहती थी कि लोगों को लगने लगता था कि यह पागल नहीं है। बनी हुई है, मगर बनने से फायदा भी क्या था ?

"तौक है, जंजीर है और आबिदे बीमार है !" खातून की आवाज तेज पानी के गिरने के बीच उभर रही थी। फहमीदा ने गरदन उठाकर देखा, पानी की फुहार उसके चेहरे पर पड़ रही थी, जिससे आंखें बंद थीं, पर हाथ और मुंह लगातार हरकत कर रहे थे।

"खाला···बी···खाला···बी !" खातून एकदम से पुकार उठी। खाला बी अपने खर्राटों में मस्त थीं। मुंह खुला हुआ था और लार बहकर तकिये को भिगो रही थी।

"खाला बी···हम वह लाल ईदवाला जोड़ा पहन लें ?" खातून इस बार तेज आवाज में चीखी। एकाएक खाला बी सोते से घबराकर जाग उठीं, "क्या मजलिसवालियां आ गईं ?"

"नहीं, खाला बी, अभी तो सिर्फ तीन बजे हैं, दो ही बजे का ऐलान है, आते-आते चार बजेंगे।" सालेहा ने प्लेट सजाते हुए कहा।

"खाला बी, हम लाल···"

"खुदा की मार तुझ पर ! आज बीबी के ताबूत का दिन है, तुम्हारे लिए बाजे-ताशे, खुशी मनाने का दिन है। चौथी का जोड़ा पहन ले···निगोड़ी पर पैसा पानी की तरह बहाया। मगर कुत्ते की दुम लाख···" खाला बी खिन्न मन से उठीं। बड़बड़ाती हुई बेर के पेड़ के नीचे गईं और बैठकर तांबे के लोटे से मुंह धोने लगीं।

ताबूत इमामबाड़े से निकल आया था। औरतों के रोने की आवाज तेज हो गई थी। ताबूत को पकड़े हुए औरतें आंगन में निकल आईं। जहरा बेगम अपनी पांचों लड़कियों के साथ नौहाख्वानी कर रही थीं। आवाज में सोज था, गुदाज था,

चौदह सौ वर्षों के अंतराल मे बहता दुख था। हक का संघर्ष था। जिसको याद करके, सुन करके सबकी आंखों से गंगा-यमुना बह रही थी। औरतें भीड़ मे घूमती, धक्का देती, ताबूत की फूल की चादर मे मन्नत की गांठें बांध रही थी। सबने अपना-अपना दिल खोलकर रख दिया था, जिनमें उम्मीद थी, फरियाद थी, पुकार थी, इल्तिजा थी।

पगली खातून भी पसीने से सराबोर बडे सधे हाथों से मातम (सीने पर हाथ मारकर दुख व्यक्त करने की मुद्रा) कर रही थी। उसका धर्म क्या था, वास्तव में *खाला बी को भी पता न था। पर गुनाह का कोई धर्म नही होता है, गुनाह-गुनाह* होता है। खातून किसी के गुनाह का फल थी। जैसा वातावरण मिला, वैसी ही उठान हुई। उसके मन मे एक बात बैठ गई थी कि शादी होते ही वह ठीक हो जाएगी। इसलिए उसे शादी का बहुत अरमान था। इस अरमान को व्यक्त करने की एक ही अभिव्यक्त थी, वह थी धर्म पर आस्था।

फटे टाट के फर्श पर मुहल्ले के नग-धड़ंग बच्चों ने प्रसाद खाकर लोटना आरंभ कर दिया था। फर्श पर बैठी चंद औरतें नाश्ता कर रही थी। दूसरे दालानों में दरी पर बैठी औरतें चाय पी रही थी। धीरे-धीरे करके भीड छट चुकी थी। अब सिर्फ वही खास औरतें बची थी, जो खाना खाकर जानेवाली थी। नाश्ते के बाद जहरा बेगम की लडकियो ने खातून को घेर लिया।

"क्यो रे खातून, कब हो रही है तेरी शादी ?" सय्यदा ने पूछा।

"अब हम का जानी ?" खातून शर्म से दोहरी हो गयी।

"क्यो ? धूप में नौहा पढना छोड दिया क्या ?" नौशाबा ने कहा।

"अरे आप मजाक करती हैं।" खातून हंसने लगी।

' मजाक की क्या बात है, अपिया ठीक कह रही है।" शबाना ने कहा।

"रोज बारह बजे धूप में खडे होकर नौहा पढ़ने से दिल की मुराद पूरी होती है···*पढ़ा करो···कल से पढना शुरू कर दो, समझी !" सलमा ने कहा।*

"फिर अभी तक अपिया का ब्याह काहे नही हुआ ? बुढाए रही हैं ! · यह लो बाल सफेद हो गए !" माथे पर दो हत्थड मारकर खातून ने कहा।

हंसती लड़कियां खामोश हो गयी। सय्यदा का चेहरा पीला पड़ गया। खातून जवाब के इन्तजार में उनका मुह ताक रही थी। वह क्या जवाब देती ? वह ठहरी इमाम की औलाद, खरी सय्यद ! मां-बाप लड़के की नौकरी और पढ़ाई से कही ज्यादा उसकी हड्डी और खानदान देखते हैं। बरसो से जोडा मिलाया जा रहा है। कभी लड़का, तो कभी लड़की उम्र मे बड़े निकलते हैं, तो कभी खानदान में खोट, तो कभी···उस आंगन में डोली नही, पांच जनाज़े निकलेंगे। जब तक जियेगी, नौहा पढ़ेगी, जब तक रेकॉर्ड घिसकर टूट न जाए, वह अपना फर्ज निबाहती जाएगी। ऊपर से ठहरी सय्यदानी, न स्कूल मे पढ़ने जाएं, न घर से

कदम निकालें, बाबा की नाक नहीं कट जाएगी ? उनका काम तो सिर्फ गुजरी हस्तियों को बार-बार जिंदा कर आंसू बहाना है। यही आंसू उनकी पवित्रता और जीवन की उपलब्धि है। उनके आज को गुजरे कल ने अपनी परिधि से ऐसा जकड़ रखा है कि वह अपनी जगह से हिल नहीं सकती है। वह टस-से-मस हुई नहीं कि सीने पर बैठा नाग अपना सिर पटकने लगेगा कि यह गुनाह है "यह गुनाह"

पास में बैठी तीनों बहनों फहमीदा, हुमैरा, और फरीदा ने उन सबको कनखियों से देखा, फिर खामोशी से गरदन झुका ली। पहले भी वह बोल नहीं रही थी, उनकी औकात ही क्या थी ? इमामजादियां, ऊपर से नौहा पढ़नेवालियां, उनके रुतबे का कहना ही क्या था ? मगर वाह रे किस्मत, इस मान-मर्यादा के बाद भी घर के मर्तबान में खटाई की तरह पड़ी सूख रही थी।

बड़ी उमस भरी रात थी। हवा का नामोनिशान नहीं था। तीनों बहनें ढिबरी की रोशनी में बैठी बीड़ी बना रही थीं। रात काफी गुजर गयी थी।

हुमैरा ने पहलू बदलकर कहा, "बज्जो, तुम तो थक गयी होगी, सुबह से एक पहलू बैठी हो ?"

"नहीं बन्नो थकन कैसी ?" फहमीदा ने कहा, जो बहनों में सबसे बड़ी थी, "जब एक बंडल बीड़ी का बन जाता है, तो लगता है, जिन्दगी की एक गिरह कम हुई है।" इतना कहकर उसने ठंडी सांस भरी।

"मुझे तो फिर भूख लग गयी है।" सबसे छोटी बहन फरीदा ने कहा। उसकी बात सुनकर फहमीदा के सुते मुख पर मुस्कान दौड़ गयी।

"डलिया में दो रोटी ढकी रखी हैं, ले लो।" मझली बहन हुमैरा ने हंसकर कहा।

"बीबी जरा, जल्दी हाथ चलाती, कल अब्बा को अस्पताल जाना है।" फहमीदा ने हुमैरा को दीवार से टेक लगाकर उंगलियां चटखाते देखकर कहा।

"अम्मा ने तो बड़े आराम से पचास रुपये की बोसी ताबूत पर न्यौछावर कर दी।" हुमैरा ने ठंडी सांस भरकर कहा।

"बज्जो, मन्नत तो पूरी होनी ही थी।" फरीदा बोली।

"हां, वह भी जरूरी था बहना ! मगर उसी पैसे से अब्बा का इलाज होता, तो और भी अच्छा होता। वह कहां से गैरजरूरी हैं ?" फहमीदा ने उसी थकान से कहा।

"तौबा करो अपिया ! क्या कह रही हो तुम ?" फरीदा ने घबराकर रोटी का टुकड़ा पानी से निगलते हुए कहा।

"तौबा की इसमें क्या बात है। खुदा तो देख ही रहा है सब कुछ। उससे क्या छुपा है ?" हुमैरा ने तेज आवाज से कहा।

"हाय अल्लाह !" फरीदा इतना कहकर चुप हो गयी ।

तीनों के बाप कासिम एक साबुन की फैक्टरी में काम करते थे। पैसा इतना मिल जाता था कि आराम से गुजर हो जाती थी, मगर दिल के रोग ने ऐसा जकड़ रखा था कि काम-धाम छूट गया। इलाज हो जाता, तो अब तक कब के भले-चंगे हो जाते, पर दुआ-तावीज, नजर के फुंके-पानी ने जब हालत खराब कर दी, तो मजबूर हो गये और हकीम का इलाज शुरू कर दिया। सारा दिन खून थूकते गुजरता था। बदले में एक पुड़िया दवा की फाकते थे और लाल पनीला शरबत पीते थे। सारे दिन दर्द से तड़पते हुए लडकियों को कोसते रहते थे। हाय-हाय के बीच में हमेशा लड़के की कमी उन्हें खलती थी और खुदा से कहते थे, "तेरी नगरी में यह कैसा अंधेर है। एक बाप की गोद लडके से खाली रखी।"

लड़कियां इस हाय-हाय की ताब न ला सकी और कमाऊ पूत बनने की कोशिश करने लगी। एक ही काम था, जो खामोशी से इज्जत बचा कर किया जा सकता था। वह था, बीड़ी बनाना। बाप की बात सुन-सुनकर मां के दिल पर भी यह लड़कियां तीन बड़े भारी पत्थर बन गयी थी।

मां के नयन-नक्स बड़े तीखे थे, मगर रंग काला था। बाप का रंग खुलता गंदुमी था और नयन-नक्श ऐसे, जैसे मिट्टी का लोंदा। मां का काला चेहरा हजार गोरी औरतों पर भारी पड़ता था। जो देखता, देखता रह जाता था। होंठों का कटाव और आंखों का खिंचाव। अल्लाह का ऐसा करम हुआ कि लड़कियों के नयन-नक्श बाप पर और रंग मा पर पड़ गया। करेला, वह भी नीम चढ़ा।

तीनों बहनें मिट्टी की माधो बनी बैठी थी। ऐसी शक्ल और खाली दामन-वाली को कौन ब्याहने आता, जो मां-बाप के कंधो का बोझ हल्का हो जाता। अपनी बदसूरती का अहसास तीनों को अपनी गरीबी और बदहाली से कही अधिक था। उनके वश की बात होती, तो शायद वह कुछ कोशिश भी करती। इस मकान में छह वर्षो से रहकर रात-दिन की मन्नतें, मुरादों के बावजूद वे तकदीर का लिखा न मिटा सकी थी और न रात-दिन के कोसने से। हाथ चलते थे, आंखें घूमती थी, उम्मीद का कोई सितारा जिंदगी मे नही टिमटिमाता था। बस जिंदगी की गाड़ी किसी तरह खिंच रही थी। उस गाड़ी का पहिया बनकर उनका जोर आगे बढ़ने पर लगा हुआ था। यदि उनसे कोई पूछता कि जिंदगी क्या है, तो वह तीनों जवाब देतीं—हाथ, बीडी और रोटी।

कच्चे आंगन वाले बडे-से मकान के चारों तरफ छोटे-छोटे घरों का जाल बिखरा हुआ था। यूं कह सकते थे कि खाला बी मकान-मालकिन थी और शहद छत्ते की तरह छोटी-छोटी कोठरियो में घुसे-ठुंसे हुए लोग उनके किराएदार थे। खाला बी भरी जवानी में विधवा हुई थी। जब वास्तव में उनके सेहरे की कलियां खिलने का समय था, लाल जोड़ा पहनने के दिन थे, उनकी चूड़ियां टूट चुकी थीं

और उन्होने सफेद कपड़े पहन लिए थे। उनके मियां उनसे लगभग 30 वर्ष बड़े थे। उनका पूरा हरम था। सौतों की फौज-की-फौज उन्हें हराने के लिए उनका इन्तजार कर रही थी और शौहर उन्हें खिलौना समझकर खेलते थे, फिर एक दिन बजाए खिलौने के स्वयं टूट गए।

गिद्ध-चीलों की तरह सौतें उन पर टूट पड़ती थीं। लम्बी-चौड़ी जायदाद में से उनके नाम यह मकान आया था। उसी को लेकर वह खामोश हो गयी थीं। इस घर मे आकर ऐसी राहत की सांस उन्होने ली थी, जैसे लम्बी सफर से लौटी हों। अपने को धर्म के आगोश में डालकर वह संतोष से जीने लगी थीं। धीरे-धीरे करके कच्ची कोठरियां बनवायी और एक-एक करके किराए पर देने लगीं। अब यही हलवाई, नाई, दर्जी, जुलाहे भांति-भांति के लोग उनके बेटे, बहू, पोता, पोती बन गए थे। मायका था कहां? मायके के नाम पर जो मां बची थी, वह भी कुछ दिनों बाद अल्लाह को प्यारी हो गयी। हर तरफ से तनहा खाला बी ने अपनी दुनिया खुद बसायी थी।

किराया ही उनकी आमदनी का सहारा था। थोड़ा-बहुत दुआ-ताबीज करके और पुराने नुस्खों से इलाज करके हाथ आया पैसा। पूरे साल कौड़ी-कौड़ी करके जमा करती। दांतों से पकड़कर खर्च करती थीं। जमा किसके लिए करती, न कोई आगे था न पीछे, ले दे के यह खजाना, जो संदूकची मे बन्द रहता था, मुहर्रम के मास में खर्च हो जाता था। एक धर्म की ज्वाला थी, जो उन्हे जीवित रखे हुए थी, वरना प्रेम से खाली उनका जीवन चटका बरतन था, जिसे धर्म की आस्था ने गोद की तरह चिपका रखा था। उनके व्यक्तित्व के प्रभाव से यही हाल उस पूरे मुहल्ले का हो गया था।

जब से नीम का बूढा पेड़ कटा था, फलों के पेड़ पनप गए थे और आंगन रोशनी से भर गया था। खाला बी दालान में खड़ी यही सोच रही थीं। उनके सामने बेर का पेड था, जो पके बेरो से लद गया था। एकाएक उन्होंने खातून को पुकारकर कहा, "जा, सब बच्चो को बुला ला।"

"का है दादी बीबी?" करते हुए नंग-धड़ंगे बच्चे पहुंच गए।

'छुट्टन, पेड़ पर चढ़कर डाल हिलाना।" खाला बी ने बच्चों की फौज देखकर कहा।

ऊपर से टपाटप बेर गिरने लगे, फैले दामन भरने लगे, मगर कितनों के बदन पर कपड़ा था, जो दामन भरता? छीना-झपटी शुरू हो गयी। बेर हाथ में कम आए, पैरों से कुचले ज्यादा गए। कोई गिरा, कोई चीखा, फिर मार-पीट, नोच-खसोट।

"मैंने ही बुरा किया था, जो इन्हे बुलाया! क्या गदराव मचाया है! खुदा की पनाह! इनकी मांओं को बुलाओ···जन-जनकर मेरी जान को छोड़ दिया

है।" खाला बी ने सिर पर दोहत्थड़ मारते हुए कहा।

आंगन जब तक खाली होता, उससे पहले माओं मे एक महाभारत हुआ, फिर शांति छा गयी। खाला बी को आहत देखकर मुन्नी की मां पास खिसक आई और अहिस्ता से बोली, "खाला बी, एक घर मे दो बेर के पेड़ काहे के वास्ते लगाइन हैं आप? फिर मुए की डाली झुकी है हुमैरा के छप्पर पर। पानी खाद कोई दे, मेवा कोई उड़ावे! कैसा कलयुग आ गया है···मेरी मानो, तो यहां पर कागजी नीबू लगाओ, फल ऐसा कि अचार डालो या शरबत, या चाटो···सब भला-ही-भला।"

खाला बी खामोशी से आलू काट रही थी। उनकी आंखों से मुन्नी की अम्मा को महसूस हुआ कि लोहा गरम है। एक बार और करना उचित होगा।

"सोचना क्या अब, खाला बी उठा के कटाए देव।"

'हूं!" खाला बी ने सामने वाले बेर के पेड़ की ओर ताका। मुन्नी की अम्मा दिल-ही-दिल में खुश हुई। हुमैरा की मां टोकरी-के-टोकरी बेर भर-भरकर सब्जी वाले को देकर बदले में सब्जी लेती थी। तनख्वाह बन्द हो गयी, तो क्या, तीन हथनिएं बीड़ी से कमाई निकाल तो लेती हैं।

खाला बी को मुन्नी की अम्मा की बात जंच गयी। उनके यहां अनार, अम-रूद, अंजीर, आम, करौंदे के पेड़ है। सचमुच नीबू की कमी है। खाला बी इन सारे पेडों का धार्मिक विश्लेषण करती थी। अभी वह सोच में डूबी थी कि तेज आवाज के साथ दरवाजा खुला और जुलैखा बुरका फड़फडाती हुई दाखिल हुई और सलाम करके पलंग के पायताने बैठ गयी।

"नजमा, सलमा के हाथ पीले हो जाते, तो मेरी जिम्मेदारी भी खत्म होती। एक परेशानी हो, तो कहूं। जायदाद के मुकद्दमे मे बाप-बेटे घर में कहां रहते हैं। अन्दर-बाहर का संभालना पड़ता है। ऊपर से उस रहीम के बच्चे ने ठीक घर के सामने दर्जी की दुकान खोल ली है। हमारी मुसीबत आ गयी है। चार मुसटंडों को कटाई-छटाई के लिए लाया है। कपडे की कटाई कम होती है, राह चलती औरतों की नपाई ज्यादा होती है। परदा घर का हटा नही कि मशीन की सुई जैसी आंखें फौरन हमारे आगन मे गडती हैं और काम करती लडकियों पर बखिया करती गुजर जाती हैं। इनकी मौत का कुंडा औंधाने आयी हूं खाला बी। मेरा आना-जाना मुश्किल कर दिया है कम्बख्तो ने।" जुलैखा ने दोनो हाथो को सीने पर लाकर उंगलियां तोड़ी।

"चलो, जाओ बीवी यहां से, यह मुरादों का इमामबाड़ा है। कोसने-काटने की कुर्बानगाह नही।" खाला बी खफा हो गयी थीं। उन्हें मनाना आसान काम नही था। सब धीरे-धीरे करके उठ गए।

"एक पेड़ था, जिसकी डालें फल-फूलकर. बताती थी कि जिंदगी मे रंग है,

बदलाव है, वह भी खाला बी ने कटवा दिया।"

फहमीदा ने ठंडी सांस भरकर कहा।" बेर खाने का मजा ही चला गया। हुमैरा ने उदास होकर कहा।

"चलो, हम लोग लगाते हैं, अफसोस करने से क्या हासिल?" फरीदा ने दोनों बहनों की हिम्मत बढ़ायी।

"कहां लगाओगी? आंगन में पलंग बिछाने भर की जगह तो है नहीं।" फहमीदा ने आटा गूंधते हुए कहा।

"इधर पाखाने वाली दीवार के पास।" फरीदा ने चहककर कहा।

"पागल हुई हो? खाला बी खफा होंगी कि दीवार गिर जाएगी।" हुमैरा ने लोई बनाते हुए कहा।

"चलो ठीक है ''पेड़ कट गया, तो कट जाने दो। आसमान तो है न हमारे ऊपर। उसके बदलते रंग से समझ लूंगी कि कौन-सा मौसम आने वाला है'।' फहमीदा ने रोटी सेंकते हुए कहा।

हुमैरा और फरीदा ने बहन की तरफ देखा और बात समझनी चाही, मगर वहां सिर्फ काली अंधेरी रात थी, जिस पर शोलों का सुर्ख़ नाच साफ नजर आ रहा था।

"जवानी फट रही थी, तो कहीं और मुंह काला करते, एक बेसहारा दीवानी पर क्यों जुल्म ढहाया?" खाला बी का कोसना जारी था। सारे किरायेदार खामोश थे। और आंगन में सिर झुकाए, पल्लुओं से मुंह छुपाए बैठी थी।

"पोर-पोर में कोड़े पड़ें। बदन का एक-एक हिस्सा सड़कर गिरेगा। देखते जाओ, बेजबान पर जुल्म करना हंसी खेल नहीं है।" खाला बी का गुस्सा आंसुओं में बदलने लगा था।

खातून लाख दीवानी सही, मगर थी तो उम्र के नाजुक दौर में। पंद्रहवां पूरा करके सोलहवें में लगी थी। जाने कब मुहल्ले भर की लड़की की तरह मानी जाने वाली खातून को सादुल्ला ने लाल साटन के कपड़ों और फूलों के जेवर का लालच देकर फुसला लिया था। खाला बी को क्या, सबको ही यही यकीन था कि खातून का सब भला ही चाहते हैं, इसलिए वह बेधड़क हर घर, हर दूकान की सैर करती, अपनी बेतुकी बातों से सबका मनोरंजन करती पूरे मुहल्ले में घूमती थी और आज उसी यकीन का दामन तार-तार हो चुका था। खाला बी आहत थी। सारी उम्र जोगन की तरह काट ली थी। बदन की भूख का एहसास, चन्दन सा बदन राख कर लिया था। जाड़े की रातों को रो-रोकर काटा था, मगर मजाल क्या थी कि'''मगर यहां उनके घर की एक बेजबान के साथ'''सादुल्ला के इस बहलावे को ही वह कम्बख्त शादी समझ बैठी थी।

रात को जब खाला बी बिस्तर पर लेटी तो, खातून उनके पांयताने बैठ गयी

और रोज की तरह उनके पैर दबाने लगी। दोनों के बीच खामोशी थी। खाला बी सोच रही थी कि यदि वह कुछ कहें भी, तो क्या कहे? उनके पास सबूत क्या है? खातून दीवानी ठहरी। कौन नही जानता है कि वह···फिर सादुल्ला का क्या भरोसा! यदि वह मुकर जाए तो? अपना गुनाह किसी और पर थोप दें तो जगहंसाई होगी। एक बार फिर खाला बी को अपनी बेबसी का अफसोस हुआ। लगा, यह दुनिया सिर्फ मर्दों की है, केवल मर्दों की। औरत का अपना कुछ नही है। वह तो उसके हाथों की खेती है, जब फसल पकी देखी, काटकर खलिहान भर लिया।

"का बात है खाला बी?" खातून ने उनकी बेचैनी देखकर पूछा, मगर वह जवाब में खामोश रही। खाला बी ने जैसे कुछ सुना ही नही था।

"खाला बी, सादुल्ला कहत रहा कि···" खातून के मुह से निकले अल्फाज अंगारे की तरह दहक उठे और खाला बी ने एक जोर की लात खातून के कूल्हे पर मारी।

"अंधी-मारी, किस यजीद का नाम मेरे सामने ले रही है।" कहकर खाला बी उठ बैठी। खातून पलंग से छटककर नीचे गिरी। चबूतरे का पत्थर सिर पर लगा, तो हाय करके रह गयी। उसकी हालत देखकर अपना गुस्सा दबाते हुए खाला बी ने फहमीदा को आवाज दी।

फहमीदा सारी रात जागती रही। खातून पागल सही, खाला बी का गुस्सा सही, मगर···फिर यह कैसी रौनक है, जो पहले कभी खातून के चेहरे पर नजर नही आयी थी? जिन्दगी क्या सचमुच मोड़ चाहती है? बदलाव ही जिंदगी है, वरना ठहरा पानी तो सड़ जाता है। क्या हमारी जिंदगी सड़ा पानी है? हरकत ही जिंदगी है, मगर हमारी जिंदगी में हरकत की जगह एक सन्नाटा है, जैसे वक्त की चाल ठहर गई हो। उसमें कोई आवाज नही, कोई पुकार नही, बस एक ठह-राव है। मौत भी तो इसी ठहराव का नाम है, तो फिर क्या वह मुर्दा है? सुबह होते-होते उसकी आंखें लगी, तो उसने सपने मे देखा कि खाला बी का आंगन औरतों से भरा है और इमामबाड़े से ताबूत निकल रहा है। ताबूत की चादर खून से तर है और उससे टपकता खून दालान मे बिछी सफेद चादर पर टपक रहा है···खातून अजीर के पेड के नीचे खड़ी है। उसके बदन पर लाल चमकीले कपड़े हैं और मांग मे सफेद अफशां भरी हुई है। होठों पर लाली है और आंखों में···

"बज्जो, उठो!" हुमैरा ने फहमीदा को झिंझोड़ा।

"बज्जो, सात बज गये हैं। अब्बा को अस्पताल जाना है।" फरीदा ने चाय की प्याली उठाते हुए कहा।

"हां···" कहती हुई फहमीदा परेशान-सी उठी। खाला बी की तरफ से कुछ

शोर आता हुआ महसूस हुआ। उसे लगा, शायद सपने का असर है।

खातून लाख मना करने के बावजूद, हजार पहरेदारी के बाद, सादुल्ला के पास निकल गई थी। मुहल्ले भर की शादी-ब्याह कराने वाली खाला बी हाथ मलकर रह गई थी। उनका सारा जीवन-दर्शन धरा-का-धरा रह गया था। उस शहद के छत्ते जैसे मकान के किरायेदारों के बीच एक उदासी फैल गयी थी। बरसों से बैठी लड़कियों के मन में एक उथल-पुथल मच गई थी। कहद, भुखमरी का रोग उन्हें थकाए दे रहा था कि एकाएक खातून ने उन्हें हिला दिया था। उनका व्यक्तित्व पुराने बरगद व पीपल के पेड़ की तरह था। जिनके अन्दर दीमक लगने से खोखलापन आ गया था, लेकिन आंगन की मर्यादा कायम थी कि पेड़ खड़ा है। वैसे ही खानदान की मर्यादा की परिधि को इन लड़कियों ने तोड़ा नहीं था, मगर यह खातून''' ? वह तो सड़क के किनारे पड़ी गुनाह की पोट थी, उससे उम्मीद भी क्या ?

पेड़ खड़े थे। धरती से उनका रिश्ता कायम था, इस खुशी में यह तथ्य गायब हो रहा था कि जो पैदा हुआ है, वह रोटी खाएगा। शरीर की भूख पेट भरने के बाद शुरू होगी। वह एक जरूरत है, मगर समाज उसे इस तरह से कबूल नहीं कर सकता है।

लड़कियां-औरतें सोचती रहीं और खाला बी मजबूर खातून की हरकतों को सहती रहीं। खातून का क्या बनना था, उन्हें पता न था। नीम पागल लड़की को कौन अपनी बहू बनाता ? उनको अपना बचपन याद आ रहा था'''वह खातून की तरह दीवानी तो न थी, फिर एक बूढ़े के हाथों में उनका हाथ क्यों दिया गया था। अपना भोगा दुःख, सौतों के हमले, सब कुछ उन्हें याद आ रहा था। सादुल्ला खातून से लगभग चालीस साल बड़ा था, फिर ?

मुहल्लेवालों के जोर ने खाला बी को मजबूर कर दिया कि वह सादुल्ला की बात मान लें। जैसे-तैसे निकाह पढ़वाकर खाला बी ने इज्जत ढांप ली और खातून के जाने के बाद वह फिर अकेली हो गयी।

फरीदा ने बुरका पलंग पर डाला, दुपट्टे के कोने में बंधे बीड़ी से मिले मजदूरी के रुपये गिनकर हुमैरा को दिये और फिर गरदन के नीचे दुपट्टे में डाले हुए मोगरे के फूल हाथों में लेकर फहमीदा के पास गयी।

"ला बज्जो, तुम्हारी पसंद के मोगरे के फूल'''बब्बी आपा के घर में खिले दिखे, तुम्हारा ख्याल आया, चुपचाप तोड़कर ले आयी'''तो।"

"अच्छा !" सिल पर मसाला पीसती हुई फहमीदा ने कहा और बहन की फैली मुट्ठी में पड़े फूलों को गरदन ऊंची करके सूंघा।

"लाओ, कान में पहना दूं।" फरीदा ने यह कहकर फूल फिर दुपट्टे में डाले और पतली डंडीवाला चुनने लगी।

"नहीं-नही। कोई देखेगा, तो क्या कहेगा ?"

"कहेगा क्या, यही न कि आपको फूल पसंद हैं।"

"जिद् न करो, फूल कटोरे में डाल दो। पानी में पड़े ताजा रहेंगे।"

फहमीदा का मन कानों में फूल पहनने का था, मगर कुवारियां यह शौक नही करती हैं। यह तो सिर्फ सुहागिनों का हिस्सा है।

फहमीदा मसाला पीसकर जब उठी, तो जोर का चक्कर आया। जब तक नाली के पास पहुंचती, एक तेज उबकाई आयी और ढेर-सा खून कच्ची जमीन ने सोख लिया। फहमीदा यह देखकर सन्न रह गयी। अब्बा का दिया तोहफा है ? दोनों बहनें अंदर कोठरी में थी। उसने जल्दी से राख करछे में भरी और खून पर डाल दी।

इस बार खाला बी ने न अमावट, न अचार और न ही वेड़िया डाली। यह सारा शौक खातून के साथ ही चला गया। खातून सादुल्ला के घर गयी, तो ऐसी गयी कि न मुहल्लेवालों ने उसे देखा, न शहरवालो ने। पिछले माह सादुल्ला भी अपना काम-धंधा समाप्त करके मुहल्ला छोड़ गया था। मुन्नी की अम्मा ने नीबू का अचार और करौंदे का मुरब्बा डालने के लिए खाला बी को उकसाया भी, मगर वह टस-से-मस न हुईं। आधा अचार और अमावट-मुरब्बा तो खातून ही चुरा-चुराकर खा जाती थी। अब कौन बैठा है खानेवाला, जिसके लिए वह खटराग करें।

खाला बी का मन अब पहले से अधिक इमामबाड़े को सजाने-संवारने में लगने लगा था। इस उम्र में वह दिन भर खटोला डाले धूप में बैठी करोशिये से कुछ-न-कुछ बुनती रहती थी। अधपके बालों में लाल मेंहदी की चमक आ गयी थी, मगर चेहरा वैसा ही दगदगाता हुआ था। इस समय खटोले के पायताने में हुमैरा की मां बैठी तीनों लड़कियों की शिकायतें कर रही थी कि उनका दिल मजहब की तरफ से हटता जा रहा है।

"कयामत करीब है बी !" खाला बी ने बड़ी गंभीरता से कहा।

"इसी दुआ-तावीज ने हुमैरा के बाप को मौत के मुंह से निकाला है। याद है खाला बी, क्या बदन हो गया था, जैसे कहद का मारा बैल ! गोश्त तो नाम को न था बदन पर, सिर्फ हड्डी-चमड़ी बची थी।"

"तुम्हार सुहाग सलामत रहे। तीनों लड़कियो पर बाप का साया बना रहे। एक के बाद एक डोली रुखसत करो। अच्छे कमासुत दामाद मिलें।" खाला बी ने दुआएं दी।

"हां खाला बी, इसी चौखट का सहारा है।" हुमैरा की मा की आंखें भर आयी थी।

उधर घर में तीनों बहनें बैठी बीड़ी बना रही थी। एकाएक फरीदा बोली,

"बज्जो, अगर अब्बा ठीक हो गए, तो फिर मैं···"

"कैसे बोल बोल रही हो? अब्बा तंदुरस्त हो गए हैं। अगले हफ्ते घर आ जायेंगे।" फहमीदा ने बहन के शर्तिया लहजे से घबराकर कहा।

"यह तो जो मुंह में आता है, बोल देती है।" हुमैरा ने भी झिड़का। इसके बाद खमोशी छा गयी।

फहमीदा के सीने में दर्द रहने लगा था, मगर उसने इस बात का इज़हार किसी के सामने नहीं किया। हां, जब-तब कोई पूछता भी कि आंगन या नाली में राख कैसे पड़ी है, तो उसका जवाब वह यही देती कि शायद, दरवाजा खुला रह गया था। मुर्गियां अंदर आ गयी थी, वह गंदगी फैलाकर चली गई हैं।

लखौरी ईंट की दीवार पर धूप फैल गयी थी। छप्पर पर बैठी मैनाओं ने चोंच से लड़ते-लड़ते अब पंजे लड़ाना शुरू कर दिया था। दरवाजे पर खड़ी भंगन हुमैरा की अम्मा को मुबारकबाद दे रही थी।

कासिम मियां अस्पताल से कल शाम को घर आ गए थे। इस समय बड़े आराम से लेटे पलंग पर बीड़ी पी रहे थे। घर का कारखाना था।

"यह लत फिर मुंह लग गयी?"

"छूटी कब थी?"

"उठो नहा लो। दस बजे के करीब खाला बी के घर जाना है। मन्नत पूरी करनी है।"

"कितनी मन्नतें मान ली थी? क्या मरने का यकीन हो गया था मेरे?"

"अब ऐसी बातें मत निकालो मुंह से, मरें तुम्हारे दुश्मन···उठो बालटी में पानी भरा रखा है।"

"चाय पी लेता तो···"

"दो प्याली चाय पी चुके हो, अब बस।"

"तरस गया अस्पताल में इलायची की चाय के लिए।"

"फहमीदा, अपने अब्बा के लिए चाय बनाना जरा।"

"अभी लायी अम्मी।" फहमीदा ने सीने का दर्द दबाते हुए कहा।

हुमैरा और फरीदा बीड़ी के बंडल लेकर कारखाने गयी हुई थीं। सुबह से फहमीदा की हालत खराब थी, मगर वह अपने को संभाले हुए थी। कहती भी किससे? अम्मा ने सब कुछ जब खुदा पर ही छोड़ा है, तो खुदा तो स्वयं सारा हाल जानता है। फिर बंदे को बीच में लाने से फायदा क्या?

अब्बा को चाय थमाकर जब लौटी, तो सीने में कुछ उमड़ा। आंगन के बीच पहुंचते-पहुंचते वह अपने को रोक न पायी। अम्मा चौंकी, मगर कासिम मियां की पुकार पर वह उनकी तरफ मुड़ गयी।

"यह कुरता तो सी दो···कितना बड़ा खोंचा लगा हुआ है।" उन्होंने कुछ

इस अंदाज से कहा, जैसे वह सात समुंदर पार कर सफर से लौटकर आए हों।

"सोती हूं।" कहकर जब तक वह मुड़ी, फहमीदा नाली में पानी डाल रही थी। उनकी कुछ समझ में नहीं आया। एक शक परछाईं की तरह दिमाग से गुजर गया।

हफ्तों गुजर गए, मगर कासिम साबुन के कारखाने की तरफ नहीं गए। सारे दिन या तो पलंग पर लेटे बीड़ी फूंकते रहते, या फिर नन्हे नवाब के मैदान में जाकर बैठे-बैठे आने-जाते लोगों को देखते रहते।

"कुछ काम-धंधा शुरू कर दो अब।" एक दिन तंग आकर हुमैरा की मां ने मियां से कहा।

"काम-धंधा जब हो, तब न?" कासिम मियां ने लापरवाही से जवाब दिया।

"तुम्हें रखा थोड़ी मिल जाएगा कहीं। ढूंढ़ना पड़ेगा...थोड़ी-सी मेहनत करो। बिना काम के अच्छा नहीं लगता है मर्द।" बीवी ने समझाया।

"अभी बदन में कमजोरी बहुत है। मैं बहुत जल्दी थक जाता हूं, काम क्या कर पाऊंगा?" कासिम मियां पलंग पर लेट गए।

"लड़कियों की तरफ देखो। दिन भर कोल्हू के बैल की तरह जुड़ी रहती हैं। फहमीदा तो सूखकर कांटा हो रही है।" बीवी की इस बात का भी जवाब कासिम ने नहीं दिया, करवट बदलकर आंखें बंदकर ली। अब कितना कहे, सोचकर हुमैरा की अम्मा खामोश बैठ गयी।

फहमीदा की गिरती हालत किसी से छुपी न थी। एक दिन खाला बी ने भी उसे इमामबाड़े में बिठाकर दुआएं फूंकी। काला धागा कलाई में बांधा। उनका कहना था कि फहमीदा रोज झुटपुटे के समय इमामबाड़े की चौखट पर आकर बैठे, मगर फहमीदा जाती ही न थी। इस बात से मां को गुस्सा आता।

खाला बी उससे अकसर कहतीं, "उई! उससे कितनी बार कहा कि आया करे, वरना कैसे ठीक होगी? बिना मांगे तो मां भी बच्चे को दूध नहीं पिलाती है। फिर वह तो अल्लाह रसूल का दरबार है।"

फहमीदा को न कोई उम्मीद थी, न जिंदगी में कोई अरमान रह गया था। हर पल के संघर्ष ने उसे हर खुशी से बेगाना बना दिया था। दवा के नाम पर दुआ फूंकी शक्कर को वह अब फांकती भी न थी, न ही दुआ पढ़ा पानी पीती थी और उसकी यही खामोश जिद् मां की नागवारी की वजह थी कि उसने दीन-दुनिया दोनों खराब कर ली है। फहमीदा इन बातों से बेनियाज हुमैरा और फरीदा को देखकर कुढ़ती थी कि कहीं इन मासूमों को भी यह बीमारी जकड़ न ले।

फहमीदा ने इधर काम की रफ्तार भी तेज कर दी थी। उसे महसूस हो रहा था कि अब वह पिघलते-पिघलते बुझनेवाली है। जाने से पहले वह कुछ ऐसा कर

उधर मालन के पास बैठी फरीदा बार-बार कह रही थी, "चांदनी के फूल मंत लगाना, सिर्फ मोंगरे के फ़ूल गूंथना।" फिर बेचैन होकर कहती, "जल्दी करो मालन, बज्जो इंतजार कर रही होंगी।"

"आखिर तुम्हारी बज्जो को जाना कहां है ? शबरात का महीना और तावूत की चादर···समझ मे नही आ रहा है मेरे कुछ ?" मालन ने एकाएक उकताकर कहा।

"बहुत दूर जाना है बज्जो को मालन, तुम हाथ जल्दी चलाओ। अल्लाह कसम बहुत देर हो रही है।"

मालन बौखलाई-सी सुई में फूल पिरोती रही। वह दिल-ही-दिल मे सोच रही थी—आखिर कौन-सी मुराद बर आई है, जो इतनी महगी चादर की फरमाइश आई है ?

जिस वक्त फरीदा घर पहुंची, तंग दरवाजे से बड़ी मुश्किल से जनाजा बाहर आ रहा था। गहवारे (लकड़ी का लम्बा पालना) को थोड़ा तिरछा करके मर्दो ने बाहर निकाला और घरो के बीच की तग गली मे नाली के ऊपर रख दिया ताकि कंधा देने वाले गहवारे को आराम से कंधे पर उठा सके। उस भीड़ को चीरती हुई फरीदा आगे बढ़ी और बडी बेकरारी से पुकार उठी, "अपिया जल्दी बाहर आओ—मेरी मदद तो करो !"

"कहा थी ? कहां से आ रही हो ? बडी देर से तुम्हें ढूढ़ा जा रहा था ?"

जैसे प्रश्नो को चीरती हुई हुमैरा सवालिया अंदाज से फरीदा की तरफ बढ़ी, जो हाथ मे पकडे पत्तों से लिपटे बड़े-से बंडल को खोल रही थी।

खाला बी के छत्तेनुमा घर में यह पहली मौत थी, इसलिए हर आदमी, चाहे मर्द हो या औरत, इस मौत के हादसे से बुरी तरह आहत हुआ था। दोनो बहनों ने खामोशी से फूलों की चादर खोली और बहन के कफ़न मे लिपटे बदन पर बिछा दी।

"अपिया, बज्जो को फूल बहुत पसन्द थे न ?" फरीदा की मासूम आंखें हुमैरा से कह रही थी।

"हां, बहुत पसन्द थे बज्जो को फूल। बज्जो को तो और जाने क्या-क्या पसंद था फरीदा।" हुमैरा की लाल आंखों ने जैसे जवाब दिया।

"यह क्या ?" खडी भीड़ मे से किसी ने कहा ?

"कफन नजिस हो जाएगा ?" दूसरी आवाज उभरी।

"यह नया दस्तूर कब से ?" भिनभिनाहट सुनाई पड़ी।

खाला बी की खामोशी ने सबको चुप कर दिया। जनाजा कंधे पर रखा गया और बड़े दरवाजे से खाला बी के आंगन में आया, फिर इमामवाड़ा खोला गया और फहमीदा का गहवारा उसके सामने रख दिया गया। खाला बी का दिल जाने

राजी सेठ

यात्रा-मुक्त

"किट्टू···ओ किट्टुआ !" आवाज भीतर से उठकर हवेली के पिछवाडे दौड़ती-थरथराती चली आई थी। रात के दस बजे हैं। अस्पताल से खरीदारी करते हुए घर लौटने में देर हो जाती है। अभी वह पढ़ने बैठने की मंशा को उलट-पलट ही रहा था।

इस नाम से उसके भीतर-बाहर आग लग जाती है। किशन नही तो 'किशना' कह लो, किशनू कह लो, पर इस दरबार में किस बात की मुनवाई है। बापू पर झुंझलाओ तो वही एक उत्तर—

"मालिक हैं, कुछ भी कहे···क्या फर्क पड़ता है।"

क्यों·· फर्क क्यों नही पड़ता। अपने ही नाम को इस तरह तोड़-मरोड़कर हाथ मे दे देने का फर्क क्यों नही पड़ता। हाई स्कूल के सर्टिफिकेट पर लिखा 'कृष्ण चंद्र' भी उसी का नाम है। पढ़कर लगता है कि किसी ने नंगे बदन कपड़े पहना दिये हों। अक्षरों पर हाथ फिरा-फिराकर देखता है···वह तो वैसे-के-वैसे लेटे रहते हैं चुपचाप पर भीतर कुछ पानी की सतह की तरह द्रवित होकर ऊपर चढ़ने लगता है।

"आगे क्या लगायेंगे बापू ?" उसी सपने में डूबते उसने एक दिन बापू से पूछा था।

"आगे क्या का क्या मतलब ?"

"मेरा मतलब है···उपनाम···सरनेम ?···नही समझते ? मतलब जात क्या है हमारी ?"

"कौन ससुर तू राज-दरबार में बैठा है···जात क्या है हमारी !" बापू ने उसकी नकल बनाते हुए कहा, "यहां बैठे जून सुधर गयी तुम्हारी···तू साला दर-दर···"

बापू ही सब मटियामेट कर देते हैं तो दूसरो से क्या शिकायत।

आवाज थी कि सन्नाटे को चीरती फिर से आई थी। एक खास तरह का खुरदरापन···उसमें चीख रहा था। व्यर्थ सोच रहा था कि खाना टाल जाये।

गया लेने पर नींद घर दबाती है। पर अब कुछ नहीं हो सकता था। उस आवाज को टाला नहीं जा सकता था। उसे सुनकर किसी खिलाड़ी की तरह चूने की सफेद रेखा पर से दौड़ पड़ने की तत्परता उसके खून के स्वभाव से मांगी जाती थी।

भीतर गया। काम कुछ भी खास नहीं। तरुण बाबू को अपनी सोने की चादरें एकाएक गंदी लगने लग गई थीं—और वह उन्हें बदलवाना चाहते थे, अभी··· एकदम तुरंत, यह भूलकर कि चादरें हर शनिवार को अपने आप बदल दी जाती हैं, और आज तो मंगलवार ही था।

वह अब नहीं चूकते···किसी एक मौके पर भी नहीं। घात में बैठे रहते हैं कि कैसे उनकी ही उम्र में उन्हें लांघ जाने वाली उसकी ऊंचाई को पीसकर रख दिया जाए। अपने अहं को सेंकने का यह खेल उन्हें पसंद आने लगा है—पुकारना और आदेश लेने को तत्पर खड़ी दासता को अपने सामने खड़ा कर लेना। बड़े मालिक विस्तर से बंधे हैं। यह हक उन्होंने अब अपने को खुद दे लिया है।

वह चुपचाप चादरें बदलता है···तरुण बाबू की उपस्थिति को भूलकर। काम पूरा करके जाने को तत्पर होता है कि एक कठोरता गूंजती है "रुको···बैठो।"

कहां बैठे ? बैठने का सवाल नहीं है—उनके पैरों के पास, गलीचे की बाहरी कोर से थोड़ा हटकर। और कोई जगह वहां नहीं है।

"सुना नहीं···मैंने कहा बैठो···"

स्वर में सीधी खड़ी निर्विकल्प कठोरता। वह पजामा समेटकर बैठ जाता है।

"इस टेबल के नीचे जो अखबारों की गड्डियां है, उनमें से कपिलदेव की बल्लेबाजी के सारे फोटो ढूंढ निकालो···मेरे एलबम के लिए···"

इस तरह का काम ?···पढ़ाई का बोझ···रात का यह पहर। भूखे-प्यासे। उसके भीतर जम्हाइयां अकड़ने लगती हैं पर उसकी देह को अपने ही आदेशों को टाल जाने की आदत है। चित्र ढूंढ निकालता है तो तरुण बाबू को वह अपर्याप्त लगते हैं। 'एक्शन' के साथ 'नेरेशन' भी उन्हें चाहिए। "नेरेशन···क्यों ''नेरेशन नहीं समझते ?···तुम तो बड़े हैड मास्टर हो !"

यह कील कहां ठोंकी गई है, वह जानता है···बिना आंख उठाये भी जानता है। यह घाव है जो तरुण बाबू के मन में सतत रिसता है। यह वैभव और ऐश्वर्य उनका है···स्वामित्व उनके भाग्य का है पर यह उपलब्धियां और सफलताएं क्यों नहीं उनकी हो पातीं। यह किट्टुआ क्यों सीढ़ी-दर-सीढ़ी लगाकर चढ़ता है और वे ?···इस हवेली के उत्तराधिकारी वे···!

फर्श से उठा तो देखा तरुण बाबू ने पैर सामने की टेबल पर रख लिए हैं और मुंह के आगे एक अखबार···जैसे न देखने योग्य वस्तुओं के आगे एक दीवार। खिन्न हो आया।

कोठरी में आया तो पढ़ने बैठने के संकल्प की फूंक निकल चुकी थी और भूख भड़क आई थी। ऐसे मे सकल्प को पेट से बांधकर पढ़ने बैठना? नही, इतनी-सी हिम्मत भी उसे उस समय अपने भीतर से गायब मिली…क्या होगा पढ़कर? …पुस्तकों के रास्ते आगे और आगे की सीढ़ियां चढ़ना और बिना भविष्य के शून्य में झूल जाना…इससे तो अच्छा था, वह इन किताबों को ईंट-पत्थर समझता और अपनी हदों से बाहर फेंक देता। इन किताबों ने ही दूभर कर रखी है जिंदगी …न इधर, न उधर। अच्छा रहता वह भी बापू की तरह

हवेली ने बापू का लड़कपन देखा, जवानी देखी, अब अधेड़ापा भी देख रही थी। गिरजाघर में ब्याही जाने वाली वधू की पोशाक की तरह उनका लड़कपन अपनी मा के पीछे इन्ही फर्शों पर घिसटता-पड़ता खत्म हो गया था। उनका सपना वही तक था। इस आंगन मे अपनी मां के पीछे भागते-दौडते जवान हो जाना, टहल-सेवा के शऊर सीखना, कचहरी से लौटे मालिक के पैरों को जूतों से खाली करना, शौच के लिए लोटा भरना। चाकरी के नित नये तरीके सोचते रहना और पुकारे जाने पर 'जी हुजूर' का ऐसा मिश्रीनुमा रसायन घोलना कि मालिक को भी आंख उठाकर देखना पड़े।

आठवी मे वह प्रथम आया था और तरुण बाबू फेल हुए थे। मालकिन के इधर-उधर रिसते ममत्व की शह पाकर वह उनके पास जाने की फिराक मे ही था कि बापू ने अपनी आंख की कठोर वर्जना से उसे वही…उस दहलीज के पास ही खड़े-खड़े सुन्न कर दिया। मालकिन का गिलौरीदान तख्त पर रखते ही लपक कर आये और उसकी बांह पकड़कर वापिस कोठरी मे ठूस दिया—

"वहां जाने की कोई जरूरत नही है। ऐसा कोई बड़ा तीर नही मार लिया है तूने?…जानता नही तरुण बाबू का रिजल्ट? कैसा लग रहा होगा मालकिन को…"

वह बुझ गया। नया-नया यहां आया था। नही समझ पाता था क्यो बापू का अपना मुख हवेली के दुख के सामने एकाएक इतना छोटा पड़ जाता है।

बापू को ये सब सवाल परेशान नही करते थे। वह—हवेली के बीचोबीच खड़े उनके जिस हिस्से की हवेली को जरूरत न होती, उसे बापू अपने लिए भी फालतू समझने लगते।

यह कितनी अजीब बात थी कि अपनी शादी के बाद भी अपने बीवी-बच्चों को लेकर गांव में रहने का अरमान उनके मन मे नही पनपा था। मां को गांव में ही रख छोड़ा था। हफ्ता-दस दिन में आते…कभी-कभार टिक भी जाने पर सांझ ढले शहर जाने को ऐसे लपकते जैसे अब उन्हें अपने घर लौटने की जल्दी हो।

गाव मे रहती मां कभी-कभी हवेली चलने का हठ करती। बापू की सतत अनुपस्थिति ने उसके बचपन को दरजा दे दिया था। वह कोरी कमीज पहनता…

कामदार दोपल्ली टोपी और मां को लेकर बग के अड्डे चल पड़ता।

बापू उन्हें देखते ही आग-बबूला हो जाते—"चैन नहीं पड़ती उन्हें"'आ जाते हैं खाने'''हियां क्या खाना धरा है। खाकर आयें होंते।"

यह सब सुनना उसे गड़ता, तुरंत कह देना चाहता घर से खाकर चले होंगे की बात, पर पास घूंघट में बैठी मां चुटकी काटकर उसे बरज देती। बाद में बताती कि खाने के बहाने कुछ देर तो बैठेंगे।

बापू बगलें झांकते मालकिन को खबर करते। झेंपे हुए से। एक पैर दहलीज के भीतर, एक बाहर—"वो ज्वो आये हैं, चले आते हैं हियां मरने, हियां क्या खाना धरा है।"

मालकिन खिलखिलाकर हंसती—"अरे, आए हैं तो खिलाओ-पिलाओ''' खातिर करो'''"

पर बापू खीझते-बुदबुदाते रहते। एक काली-सी बटलोई मे नमक और चावल डालकर भात पकाते और खुद गुड़ की डली मुंह मे डालकर पानी पी लेते।

"यहां किस बात की कमी है?" मां खीझती।

"कमी नही तो हम ही लूटकर खा जाएं।" बापू का तर्क होता—हमेशा हवेली के हक मे झुका हुआ।

मां के मरने पर उसने पहली बार बापू को कई दिन तक घर मे देखा था—सांझ का धुंधलका ''आसमान में ठहरी हुई आंधी की पीली घुटन'''कोठे के बाहर दालान मे मां जमीन पर लेटी हुई'''सिर ढका हुआ'''साड़ी का पल्लू आंख के पपोटों से नीचा। वह खूब जोर-जोर से सांस ले रही थी। बापू कुछ दूरी पर दीवार के सहारे बैठे "सिरी राम—सिरी राम" का सीत्कार कर रहे थे।

"तनिक हाथ तो दे लाला।" ताई की वह पैनी-सी खीझ उसे अभी तक याद है।

बापू उठकर आये तो थे पर ऐसा कुछ करने का शऊर शायद उनके हाथो को नही था। टुकुर-टुकुर देखते भर रहे।

मां के आखिरी सांस भरने के बाद ही उनका हाथ मा के माथे पर गया। एक बार उन्होंने मां की कलाई पर अपनी उंगलिया फिराई और फिर चुपके से बांह को नीचे रख दिया।

मां की दाह के बाद वह बापू के आमने-सामने हो गया था। अब तक बीच में एक आड़ थी। उस आड़ मे वह बापू को एक बेगानी जिज्ञासा से देखा करता था। वह आड़ अचानक खींच ली गई। सब कुछ उघड़ गया था एकाएक। इस सामने के लिए वह कतई तैयार नही था और बापू द्वारा किये इस प्रश्न के लिए तो बिल्कुल भी नहीं, कि—

"क्यों वे, अब तू कहां रहेगा?"

"मैं ऽऽ मैं?" ऐसे अछोर आकाश के नीचे खड़ा वह एकाएक रो पड़ा।

बापू शायद पसीज गए, "मैं तो पूछ रहा था कि तू गांव रहेगा या शहर ?"

इस बात का उसके पास क्या उत्तर था। गांव रहेगा तो कहां रहेगा, शहर जाएगा तो कहां जाएगा'''पर बापू के सामने कोई ऐसा संकट नहीं। उनका जीवन एक ऐसा बहाव था जो हवेली की दीवारों को छूते ही खुद एक भंवर बन जाता था। उसके जीवन का अनुवाद भी बापू ने अपनी तरह कर लिया। बर्तन-भांडे, कपड़े-लत्ते, हांड़ियां, मथानी, सूप, छलनी—सब बांट दिए और उसे लेकर हवेली आ लगे। सिर ऐसा झुका हुआ जैसे उनके कुपुत्र के बोझ से हवेली की नींवें लड़खड़ाने लगेंगी।

उसे यहां लाकर तो बापू और भी निश्चिंत हो गए। इतना पास बिठाकर तो बिल्कुल ही भूल गए। क्यों नहीं सोचते कि वह इन चौहद्दियों, दीवारों और दालानों में क्या करे। यहां न संतू था, न जग्गी, न खेत, न कुएं, न मैदान, न बावड़ियां। यहां न पैर छपछपाने की छूट है, न सिंघाड़ों की छीना-झपटी, न रातोंरात ईख की चोरी का आनंद। यहां भीतरी बरौठे से लगी एक कोठरी थी और बापू—जो मालिक के कचहरी से लौटते ही चाहते कि किशना-किशना न रहकर भाप बन जाए। तरुण बाबू उसके समवयस्क थे—लगभग दो साल बड़े। उन्हें देखकर पहले-पहल वह खूब उत्साहित हुआ था पर शीघ्र ही समझ में आ गया था कि यह समवयस्कता दूर से दीखती एक टकटकी भर है'''एक मनाही''' एक पुख्ता बेदर्द दीवार और अब तो अपने परीक्षा परिणामों से उसने उन्हें और भी नाराज कर दिया था।

बस'''एक मालकिन थीं'''तख्त की चकाचक उजली चादर पर कलफदार साड़ी पहने बैठी वह पान की गिलौरियां उलटती-पलटती होतीं। उनकी चूड़ियां छमछम बजतीं और चेहरा दपदप चमकता।

अपनी कोठरी से निकलकर दालान से जुड़े बरौठे की ऊंची दहलीज के पार वह झिझकता खड़ा होता।

"क्यों रे'''वहां क्यों खड़ा है ? आ जा अंदर।" पुचकार लेतीं।

वह बहुत धीरे-धीरे आगे सरकता'''दीवार के सहारे'' वैसे बुलाने को न टाल सकने के कारण।

"क्यों रे, तुझे बोलना नहीं आता ?"

वह सकपका जाता। करधनी के ऊपर के उनके गुदाले मांस पर गड़ी अपनी आंखें हटा लेता। गुलाबी साड़ी की प्रतिच्छाया की आंच में तपा हुआ उनका चेहरा'''वह अवाक् रह जाता।

वहां दिन-प्रतिदिन हड़ियल होती जाती सूखे तन-बदन वाली उसकी मां''' इन्होंने जरूर कभी ध्यान से उसकी मां को नहीं देखा होगा। देखतीं तो जरूर कुछ करतीं।

आखिर उसका गवर्नमेंट स्कूल में दाखिला इन्होंने ही करवाया था। बापू नहीं समझ पाते थे कि अपने नतीजे के दिन वह क्यों उनके आस-पास मंडरा रहा था···क्यों। बापू झिड़ककर उसे कोठरी में ठूंस जरूर गए थे। पर वह वहां बैठा नहीं रह सका। इस तरह नाकारा-निकम्मा सिद्ध हो जाने में उस समय उसे कठिनाई पड़ रही थी···पीले-पीले नतीजे के कार्ड पर इतनी सारी लाल रेखाओं के रहते।

मालकिन बड़ी आलमारी में बने ठाकुरद्वारे के सम्मुख बैठी घी में रुई की बाती भिगोती संध्या की पूजा का जुगाड़ कर रही थी। उनका चेहरा प्रफुल्ल नहीं है, यह देखकर पहले तो वह भयभीत हुआ फिर···

"सुन रे!···" एक उदास आवाज ने उसे टेरा। "यहां आ···ले!" मालकिन की बंद मुट्ठी उसकी मुट्ठी में खुल गई थी, "सुना है, तू पहला पास हुआ है···जा, जलेबी खा ले।"

उसका चेहरा दीप्त हो आया। हठात् उसने बढ़कर मालकिन के चरण छू लिए। मालकिन भर-सी आई, "हां, जा, जा! खुश रह···खूब···।" एक उसांस उसका पीछा करती रही।

बाहर आकर उसने मुट्ठी खोली। उसमें दो रुपये का मुड़ा-तुड़ा नोट था। एक झनझनाहट-सी उसके भीतर दौड़ गयी। यह पुरस्कार उसे मिला है—उसे! बापू के बीच-बचाव के बिना···सीधे मालकिन से···बापू सुनेंगे तो अवाक् रह जायेंगे। उनके आने तक वह जागता बैठा रहेगा। जलेबी खाने भी नहीं जाएगा।

बापू आये तो बेहद घिरे हुए थे। मालिक ने दसवें में फेल होने पर तरुण बाबू की धुनाई की थी। अपने और उसके भविष्य की अभी से दीखती आहटों की वास्तविकता खोलते हुए तुलना की थी—"तुमसे तो अच्छा किशना है, लालटेन लेकर पढ़ता है, लेकिन फर्स्ट आया है।"

"तो उसे ही फिर गोद ले लीजिए?" धृष्ट निगाहों से मालिक को घूरते तरुण बाबू छत पर चढ़ गए। मालिक घायल हुए थे—भीतर-बाहर दोनों। दुख, विषाद, ताप, क्रोध, चिंता" क्या कोई एक बात रही होगी मन में···?

बापू इसी सब को लादे-लादे भीतर आये। अब उसके लिए यह कोई नयी बात नहीं थी। बापू हवेली की आंख से हंसते, हवेली की आंख से रोते हैं, जानता था।

कोठरी में घुसकर कुरता खूंटी पर टांग बापू पड़ गए···गुड़ और पानी लिए बिना। इस अभ्यास का टूटना···?

वह दीवार की टेक लगाकर जमीन पर बैठा था—प्रतीक्षा करता। पर बापू के चेहरे पर वह दूरी···नहीं, अब वह और प्रतीक्षा नहीं कर··· ···

"बापू, देखो?"

"क्या है ?"

"देखो तो पहले···मालकिन ने दिया है फर्स्ट आने का···" एक गद्‌गद् भाव से उसने नोट को बापू की आंखों के सामने लहरा दिया।

बापू झटके से उठ बैठे, "क्या ? मालकिन ने दिया है ?"

"हां ! मालकिन ने···खुद बुलाकर···जलेबी खाने के लिए···"

उनका चेहरा लौट आया—उस साक्षात् सोचा देखता हुआ···उसके सामने बैठे होने को धारण करता हुआ। नही तो अब तक···

बापू ने उसे पास खीच लिया, उसके सिर पर सरकता हुआ उनका हाथ गर्दन के पीछे के भाग से चलकर उसके कंधे पर टिक गया। उसे नया-सा लगा··· बिल्कुल नया। इसकी गंध या पहचान उसके भीतर नही थी कही। वह विचलित हो गया।

बापू ने उसे बांहों में भर लिया, "तू देख रहा है न, तरुण बाबू की आदतों से मालिक को कितना क्लेश है। औलाद आदमी किस दिन के लिए पालता है···"

बापू फिर खो गये ! 'किस दिन' के प्रसंग को छूते ही मालिक के साथ हवेली जा खड़े हुए।

बापू की जकड़ का इस तरह एकाएक शिथिल हो जाना उसे खूब अखरा, पर वह क्षण भर पहले के छाती भर स्पर्श को ही संजोता बैठा रह गया। इस भरे-पूरे क्षण में वह बापू की उस बेध्यानी को भूल गया और उस स्पर्श को तह करके भीतर कही संभालकर रख लिया। नही, वह अपने बापू को ऐसे किसी संताप मे तपने नही देगा। औलाद की उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न लगाने वाला मालिक नही बनने देगा।

इसी खलबलाहट में उसे देर रात नीद नही आई थी। दिन चढ़े तक वह सोता रहा। शायद···और भी सोता रहता यदि बापू उसके चेहरे पर टकटकी लगाये उसे उठा न रहे होते, "स्कूल को देर हो जाएगी बिटवा··"

वैसा दुलार ?···और बापू से ?···उस सुख को वह आंखें मीचे भोगता रहा।

"तेरे लिए दूध बांध दिया है···अब तेरी पढाई बड़ी हो गई है न ?···चल, जल्दी उठ, मुझे जाना है। मालिक उठ गए हैं।"

यह पुल नया था। दो सिरों के बावजूद एक कमान के रिश्ते से साझा। वह तो समझ ही नही पा रहा था कि उसे क्या नया-नया, भला-भला लग रहा था।

पता नही क्यों ऐसा हो गया था।—पर हो गया था। उसके और तरुण बाबू के बीच एक खामोश-सी होड़ छिड़ गई थी। जहां कोई सम्बन्ध नही था, वहा बनने लगा था—आड़ा, तिरछा, काले-कलुष के स्वभाव वाला। हार-जीत का गणित रास्ता काटने लग गया था। कोई तुलना नही थी···हो भी नही सकती

थी। तरुण बाबू अंग्रेजी तर्ज के किसी मॉडल स्कूल में पढ़ते थे, वह सरकारी स्कूल में। उन्हें गाड़ी छोड़ने जाती थी, वह पैदल धूप में तपता जाता था। उन्हें टीचर घर पढ़ाने आते थे, वह लालटेन की रोशनी में—नहीं, कोई ऐसी जगह नहीं थी, जहां वह और तरुण बाबू एक साथ खड़े हों, और तुला में पड़ा न्याय भी उसके हक में हो।

हवेली की बातों को लेकर वह हमेशा बापू की आड़ में खड़े रहना चाहता है। फिर भी अक्सर एक ठंडा क्रूर किस्म का आमोद उसकी शिराओं में बजने लगता है। बापू की पहुंच और पहचान से परे। बापू उसे देख पायें तो निष्प्राण कर दें?···छितरा दें···इसलिए वह भरसक बचता है। पूरे मनोयोग से पढ़ाई में लगा रहता है। जानता है कोई और रास्ता नहीं है तरुण बाबू को पछाड़ने का··· मात देने का। जरूरी है दत्तचित्त होकर, इधर-उधर देखे बिना उपलब्धियों के, पहाड़ पर चढ़ता चला जाए और चोटी पर खड़ा होकर अपने को दूसरों को देखने के लिए छोड़ दे।

दसवीं में उसकी फिर फर्स्ट डिवीजन आई थी। विद्यालय की तरफ से 'सर्वगुण सम्पन्न' विद्यार्थी का चमचमाता हुआ एक कप उसे पुरस्कार में दिया गया। आने वाले दो वर्षों के लिए वजीफा भी मिला। तरुण बाबू के हमेशा की तरह किसी 'अदृश्य यत्न' से नम्बर बढ़ाए गए।

बापू प्रसन्न होने की बजाय डर गए। हकलाने लगे। कप को उसके हाथ से छीनकर उन्होंने जाड़ों की गुदड़ी के नीचे ठूंस दिया।

"क्यों बापू?" वह छिल गया।

"रहने दे···रखा रहने दे, वहीं।"

"क्यों, बापू क्यों?" एक अंधड़ उसके भीतर उद्विग्न हो रहा था।

बापू का चेहरा जैसे घाटी में उतरती धूप की परछाईं····"नहीं, बेटा! यह सब किसी से बर्दाश्त नहीं होने का।" कहकर वह तेजी से हवेली की ओर चल निकले। कोठरी के अंधेरे में वह खड़ा रह गया—आहत।

बापू उसे खाना देने भी नहीं आए! शायद बचते रहे। महरी के हाथ खाना भेज दिया।

उस शाम वह अकेला पीपल के नीचे बैठा बाहर के बड़े कुएं की चर्खी को निशाना बनाकर पत्थर मारता रहा और बन्दरों को मुह चिढ़ाता रहा। मालकिन को भी अपना कप दिखाने की उसकी इच्छा नहीं हुई···वहीं कहीं गूदड़ के ढेर के नीचे पड़ी सिसकती रही।

बापू क्यों नहीं समझते, इन सब बातों से कुछ नहीं होता। एक नफरत उसके भीतर गहरी होती है। अपना ही गला दबाकर दम तोड़ती बापू की खुशी उसके गले पर ऐसी बेरहम खरोंचें छोड़ जाती हैं जो सतत पड़पड़ाया करती हैं। बापू

जिस चीज को ढांपते हैं वह और उघड़ती है। जिसे मिटाना चाहता थे वह और गहरी उतरती जाती है।

आखिर किस बात से डरते हैं बापू ? अपने को मार सकने की पराकाष्ठा में से उगती पुनर्जन्म की सम्भावना से ?···लगता है दासता की दलदल में पुश्तों से बैठे, वह अपनी कोठरी मे उगती उजास से डरते हैं। उतना-सा अपने को मिला हुआ अधिकार भी सह लेने की क्षमता उनके भीतर नही हैं। क्यो वह निचाई के चरम को अपनी पूरी उठान मे पा लेना चाहते हैं ?

नही, ऐसे नही चल सकता···आज रात वह बापू से खुलकर बात करेगा। जो कुछ वह नही देखना चाहते उसे समझाएगा। उनके पंगु हो चुके पैरों मे ताकत भरेगा। बांह पकड़कर इस आंगन के परे ले जाएगा, आत्मा की उस सीलन से परे।

वह पड़ा-पड़ा प्रतीक्षा करता रहा। बापू खासी देर से आए। कमरे में उनके घुसते ही उसने लालटेन की बत्ती उकसा दी, जताने के लिए कि वह अभी जाग रहा है।

बापू ने घूरकर देखा पर कुछ बोले नही, बल्कि कुरता उतारे बिना दीवार के साथ धसककर बैठ गए, पसीना पोंछते।

"क्या हुआ बापू ?"

"कुछ नही ··टायर बदलने में पस्त हो गया। तरुण बाबू···"

"तुम तरुण बाबू के साथ क्या करने गए थे।" बापू की अधबीच ढांपढूंप को उसने उघाड़ा।

"कल दावत है उनके दोस्तों की···पास हुए हैं न ?···कुछ सामान जुटाना था।"

"तुम्हें यह सब अच्छा लगता है, बापू ?"

उसे पूरी आशा थी कि वह "हां" कहेंगे, मालिक के प्रति अपनी सदाशयता की दुहाई देंगे। पर वह चुप रहे···थके-थके आहत।

बापू की इस तरह अचानक अपने आप उसकी पकड़ में आ जाना···"बताओ न बापू !" वह उस सिरे को छोड़ना नही चाहता था।

"अब क्या है···जिनगी कट गई · इस उमर मे अब काहे का रोना···"

"हम कही बाहर चले जायें तो ?"

कुछ देर खोए-खोए-से वह उसे ठोहते रहे····"नही रे···दिल के मरीज हैं मालिक···अब मैं उन्हें छोड़कर कहां जाऊंगा।"

"और भी कोई सोचता है कि वह दिल के मरीज हैं ?"

"तभी तो···तरुण बाबू ही कुछ ढंग के होते तो···"

"तुमने ठेका लिया है उनका ? उन्हें···"

"उन्हे चाकर ही चाहिए तो बहुतेरे मिलेंगे।" यह कथन उसके मन मे तड़-

फड़ाया पर अपने को रोक गया। चोट किसी और पर नहीं बापू के मर्म पर पड़ती'''चाकरी के खोल के नीचे छिपी उनकी विवशता पर।

"मालिक की चाकरी तक तो ठीक है बापू, पर तरुण बाबू ?'''सोचो जरा''' तुम्हारी उम्र का भी उन्हें लिहाज नहीं।"

बापू गुम। चारपाई की पूरी लम्बाई में अपने को तानकर कराहते से। जाने उसे क्यों लगा कि उसके ठहर गए बचपन ने बापू को उस नरक में झोंक रखा है। हवेली अब कोई पहले वाला शीतल प्रवाह नहीं है जिसके किनारे बैठ सब अपने-अपने हिस्से की शीतलता पा लें'''उसकी नींव में अंगारे धधकने लगे हैं, पर बापू हैं कि'''उनका जुड़ाव दीवारों से नहीं, नींवों से है। वह उन्हीं हादसों से डरते हैं जो हवेली की नींवों को डोला सकती हैं और तरुण बाबू हैं कि दोनों हाथों से नींवों में अंगार भर रहे हैं। कुछ नहीं हो सकता था'''बापू को निकालकर ले जाने के सिवा !

कल रात दिल का दौरा-सा पड़ा था मालिक को। कोई उत्तेजना नहीं थी उस समय, प्रकट क्लेश का कोई कारण भी नहीं। पहले अजीर्ण का वहम हुआ था, पर हींग के लेप, चूर्ण और पारपीन की सिकाई के बाद भी कुछ नहीं बना तो डाक्टर ने दिल के दौरे का निदान किया था। बापू लस्त-पस्त थे, टूटे हुए'''"यह और भी चिन्ता की बात है। घुन लग गया है मालिक के मन में।"

तीन महीने आराम का डाक्टरी आदेश। तरुण बाबू को जैसे किसी ने पंख काटकर घर में डाल दिया हो। खाट से लगे पिता'''आगतों का तांता'''कागज-पत्तर'''उन्हें पढ़ाई चौपट करने का बहाना मिल गया। आने-जाने वालों को उन्होंने जल्दी ही जाहिर करना शुरू कर दिया था कि वह इस भाईचारे के कृतज्ञ हैं, परन्तु इसके बिना भी चल सकता है। उन्हें और भी ढेरों काम देखने होते हैं। इस तरह सबके हाथ बंटती शाम उन्होंने समेट ली थी और दोस्तों की महफिल जमाने के लिए इस्तेमाल करना शुरू कर दी थी।

बापू को जैसे किसी ने चारों छोरों से बांध दिया हो, वहीं टिके रहते हर समय मालिक के आगे-पीछे। मालकिन की अनभ्यस्त हड़बड़ी भरी चिन्ता को पूरे दिन धीरज से थामे रहते, पर कोठरी में आते ही उस आच्छादन को अपने पर घिर आने देते। उस चिन्ता की गूंजें फिर सारा दिन दीवारों से टकराया करतीं।

"देह में दुख हो तो आदमी पस्त पड़ा रहता है, पर मालिक ?'''उनकी देह में कोई घाव नहीं है। उनका मन जख्मी है, मन'''समझते हो बिटवा, और ऊपर से तरुण बाबू'' सब आने-जाने वालों को छेंक दिया'''तनिक उनका मन बहलता'''"

वह पहले से ही भन्नाया बैठा था। मंगल ड्राइवर ने उसे बताया था कि कल रात बापू तरुण बाबू को महफिल से अलग ले जाकर, जिरह-मिन्नत, समझाई-

बुझाई में लगे थे कि तरुण बाबू ने उन पर हाथ उठाया था [illegible] सड़ा होता तो…

उसे मालिक के प्रति चिन्ता की इन गुजलकों में कोई रस नहीं… कोई रुचि नही। रुचि है बापू में…बापू की मुक्ति मे जो प्रति क्षण जटिल होती जाती थी। उसने बापू की बात का कोई उत्तर न दिया।

कुछ उत्तर न देने से बापू ने बात आगे न बढ़ाई। सोचते स अपने को खाट के हवाले कर दिया।

वह मन-ही-मन नाराज था, अतः पलटकर देखने की जहमत नही उठाई। लालटेन की रोशनी में सिर झुकाकर पढ़ने का नाटक करता रहा।

'गट-गट'—उन्होंने उठकर सुराही से पानी पलटा। पानी पीकर वह वही पैरों के बल बैठे रहे। उस तरह उनका बेमतलब बैठे रहना उसे जाने कैसा-सा लगा।

"मांग क्यों नहीं लिया पानी?" उलाहना-सा देते हुए उसने खामोशी को छेदा।

वह जाने क्यो दहल गया। कौन किससे नाराज है और क्यों?

"पैर दाब दूं बापू?" अपने होने को उसने महसूस कराना चाहा और उत्तर पाए बिना हथेलियों को पिंडलियों पर टिका दिया।

"नही… न ऽऽ ही…" एक बहुत कमजोर-सी मनाही उधर से उठी फिर निष्प्राण हो रही। पहली बार लगा बापू के खून में बहती शांति और आराम को वह स्पर्श कर पा रहा है—दूर तक। बापू तक पहुंच पा रहा है—सीधे। और बापू भी अपने को हवाले किए हैं—उसके, अपने बेटे के।

तब से उसके भीतर कुछ तय-सा हो गया। बापू की भाग-दौड़ को उसने अपने सिर ले लिया। उनकी तरह सारा-सारा दिन मालिक के कक्ष मे जाकर नही बैठता था, पर असावधान भी नही रहता था। फल, सब्जी, दवा-दारू, डाक्टर—सब काम पहल करके करता था और बापू को उस भाग-दौड़ से बचा लेता था। वैसा खटना…धूप मे भागते फिरना…एक पैर घर, एक बाजार में रखे रहना उसे अखरता। अच्छा लगता, जब बापू उस सुख को भोगते दीखते…रीझ-रीझकर…

उन्हे भी पता नही क्या हुआ था। किसी बनैले पशु ने अपने सींग उनकी पसलियों में गडा दिए थे। उन्हे अब खुद दरारें दीखती थी। मालकिन चिन्तित, तरुण बाबू आगन के बीचोबीच एक लठैत की तरह खडे। एक पल न लगे और लहूलुहान कर दें…रिश्तों और बातो की नजाकत को भूलकर।

अब पैर दौड़ते थे बार-बार—कोठरी की तरफ। लालटेन की रोशनी मे सिर झुकाए अपना भविष्य बांचते छोरे की तरफ। एकाध फल या मिठाई का ठौर

हाथ पर रखो तो घूरेगा''''कब गए थे ?''' 'क्यों गए थे ?''''जानते तो हो तुम्हारी गैरमौजूदगी में यहां भूचाल आ जाता है।' वह कब इन बातों की खबर रखता है'''कैसे रख पाता है ?

रात लेटते हैं तो उसके हाथ पिंडलियों को आ पकड़ते हैं। पहले 'न-नुकुर' करते थे आदत के बधे। यह सब उन्होंने बांटा है, कभी पाया नही'''अब चुप रहते है। पिंडलियों और हाथो के बीच गायब होती जाती पीर की लहरो को महसूसने सो जाते हैं।

बीच रात अंधेरे को घूरती एकटकी जाग उठती है। कितना कुछ पीछे से दौड़ता आता एक गोल-सा बनकर छाती मे गड़ जाता है''क्या किया उन्होने सारी उमिर, जिनगी गला दी। किशन की मां भूखी-प्यासी गई। न उसकी देह देखी न जीव। तीन-तीन बच्चे अधबने गिरे— वह कहां चेते। क्या सोचा करती होगी मरने से पहले ?

दूर पड़ गई बातें फड़फड़ाकर आती हैं और काटती चली जाती हैं—आरी की तरह। अब तक क्या किया—मालिक की देहरी पर सिर झुका तो झुका ही रहा। इसका क्लेश मन में नही है'''सो तो ठीक, पर देहरी और सर के बीच एक काठ का शहतीर भी है, इस पर उनका ध्यान क्यो नही गया'''क्यो नही !

महरी के लड़के को कोठरी के दरवाजे के बीचोबीच देख उसका माथा ठनक गया। वह लम्बी कमीज से अपनी बिना नेकर की टांगें ढापे वहां बेफिक्र-सा बैठा था और बापू छटपटा रहे थे बेतरह।

दोपहर, पानी की भरी बाल्टी हाथ मे लिए कुएं की चौकट पर से पैर फिसल गया था। उनका हल्दी-चूने का लेप ' लोगड़ की सेक'''तेल मालिश''' कुछ काम नही आया। अस्पताल दिखाने आया तो भरती कर लिया गया। जरूरी था। दायी जांघ की हड्डी टूटी थी और बाया घुटना चूर हुआ था। आपरेशन भी करना पड सकता है पर उसका फैसला एक बार का पलस्तर खुलने के बाद होगा, डाक्टर ने कहा था।

एक-दो दिन तो हवेली को बापू का न होना खूब अखरा। अब तक तो वहा के जर-जमीन को भी उनके तलुवो की आदत पड़ गई थी ' पर जल्दी ही यह आसन उसे सौंप दिया गया। बापू न होंगे तो उसे जुतना पड़ेगा, वह जानता था। फिर भी हर समय बापू की तरह घर के आंगन मे हिरते-फिरते रहने का हौसला उसमे नहीं। कोठरी मे बना रहता और बुलाए जाने पर काम मे से खीच लिए जाने का अप्रिय भाव ओढ़ता हुआ हाजिर होता। मालकिन अनदेखा कर देती। पर तरुण बाबू'''अब कोई बचाव नही था। अब किशन उनके ठीक सामने था—अपनी निरीहता मे भी उनकी अयोग्यता को प्रखर से प्रखरतम कर देने वाला दश।

घर से चला तो आच्छन्न था। कपिल देव की बल्लेबाजी के चित्रों के तकाजों के साथ लिथड़ती आती हिंसा की झुलसन। उसे लगा था कि गई रात इतना समय व्यर्थ न जाता तो टेस्ट में और अच्छे नम्बर आते। अस्पताल की ओर पैर रखते ही वह सारा क्षोभ तरोताजा हो आया। बापू और हवेली'' उसके भीतर कहीं कुछ गड़बड़ हो जाता है। वहां लपलपाती हिंसा के लिए दंड दे सकने का एकाधिकार यहां बापू के सामने आकर एकाएक उसके हाथ लग जाता है। पर बापू की इतनी प्रफुल्ल मुद्रा देखकर गुम हो रहा। वह उसे असाधारण उत्साह से भरे लगे। पिछले दो-तीन दिन तो नीम-बेहोशी और हड्डियां बिठाने की पीड़ा में त्रस्त-पस्त हुए रहे।

"सुनो बिट्टवा", उनका उत्साह अपने से बाहर बह रहा था, "यह जो चार नम्बर का मरीज है न, इनका मामला तीन साल से कोर्ट में पड़ा है। मैंने कहा तुम आओगे तो सारा कागज-पत्तर कर दोगे···"

बापू ऐसे कह रहे थे जैसे वह कोई विद्यार्थी न होकर वकील हो और दुनिया में न्याय देने का एकाधिकार उसका हो···

ऐसा गर्व से दपदपाता चेहरा···उसका तनाव छूमंतर हो गया। वह स्टूल पर बैठ गया · बापू की दो अलग-अलग दिशाओं मे घूमती आंखों को देखता। एक आंख उसको देखती थी, दूसरी उसके होने के असर को दूसरों पर।

बहुत-बहुत भला लगा उसे···बापू का उन छोरों से परे चल निकल आना, नहीं तो इन दिनों वह एक उसी सवाल को हाथ मे थामे मिलते थे···

"मालिक कैसे हैं? उनसे मिलकर आये?"

"हां!"

"मालकिन से?"

"उनसे भी···!"

"कुछ कहा?" उनका चेहरा एक टकटकी बन जाता।

"नहीं!" पहले वह झड़प से सच कह देता था पर कितनी जल्दी बापू की आंखें धुआं-धुआं हो जातीं, चेहरा राख सना। बाद में वह खुद उस चेहरे के सामने से डरने लगा। तब तक तो बापू ने भी अपने जिज्ञासु हौसले को अपनी जेब मे रखना सीख लिया था, पर वह नहीं चाहता था कि अभागे मालिक की तरह उसके बापू का मन घायल हो।

अगले दिन वह आते समय अपनी जेब से आधा पाव अंगूर ले आया। बात चलाकर बोला, "आज मालिक तुम्हें पूछ रहे थे।"

बापू खिल आये। उसके हाथ का लिफाफा झपटकर बोले, "मालकिन ने भेजा होगा?"

वह चुप रहा। एक-एक अंगूर बापू ऐसे खाने बैठे जैसे दाने-दाने में अमृतघट

संचित हो।

वह परितृप्ति उसे भीतर कही छील गई। हवेली से आये झोंकों के इतने आश्रित बापू? उस स्थिति को उसने छितरा देना चाहा। तड़पकर बोला, "यह मैं लाया हूं तुम्हारे लिए।" और उस डोर को तोड़ दिया।

अस्पताल में यह जो बिस्तर भर स्वतंत्रता थी और उन दोनो के बीच का नरम-गरम आलोक, उसे वह संचित रखना चाहता था। हथेलियों की आड़ देकर ···चाहे हथेलियां झुलस ही क्यों न जायें।

बापू वहां आराम मे थे। दर्द की घड़ियों के अलावा परितृप्त। रोटी मिलती थी···फुर्सत और गप्प। आस-पास के रोगियों के बीच अपनी उम्र की अधेड़ाई से पायी आधा गज ऊंचाई। शाम तक तो उनके पास बातों की एक पूरी पोटली जमा हो जाया करती थी जिसे वह उसके आते ही दस्तरखान की तरह बिछा देने को आतुर मिलते। अच्छा लगता था उसे।

बापू हवेली से कटकर कितना मुक्त हो गए थे। काली चौकट से फिसलकर कही और पहुच गए थे —मनुष्यों, संबंधों, दुखों-दर्दों के सागर मे अचूक तरीके से लपलपाती जीवन की लालसा के बीचोंबीच। कितना अचभा···कितनी ललक·· नयी चीजों के रूबरू होने का कितना लबालब आनंद—हर समय चाकरी क. टोकरा उठाये रहने वाले बापू को वह कितने नये चेहरों में देख रहा था। साथ वाली खाट पर पडे युवक के पिता द्वारा खिलाने-पिलाने को देख वह भीग-भीग आते। रोज-रोज चर्चा करते। चर्चा उनके कौन-से हिस्से को सेंकती है, जानता नही था क्या?

अस्पताल पहुंचा तो घिरा हुआ था—माथे के दायी ओर छोटा-सा घाव। आंखे तनाव से बोझिल। चाहता तो टाल दे सकता था पर जरूरत नही समझी।

"क्यो रे?" बापू ने जैसे ही खखोला उसने उगल दिया। तरुण बाबू से जो हुआ, वह तो बताया ही, जो नही हुआ वह भी बताया।

"तुम्हे नही मालूम, ऐसे अटेंडेंट बनाकर क्यों ले जाना चाहते थे मुझे? गोल्फ खेलते पीछे-पीछे दौडता आदमी उन्हे पालतू लगता है—उनका कुत्ता!"

"तुमने क्या कहा?"

"कहना क्या था। मैंने कहा, घर मे मालिक पड़े है, अस्पताल मे तुम पड़े हो, मै नही जाऊंगा।"

"फिर?"

"बोले, अस्पताल मे सैकडों लोग पड़े हैं, मर तो नही जाते।" 'तरुण बाबू!' मैंने कडककर कहा। 'छोटे मालिक कह।' वह चिल्लाये और मेरे माथे पर ऐश-ट्रे दे मारी।"

"हूं ऽऽ।" बापू सोच में धंस गए···"मालकिन ने कुछ कहा ?"

"कुछ नहीं । मुझे इशारा करके वहां से चले जाने को कहा ।"

"मैं कहता हूं, तू उसके मुंह क्यों लगता है ?"

"मैं मुंह लगता हूं···?···अभी तक तो नहीं लगता था···पर अब लगूंगा···ऐसी दूंगा बच्चू को···"

"नहीं-नहीं ।" वह भयांत हो आए । "तुम जानते हो मालकिन, मालिक उससे बचते हैं, फिर तेरी क्या बिसात ।"

"जानता हूं । बचते हैं···क्योंकि बच सकते हैं ।"

बापू का चेहरा मलिन हो आया···कातर डरा हुआ···"न, न बिटवा, उनके लिए सारी जिंदगी खपा दी, कभी पलटकर नहीं देखा···अब बुढ़ापे में···।"

"तुमने जिंदगी खपा दी, पर मैं···"

क्षण भर चुप ही रहे···"हां, किशना, तुम···मैं···क्या है, तुम्हारी ही तो बात है···तू जा···कहीं भी निकल जा···मैं तुम्हें नहीं रोकूंगा । तुम्हें कुछ भी नहीं कहूंगा । तू चला जा···मैं सच कहता हूं, कहीं भी चला जा···नौकरी ही करनी है तो कहीं कर लेना···अपनी आंखों से···देख-समझकर···गांव में चला जा, ताऊ के पास···बुरे हैं तो क्या···अपना मारेगा तो छांह में तो फेंकेगा···तू यह सब नहीं सह सकेगा···वह छाती दूसरी थी···तेरी मां का मरना सह गई···तेरा खूंटे से बंधना सह गई···नहीं, नहीं···सोच किशना, सोच ' जा यहीं से निकल जा···"

वह आपे में नहीं थे । एक विक्षिप्त उत्तेजना उनके सिर चढ़कर बोल रही थी ।

"बस···बस करो बापू !" वह घबरा गया, "कहां चला जाऊं···पूंजी रखी है मेरे पास ? ··कैसे चला जाऊं···तुम्हें छोड़कर···तुम तो सारी उम्र मालिक से किनारा नहीं कर सके और मैं तुम्हें छोड़ जाऊं ··अपने बाप को ?···ऐसी हालत में···तुमने इतने नीच, इतना नालायक समझा है मुझे···!" कहकर वह बाहर लपक लिया । उसकी उखड़ी भर्राई आवाज सारी सांझ उनका पीछा करती रही ।

एक आंधी उनके भीतर उफन रही है । इन सब दिनों का सुख-चैन किसी ने मुट्ठी में भींच दिया है । हाथ माथे पर जाता है जैसे वह रुई के फाहे के नीचे लपलपाता घाव किशना के नहीं उनके माथे पर आ चिपका हो । टांग ऊपर स्टैंड से बंधी है···पीठ में करवट न ले सकने की बेबसी···वह उन्हें याद नहीं रहता । यह रुपया भर माथे का घाव सुलगता है···लपटें छोड़ता है···

मन में चैन नहीं । मन हवेली में बिंधा हुआ···किशना···तरुण बाबू···मालकिन···मालिक । एक-एक चेहरा···एक-एक दृश्य साफ दिखता है उन्हें यहां लेटे-लेटे । कौन किससे क्या चाहता है ··कौन किससे कैसा बर्ताव करता है ।

कौन मरता है···कौन सहता है। वे सबके खून का रंग जानते हैं···नस-नस पहचानते हैं। हवेली की दीवारें भी उनसे बोलती हैं। अब वहां से कुछ नही मिलने का···ईंटें ही ईंटें···बार ही बार·· दीवारो का पलस्तर उघड़ रहा है। सब कुछ भरभराकर गिरेगा···अब दबेगा किशना···सिर्फ किशना ··उन्होंने उसे खूंटे से बांध रखा है खुद खाट पर पड़े आराम भोगते हैं। खाते हैं···पीते हैं, बतियाते हैं···वह घर मे बैठा चोटें खाता है। कराहें उठती हैं, मन की दीवारों पर बजती हैं धमाधम।

कुछ भी तो नही पता, वे कब खाट से उठेंगे···उठेंगे तो क्या पहले जैसी भाग-दौड हो पाएगी···न हो सकेगी तो कौन उन्हें ढोयेगा···हवेली मे लपकती आती अंधी आग···किसे जलाएगी···किसे बचायेगी। वह कुछ नही कर पायेंगे ·· खाट पर पडे-पडे किशना के माथे की चोटें देखा करेंगे। तू चला क्यों नही जाता किशना···भाग क्यो नही जाता। तू कहता है, तू मुझे छोड़कर कैसे जा सकता है ···हां, कैसे जा सकता है···

पर · पर···पर मैं तो तुम्हे छोड़कर जा सकता हू ··जा सकता हूं किशना ···सच कहता हूं, मैं जा सकता हूं बेखटके·· संतोष के साथ···शांति के साथ··· कपडा इधर से काटो या उधर से···क्या फरक पड़ता है। दोनों छोर अलग हो जाते हैं। नही, किशना नही—यह मरना नही, मुक्ति है। मैं बीच से निकल गया तो सब कड़ियां अलग हो जायेंगी। एक दरवाजा बद हो जाएगा। एक सिलसिला खत्म हो जाएगा···

अपने को वह उस भूमिका मे सोचने लगते हैं—क्या हो सकता है। यहां बंधे-बंधे···जमादार?···फिनायल?···चाकू?···गले या कलाई की नसें···देखा जाएगा, फिलहाल तो किशना···

एक गद्गद उत्तेजना उनके मन मे लहरा गई। वह कुछ कर पायेंगे। किशना को उसका भविष्य दे पायेंगे। उन्होंने उसके लिए कुछ भी नही किया। न देखा, न भाला, न दुलारा, न सवारा···मालिक की पीठ पीछे उन्हें ढूंढता-ढूंढता अभागा इसी तरह बडा हो गया···देखा जाए तो उनके पास देने को था ही क्या···एक अपना आप और दूसरा पसीने की गंध से लिखा हुआ गुलामी का इतिहास, इन दोनो मे से एक ही चीज है जो वे किशना को दे सकते हैं···कही तू भी तो इसे आत्महत्या नही समझेगा···नही समझेगा न बचवा? इस हत्या का पाप मुझे नही लगने का···नही, नही लगने का मेरे बचवा तुम जान जाओगे···जरूर जान जाओगे। खूब सारा मोह मेरे मन मे है···खूब-खूब, मोह-माया-ममता न होती तो यह सब क्यो···

राहत-सी हुई। जितना सोचते थे, उतनी ही चैन पडती थी। भय, ताप, बेचैनी कुछ भी नही। उतने मजबूर नही हैं जितना अपने आप को लगते थे···कुछ

कर रहे हैं···कुछ तो कर पा रहे हैं ?

मन कोमल है···हलका है···प्रतीक्षा मे है। किशना आया तो माथे की चोट देखकर इरादे फिर से हरे हो गए भीतर।

"आ जा यहां !" उन्होंने उसे प्यासी लालसा से देखा। खाट पर बिठाया। पीठ पर हाथ फेरा, फिर हाथ थामे लेटे रहे।

किशना इन सब स्पर्शों-संवादों से परे था, बोला, "बापू, मालकिन ने बुलाया था कल रात···बहुत देर बातें करती रही···"

वह हैं कि कुछ भी सुन नही रहे हैं···बस देख रहे हैं उसे। जी मे आ रहा है ···बुक्का मारकर रो पड़े···उसे छाती से बाध ले और वैसे बंधे-बंधे अपने मरने की कामना करें। उस विकट इच्छा को लेकर मरें तो फिर उसी में जनमेंगे··· आगे-आगे तक यह हिसाब चलता रहेगा···

"सुना नहीं बापू ?"

"हां, क्या कहती थी मालकिन ?"

वह चकित है। वह पहले वाली हवेली के नाम से चट उठ बैठने की बापू की उतावली···कहां गई ? बापू कहां खोये हैं ? सारे रास्ते वह क्या कुछ सोचता आया था। यह सब बातें कितनी नयी हैं···बापू की आँखों में आंसू ला देने वाली। मालकिन ने कहा था—तरुण बाबू नें गलत किया है···तुम्हें मारा है···वह मूर्ख है, अल्हड़ है···ठीक हो जाएगा···न हो जाएगा तो सब तुम्हारे बापू की तरह किस्मत वाले तो नही होते···तू सयाना है, समझदार है किशना · भूल जा। तुझ पर इस समय सबका भार है। मेरा···मालिक का···तुम्हारा···घर का। कहती थी वह सब जानती हैं·· समझती है। कालेज की फीस मुशी के हाथ जमा दी है···कुछ दिन छुट्टी की अर्जी भी दिलवा दी है। कहती थी···उन्हे मुझ पर भरोसा है···तरुण बाबू से भी ज्यादा भरोसा···

"तुम सुनते क्यों नही बापू ?" वह झल्लाया।

"सुन रहा हूं—सिर्फ तुम्हे ही सुन रहा हूं।"

"मालकिन ने कहा, उन्हें मुझ पर बहुत भरोसा है···तरुण बाबू से भी ज्यादा ···तुम्हारे बाद मुझ पर···सिर्फ मुझ पर···"

"तुम क्या सोचते हो ?"

"सोचूंगा क्या···भरोसा है तो ठीक है। मैं कौन उस भरोसे को तोड देने वाला हूं। पर मैं सच कहता हूं, बापू, मैं इस ममता-वमता के चक्कर मे नही आने वाला। वह मुझे बांध रही हैं तुम्हारी तरह। मैं नही बंधनेवाला। तुम्हारे लिए मैं यहां बैठा हूं···सिर्फ तुम्हारे लिए···तुम जब तक चंगे नहीं हो जाओगे, तब तक बैठा रहूंगा। जो कहोगे, करूंगा, जैसे रखेंगे रहूंगा, पर यह जान लो, मैं तुम्हें

उस जालिम के हाथ नही छोडने का···तुम्हें साथ लेकर जाऊंगा···तुमने अब तक मुझे बांधकर रखा है, मैं अब तुम्हें बाधकर रखूगा···छोडूगा नही···चलोगे न बापू ?···तुमने आज तक कभी मेरी बात नही मानी···कभी मेरा मन नही रखा ···इस बार···एक बार···"

उन्होंने किशना का हाथ छाती पर रख रखा था। होठ फड़फड़ा रहे थे। आखें बद थी और कोरों से पानी चलता चला आ रहा था—छलाछल।

छप्पन तोले का करधन

रात घर में अंधेरा बहुत होता था। दूसरे घरों से कही बहुत ज्यादा और गाढ़ा। दीवारें पूरी तरह उसमें डूब जाती। हवा बहुत भारी और घनत्व वाली हो जाती, जिसमें कई तरह की गन्ध घुली होती। कई बार मुझे लगता, उसमें केवड़े की गन्ध है, जबकि आसपास कही भी, पूरे गांव मे, केवड़ा नही था। कभी उसमे हमारे गांव के बाहर के मछलियों से भरे तालाव के पानी की गन्ध होती, मछलियों के पसीने से हमारे फेफड़े भर जाते, सासें भारी हो जातीं और हम हर जगह नमी महसूस करते।

और, ऐसा भी कभी-कभी होता कि हवा मे किसी सड़ती हुई चीज की बू एक बारीक और महीन पर्त की तरह सारे घर में व्याप जाती। इस बू के फैलते ही यहां से वहां तक एक अदृश्य डर की परछाईं भी पसर जाती। अम्मां कहती—"लगता है कही कोई चूहा मर गया है।" उनकी आवाज मे अनिश्चय और भय एक साथ होते। फिर वे धीरे से अपने आपको आश्वस्त करती हुई कहती—"मुन्ना, जाकर अंधियारी कोठरी में देखना तो, दादी क्या कर रही हैं।"

मैं जान जाता कि अम्मा के भीतर उस सड़ती हुई बू के साथ छाया हुआ डर बैठ गया है और उन्हें दादी के बारे में आशंका हो रही है। हम सब दादी को अक्सर भूल जाते थे और कभी-कभी तो महीनों उन्हें नहीं देखते थे, न वे हमारी आंखों के सामने कही होती, न हमारी स्मृति में उनका कोई अस्तित्व रहता।

जिस कोठरी में दादी शीशम की एक पुरानी खाट पर सोती रहती थी, उस कोठरी का नाम 'अंधियारी कोठरी' रख दिया गया था। वह एक बहुत छोटा, सँकरा और जमीन मे धँसा हुआ अंधेरा कमरा था, जिसमें एक भी खिड़की नही थी। सिर्फ एक छोटा-सा दरवाजा था जिसकी चौखट इतनी नीची थी कि लगभग बैठकर उस दरवाजे से कमरे में उतरना पड़ता था। कमरे का फ़र्श जमीन की सतह से कम से कम डेढ़ बीता नीचे था, वहां हमेशा अंधेरा होता था, दिन मे भी। दादी कई दिनों बाद या कभी-कभी कई महीनों बाद उस कमरे से बाहर निकलती थी। वे शायद कमरे में ही किसी कोने मे पेशाब करती थी क्योंकि

अंधियारी कोठरी की बन्द गाढी हवा में अमोनिया की तीखी गन्ध मौजूद होती। दादी के शरीर से भी ऐसी ही गन्ध आती थी।

मुझे पूरा यकीन था कि दादी कमरे के अंधेरे में भी सारी चीजें साफ-साफ देख लेती हैं। एक-दो बार जब अम्मा ने सडती हुई बू से डरकर मुझे दादी को देखने भेजा था और जब मैंने अंधियारी कोठरी मे अन्दर झांककर देखा तो वहां अंधेरे मे, जिधर दादी की खाट थी, उधर दो जलती हुई कंजी आंखें दिखी थीं, अंधेरे मे बिल्ली की आंखें भी इसी तरह जलती हैं। मैं जब पुकारता—"दादी, ओ दादी!" तो घर्राती हुई 'हूं' की आवाज उन्ही आंखों मे से आती। मैं फौरन अंधेरे मे दौडता हुआ लौटता और जोर से कहता "अम्मा, दादी तो जिंदा हैं," तो अम्मा जोरों से डाटती, अगर मैं यह कहता कि "अम्मा, दादी तो नही सड रही, यह बदबू किसी और मरी हुई चीज की है।" शायद तब भी अम्मा डांटती। इसलिए पिछले कुछ दिनो से, जब भी घर में रात वाली बू फैलती और अम्मा डरकर मुझे अधियारी कोठरी में भेजती, मैं झांककर दौडता हुआ आता और गाता हुआ बताता—"दादी बोली, हूं!"

लेकिन रात मे बिल्ली से मुझे बहुत डर लगता था। खासतौर से उस काली बिल्ली से जो सिर्फ रात मे ही आती, छप्पर से उतरती, पूरे घर मे घूमती और कभी-कभी हमारी खाट के नीचे बैठ जाती। उसकी आंखें भी कजी और जलती आंखें थी। उनके भीतर एक-से मद्धिम मैली-पीली रोशनी निकलती रहती थी। जितना ही गाढा अंधेरा होता, उतनी ही साफ वे चमकती आंखें होती। बिल्ली रात में विलाप भी करती और तब मुझे महसूस होने लगता कि वह बिल्ली और कोई नही, दादी ही है। शायद यही रूप धरकर वह सारे घर की टोह लेती थी। हमारे गांव की औरतें ऐसे कई किस्से सुनाती, जिनमे होता कि कुछ औरतें जादू-टोना सिद्ध करके किसी भी चीज में अपने आपको बदल लेती हैं। ऐसी जादुई औरतों को टोनही कहा जाता और बिल्ली उनका सबसे पसन्द रूप होती थी। क्योंकि बिल्ली अंधेरे मे भी देख सकती थी।

लेकिन उन दिनो दादी ही नहीं, हर औरत मेरे लिए आश्चर्यजनक होती। मैं लगातार शक करता। इस फिराक मे रहता कि जब यह औरत किसी और चीज मे बदल रही हो, तब मैं उस घटना को देख लूं, लेकिन ऐसा कभी नही हो पाया। दादी भी कब बिल्ली में बदलती, मैं जान न पाता।

चाची, जिनके बारे में कहा जाता था कि उनके दिल की जगह पर लकड़ी का चौकोर टुकडा लगा है, जिसे उन्होंने चाचा के भाग जाने और अपने बच्चे न होने पर लगवा रखा है, बहुत क्रूर थी। वे गालियां भी दे लेती थीं। उन्होंने एक बार बतलाया था कि कई साल पहले, जब दादी जवान थी और बहुत सुन्दर थी, उनका मेल-जोल गांव की नाइन के साथ हो गया था। नाइन टोना जानती थी

और उससे थोड़ा-बहुत दादी ने भी सीख लिया था। लेकिन किसी-किसी पर टोना उलट भी जाता है। दादी के साथ यही हुआ था, उनकी सुन्दर देह, धूप में निकलते ही जिस पर फफोले पड़ जाते थे और जिससे गर्मियो की रात मे बेले की गन्ध फूटती थी—वह शरीर टोना उलट जाने से ताँबई और फिर कत्थई हो गया था। उनके एक के बाद एक तेरह बच्चे हुए थे जिनमें मे सिर्फ पिताजी, जसीडीह वाली बुआ और चाचा जिंदा बचे थे। चाची बतलाती थी कि दादी का अधूरा टोना ही उनके बच्चों को खा जाता था। यह दादी के टोने का ही असर था, पिताजी और चाचा कभी घर मे नही टिक पाते थे।

हमारा घर एक कमजोर, बीमार और धीरे-धीरे खत्म होता हुआ घर था। छप्पर की हर लकडी मे, हर मयार, बीम और बडेरी मे घुन के कीड़े लगे थे जो दिन भर सफेद बुरादा नीचे गिराते रहते थे। दिन भर मे हर चीज पर, हर जगह बुरादा जम जाता। शाम को अम्मा झाड़ू लगाती तो आँगन के कोने मे बुरादे, गर्द और ईंट के चूरे का ढेर इकट्ठा हो जाता।

अम्मा इस बात को जानती थी कि घर की दीवारें भीतर-भीतर खोखली हो चुकी हैं और वहां पर एक दूसरा ही जीवन और संसार चल रहा है। यह संसार चूहों, कई रंगो के विचित्र कीड़ो और ऐसे अदृश्य प्राणियों का संसार था, जिन्हें हम कभी नही देख पाते थे। वहां का अपना अलग ही नियम रहा होगा। हमारा बाहर का संसार, उस दूसरे संसार के लिए खाद और हवा की तरह था। हम सब घर के खत्म होने के बारे में जानते थे। यह कभी भी अचानक चुक सकता था। रात में, जब हर जगह बिल्कुल सन्नाटा होता और मछलियों के पसीने की बीसर गन्ध से भरी भारी हवा में घर डूब जाता, तो दीवार के भीतर के संसार की कुछ विचित्र और बारीक आवाज सुनाई देने लगती। लगता वहां किसी और ही अपरिचित और अज्ञात भाषा मे कोई धीरे-धीरे फुसफुसाकर बात कर रहा है। ये बातें हमारे अपने संसार की नियति और मृत्यु के बारे में होती। कई चीजो के टूटने और बनाए जाने की खटपट सुनाई देती। वहा कुछ नया रचा और गढ़ा जा रहा था। कभी लगता कि घर की सारी दीवारो के खोखले में, यहां से लेकर वहां तक, एक बहुत बडा अजगर सोया हुआ है जिसकी तपती हुई, भाप से भरी सांस हमारी सांसों और सपनों तक पहुंच रही है।

मैं बिल्ली, दादी और टोने से ही नही, घर की दीवारों से भी डरता था। मुझे विश्वास था कि अगर कान लगाकर मैं दीवार के साथ खड़ा हो जाऊँ तो उस दूसरे संसार का बहुत सारा भेद मेरे सामने खुल जाएगा। लेकिन ऐसा सोचते ही मेरा दिल जोरों से धड़कने लगता। मैं उस विचित्र, अज्ञात और अदृश्य भाषा को सुन सकने का साहस ही अपने भीतर पैदा न कर पाता, जो दूसरे संसार की भाषा थी। मुझे लगता कि अगर उस भाषा का कोई भी शब्द मैंने सुन लिया

और अगर मैं उसका अर्थ समझ गया तो मै जिंदा बिल्कुल नही बचूंगा।

लेकिन दादी के बारे मे मेरा अनुमान था कि वे न सिर्फ उस भाषा को जानती है, बल्कि उस ससार की बहुत-सी घटनाएं उन्ही के इशारे पर हो रही हैं। हमारे घर को विनाश की ओर ले जाने वाली हर विपदा और दुर्घटना के अदृश्य धागों का हर छोर उनकी उगलियों में बंधा हैं। अपनी अधियारी कोठरी में महीनों तक दिन-रात आखिर वे क्या करती रहती हैं। दादी हमारे घर की शत्रु थी। यह उन्हे भी पता था, हमे तो खैर था ही। वे यह भी जानती थी कि रागे (मेरे पिता) के अलावा उनकी बात कोई और नही समझ पाता था। वे अस्सी साल की हो चुकी थी और अपने साथ-साथ हमारे घर को भी खत्म कर डालने के किसी खेल या जादू मे सलग्न थी। उस जादू के असर से हमारा घर भी अस्सी साल का हो चुका था और हम सब महसूस करते कि हमारे फेफड़े और हड्डियां अस्सी साल पुरानी हैं। हम नष्ट होने से बचना चाहते थे।

दादी दिन भर में सिर्फ एक बार खाना खाती थी। जस्ते का एक बहुत पुराना, तुचका-पिचका भगौना था। उसी मे दाल-भात, चटनी,सूखी मिर्च डाल दी जाती और अम्मा उसे अधियारी कोठरी की ड्योढी पर रख आती थी। कई-कई बार तो कई दिनो तक हर रोज भगौना ज्यो का त्यों भरा हुआ लौट आता, फिर उस खाने को कोई नही खाता था। कई बार लोग दादी के बारे में बिल्कुल भूल जाते। उनकी कही चर्चा न होती। ऐसा महीनो होता। फिर किसी दिन हम देखते कि आगन के कोने मे, जहा अम्मा घर भर के कूडे का ढेर इकट्ठा करती थी, दादी उसी ढेर के ऊपर सफेद मैली धोती मे, अपनी हथेलियो मे अपना माथा थामे बैठी हुई है। चाची उन्हे देखने ही कहती—"निकली है आज बुढिया फिर से। घर मे जरूर कोई न कोई बीमार पड़ेगा।"

दादी के बाहर निकलते ही पूरे घर मे एक अजीब-सी तेजी और हलचल पैदा हो जाती। चाची लगातार बड़बडाती। बुआ दादी की बगल से धम-धम पैर पटकती हुई निकलती। अम्मा सारे घर मे झाड़ू लगाने लगती और पुराने चिथडे, टूटी-फूटी चीजे बाहर आगन मे फेंकने लगती। हर कोई दादी को न देखने का अभिनय करता। लेकिन मैं अच्छी तरह से जानता था कि पूरा घर दादी के बाहर निकलने के कारण ही पानी भरे कटोरे की तरह भीतर से हिल उठा है। दादी के कारण ही हर कोई व्यस्त बन गया है। बुआ, चाची और अम्मा की आवाजें तेज हो उठी है। मैं जानता था कि यह सब कुछ गति नही है, बल्कि दादी के प्रति सबकी शत्रुता और घृणा का ही बदला रूप है। दादी के बाहर निकलते ही पूरा घर किसी नाव की तरह डगमगाने लगता और दादी के खिलाफ किसी सेना की तरह सगठित हो उठता।

दादी उसी कूड़े के ढेर पर बोरी बिछाकर बैठी रहती। कभी-कभी कोई थैली

मिलती हुई दिखती। एक बार मैंने देखा था कि मुझे अपनी ओर ताकते हुए पाकर दादी के चेहरे की सारी झुर्रियां अचानक सिमटकर एक बहुत ही लाचार हँसी में बदल गई थी। उन्होंने इशारे से मुझे बुलाया था। यह बाहर के ससार के प्रति दादी की पहली और अकेली प्रतिक्रिया थी। शायद वे सुई मे धागा नही डाल पा रही थी, इसलिए। लेकिन मैं उनके पास नही गया क्योंकि मुझे डर था कि दादी कही मेरे शरीर मे चुपके से अपना टोना वाला बाल न चिपका दें। चाची ने एक बार बतलाया था कि टोने वाली औरतें कभी-कभी बच्चों के शरीर पर अपना एक बाल चिपका देती हैं। फिर बाद में उस बाल को टोने से वापस बुलाकर जब उसे दूध भरे कटोरे में डालती हैं तो पूरा दूध खून हो जाता है। यह सारा खून उसी बच्चे का होता है, जिसे टोने वाला बाल सोखकर अपने साथ ले आता है। मैं इसलिए डरा। कही मेरे साथ भी ऐसा हुआ तो मेरा शरीर कागज जैसा सफेद हो जाएगा।

दादी किसी बूढे गिद्ध की तरह दिखाई देतीं, जिसके सिर और गर्दन के सारे रोएं झड़ जाते हैं और एक पतली, बीमार, झुर्रियो भरी गर्दन और नगी खोपड़ी वहां बचती है। इस खोपड़ी के भीतर का दिमाग अपने अतिम समय की सारी आवाजों को धीरे-धीरे सुनता रहता है। मुझे दादी पर दया भी आती लेकिन वे हमारी शत्रु थी, क्योंकि उनके पास एक छप्पन तोले का सोने का करधन था जिसे उन्होंने घर मे कही, फर्श में, दीवार मे या पिछवाडे के कुएँ के पास या फिर आस-पास के किसी पेड़ के नीचे गाडकर छुपा दिया था।

रात में जब घर का सारा काम निबट जाता तो लालटेन के पास चाची, बुआ और अम्मा बैठ जाती। घर में वही अकेली लालटेन थी। अम्मा सबके खा चुकने के बाद, बरतन वगैरह धोने के काम से निबटकर खाती थी। अपना खाना लेकर वह लालटेन के पास बैठ जाती। रोटी के हर कौर को वह देर तक देखतीं फिर उसमे से हर बार कोई न कोई चीज खोजकर बाहर गिराती और देर तक उसे धीरे-धीरे चबाती रहती। उनका बोलना इस बीच जारी रहता। बुआ की शादी उड़ीसा के पास जसीडीह में हुई थी और एक साल में ही फूफा की मौत के बाद वे वापस हमारे घर लौट आई थी। तब से, दस साल से, वे इसी घर में थी। वे हर बात को आश्चर्य के साथ बोलती थी इसीलिए उनकी आंखें हमेशा फटी हुई रहती। उन्हें देखकर लगता कि सारा संसार उनके लिए आश्चर्यजनक है, हर चीज गोपनीय है।

चाची का कद बहुत छोटा और शरीर बहुत दुबला था। उनकी उम्र पचास के आसपास थी और अभी तक उनकी कोख खाली थी। उन्होंने अपने दिल की जगह पर लकडी का चौकोर टुकड़ा लगवा रखा था, इसलिए वे क्रूर थीं। उन्होंने एक बार मेरी बांह पर गर्म करछल दाग दी थी, जिस पर अम्मा के साथ

उनकी खूब लडाई हुई थी। शायद उसी दिन अम्मा ने लकड़ी के चौकोर टुकड़े वाली बात मुझे बतलाई थी।

लालटेन की मटैली-धुधली रोशनी पूरे घर के अंधेरे को देखते हुए बहुत कम होती थी। रात मे घर की बहुत सारी चीजें भारी हवा, रहस्यपूर्ण गंधो और विचित्र ध्वनियों मे डूब जाती। दीवारों के खोखल का संसार जीवित होता और वहां की अदृश्य हलचलों की आहट हम तक पहुंचती। हम सब लालटेन के पास सिमटे बैठे रहते। वे बातें जो अम्मा, बुआ और चाची के बीच होती, अन्तहीन थी और किसी बहुत बड़ी कहानी के संवाद की तरह लगती। मैं चुपचाप उन्हे सुनता रहता और सोचता कि बड़ा होने पर मैं इस घर पर जरूर कहानी लिखूगा।

अम्मा के मुह मे कौर भरा होता, चेहरा लालटेन की धुधली रोशनी मे बहुत पुराना जर्जर और बीमार लगता और वे कहती—"अगर मांजी (दादी) करधन दे दें तो यह घर अब भी बच सकता है।" चाची कहती—"मेरी बात गांठ बाध लो, बुढिया जब मरेगी तो उनकी आत से करधन निकलेगा। जीते जी वह बताने से रही।" अम्मा का चेहरा काला पड़ जाता—"भगवान किसी को ऐसी माया रोग न दे कि वह किसी का न रह जाए।" बुआ अक्सर चुप रहती। मुझे ताज्जुब होता कि दादी उनकी मां थी। लगता कि दादी सबको भूल चुकी थी—बुआ, रामे और चाचा को भी। यह पूरा संसार उनके लिए अपरिचित और अज्ञात था। अब शायद उन्हे सिर्फ दीवार के भीतर वाले संसार की जादू भाषा भर आती थी। हमारी भाषा वे भूल गई थी इसीलिए कोई उनकी बात नही समझ पाता था।

सिर्फ पिताजी ऐसे थे कि जब वे तीन-चार महीनो बाद कलकत्ते से लौटकर आते तो हर बार पहले- दिन एक-दो घंटे दादी की अधियारी कोठरी मे जरूर बैठते। वे दादी से बातें करते। दादी उनकी मां थी। उन्होंने ही पिताजी को जन्म दिया था।

वह छप्पन तोले का करधन दादा जी लेकर आये थे। दादा जी हमारे घर की कहानी के नायक थे। उन्होने सारे संसार की यात्रा की थी और बडे-बड़े कारनामे किए थे। मुझे लगता पूरी दुनिया उनके बारे मे जानती होगी। उनकी एक धुधली-सी तस्वीर अम्मा की कोठरी मे लटकी हुई थी। वह अकेली तस्वीर थी जो नमी और समय के असर से कांच के साथ चिपककर धीरे-धीरे गल रही थी। दादा के सिर पर मराठी पगड़ी थी, जांघो मे बन्दूक टिकी हुई थी और बडी-बड़ी मूछें थी।

लालटेन की रोशनी मे जब भी सोने के करधन का जिक्र होता, दादा जी की भी कहानी शुरू हो जाती। अम्मा बताती कि दादा को चिड़ियां पालने का बड़ा

शौक था। गांव के तालाब की हर बतख से उनकी पहचान थी और दादा हर बतख को उसके अलग नाम से बुलाते थे। कई को वे अपने साथ अपने घर ले आते। फिर तो सारे घर में बतखें ही बतखें होतीं। हर जगह। बड़ी आफत होती। दादा को पता रहता था कि जंगल के किस पेड़ की किस डाल पर कौन-सी चिड़िया के बच्चे कितने बड़े हो गये हैं। वे सिर्फ बतखो से ही नही, कौओं और बैलों से भी बातचीत कर सकते थे। वे कई बार चीटियों से पूछकर बिल्कुल सही-सही बता देते कि पानी बरसेगा या नही।

गांव के उसी तालाब मे, जिसमें दादा की सारी बतखें, पनडुब्बिया, चाहे, मटावर, टिटहरी, बगुले और जाने कौन-कौन-सी चिड़िया रहती थी, अंग्रेज अफसर अपनी गोरी मेम के साथ आकर बारह बोर के छर्रे से बतखों को मार-कर ले जाता था। दादा कभी-कभी उदास होकर तालाब से लौटते और बुद-बुदाते—"आज गोरे ने मोहन, सावंत और दूजी को मार डाला।"

अम्मा बताती हैं कि एक शाम दादा आंगन में खाट पर लेटे हुए चुपचाप आकाश मे अभी-अभी उभरते हरनगरा, ध्रुव और शुकवा तारों को देख रहे थे कि अचानक शाम का नारंगी-नीला आसमान चिडियों से भर गया। सारे ससार की चिडिया वहां आकाश में पागल होकर चीख रही थी। दादा के पैर पर एक जल मुर्गाबी गिरी, वह खून से तर थी, सारे शरीर मे छर्रे थे और गर्दन आधी कट चुकी थी। दादा ने अपनी बन्दूक की नाल साफ की, उसमें कारतूस भरे, सिर पर पगड़ी रखी और तालाब की तरफ चले गए।

इसके बाद कहते हैं, दादा ने तालाब की दूसरी मेड़ पर खड़े होकर अंग्रेज अफसर से कहा कि इस तालाब में चिडियां मारना जुर्म है। सारी चिड़ियां मेरी घरेलू और पालतू हैं और तुम आज के बाद से शिकार खेलने के लिए इस तालाब में मत आना। उस दिन अंग्रेज अफसर अकेला था, इसलिए चुपचाप अपनी मेम के साथ चला गया। लेकिन दूसरे दिन दादा के सारे खेत कुर्क कर लिए गए, जानवर हांक ले जाये गए और हमारे गांव को बागी गांव घोषित कर दिया गया।

अब अंग्रेज अफसर हर रोज शाम को आता, तालाब में बारह बोर के छर्रों से चिडियों को मारता। दादा आंगन की खाट मे लेटकर चुपचाप देखते कि आकाश चिड़ियो से भर गया है, लहूलुहान मुर्गाबियाँ, घायल बतखें, चीखती हुई टिटहरियां और डरे हुए बगुले। अम्मा बताती कि जिस रोज उस अंग्रेज अफसर ने गुस्से में पागल होकर धांय-धांय तालाब की बतखो पर बन्दूक दागी थी, वह वही दिन था जब पजाब के जलियांवाला बाग मे गोली चली थी।

एक दिन दादा ने फिर अपनी बन्दूक साफ की और तालाब की दूसरी मेड़ पर लगे आम के पेड़ की डाल पर पत्तों के पीछे बैठ गए। अंग्रेज अफसर अपनी

गेग और कारिंदों के साथ आया था। वह सामने की मेड़ पर आम की डाल पर बने मचान पर बैठा। दादा ने चिल्लाकर दूसरी मेड़ से आवाज दी—"आज से सब बन्द लाट साहेब, मैं तालाब का मालिक और चिड़ियों का मालिक, तुम्हें हुक्म देता हूं..." लेकिन दादा तो आम के पेड़ में छिपे हुए थे। न उन्हें अंग्रेज अफसर देख पाया न उनके कारिंदे। सबने समझा उनके भीतर का डर बोल रहा है। अंग्रेज को गुस्सा भी आया। अंग्रेज उस वक्त सारे हिन्दुस्तान के राजा थे और यहां एक बतख मारने पर दादा की आवाज खिलाफत में उठ रही थी।

अंग्रेज अफसर ने मचान से जल मुर्गाबियों के झुंड पर निशाना लगाया— धांय, बन्दूक चली और कारिंदों ने देखा कि पूरा आसमान चीखती हुई चिड़ियों से भर गया। लेकिन तभी उन्होंने देखा कि इस बार ऊपर से मरी हुई मुर्गाबिया नहीं गिरी, गिरी अंग्रेज अफसर की लाश।

दरअसल दो बन्दूकों के घोड़े एक साथ दबे थे। दादा परली वाली मेड़ के नीचे उतरे, अपनी बन्दूक की नाल का धुआं साफ किया, चिड़ियों की ओर देखकर मुस्कराए, फिर हाथ हिलाया और फरार हो गए। अम्मा बतलाती हैं कि फिर पच्चीस साल तक दादा का कहीं पता ही नहीं चला। कोई कहता वे साधू हो गए हैं, कोई कहता डाकू। जमीन सारी कुर्क हो गई थी। खाने के लाले पड़े थे। दादी घर में अकेली तीनों बच्चों, यानी पिताजी, चाचा और बुआ को पालती रही। उस जमाने में दादा के बारे में हजारों किस्से घर-घर चलते कि दादा जर्मनी गए, फिर रूस गए। समुद्र में तैरकर अंग्रेजों के जहाज के पेंदे में छेद कर दिया। ट्रेन में डकैती डाली। कोई कहता कि मुठभेड़ में उन्हें मार डाला गया, फांसी दे दी गई, कैंसर से मर गए।

लेकिन दादा पच्चीसवें साल, बृहस्पतिवार की शाम, कार्तिक के महीने में, दीपावली के ठीक एक दिन पहले लौट आये। वे बिल्कुल बूढ़े और दुबले हो गए थे। चेहरे पर सफेद दाढ़ी थी, सिर गंजा हो गया था। और कहते हैं, दीवाली की रात उन्होंने दादी को छप्पन तोले का करधन दिया था। सोने का।

उसी साल आजादी मिली थी, उसी साल। दादा लौटे थे लेकिन उसी साल वे बीमार हो गए थे। कहते हैं, दादा जब मजबूत थे तो एक बार वे चलती हुई रेल के इंजन को रोककर उसे ठेलते हुए डेढ़ मील तक पीछे ले गए थे, लेकिन आजादी के बाद उनसे अपना टट्टी वाला लोटा भी नहीं उठता था। उन्हें दमा था और वे हांफते रहते थे। तब तक पिताजी, चाचा और बुआ खूब बड़े हो गए थे। बुआ कहती हैं कि जिस साल से आजादी मिली उस साल से वे सारे लोग बीमार हो-होकर मरने लगे थे, जिन्होंने अंग्रेजों से लड़ाई लड़ी थी। दादा भी उसी साल मर गए। आखिरी दिनों में उनके मुंह पर ढेर सारी मक्खियां बैठी रहती थीं और दादा का बूढ़ा चेहरा गुड़ के ढेले की तरह चिपचिपाता रहता था।

दादा भी बूढ़े गिद्ध की तरह लगते थे और वे चिड़ियों की भाषा भूल गए थे। जिस दिन वे घर लौटे थे उसी दिन वे तालाब गए थे, लेकिन वहां किसी भी बतख ने उनको नहीं पहचाना था। सारी पुरानी बतखें खत्म हो चुकी थीं और उनकी नई पीढ़ी के लिए दादा बिल्कुल अजनबी थे। वे भीतर से टूट गए थे। 'सब बदल गया'—सिर्फ इतना उन्होंने कहा था। उनका टट्टी वाला पीतल का लोटा अब भी हमारे घर की अटारी में था, जिसे मैं नहीं उठा पाता था।

अम्मा, बुआ, चाची सबके चेहरे लालटेन की पीली बीमार रोशनी में दीमक लगी किसी पुरानी किताब के पन्नों में बने धुंधले चित्रों की तरह लगते। मछलियों के पसीने से भरी बोझल हवा में उनकी आवाजें कुछ देर तक तैरती फिर भीगकर कहीं गिर जाती। हम सब जानते थे कि हमारा घर अब धीरे-धीरे धूल में बदल रहा है। अम्मा भी धूल हो रही हैं। पिताजी साल में दो-तीन बार ही आ पाते। वे कलकत्ते में किसी मारवाड़ी सेठ के कपड़े की दूकान पर मुनीमी का काम करते थे। चाचा पहले आते थे लेकिन पिछले चार सालों से नहीं आए थे। कभी-कभी उनका पचास रुपए का मनीआर्डर आ जाता था।

बुआ और अम्मा एक दिन आपस में बात कर रही थीं कि चाचा ने गोहाटी में किसी असमियां कुंजड़िन को रख लिया है। वह बड़ी खूबसूरत है और टोना जानती है। चाचा जब भी कभी घर लौटने की बात सोचते हैं, वह उन्हें बैल बनाकर खूंटे से बांध देती है। बुआ कहती कि अगर चाची ने बच्चे पैदा किए होते तो चाचा जरूर घर आया करते। आखिर पिताजी आते हैं। पिताजी एक बार मुझे अपने साथ कलकत्ता ले जाने की बात कह रहे थे लेकिन वहां उनके पास जगह ही नहीं थी। सेठ की दूकान में ही पिछले बारह साल से सोते थे।

पिताजी ने भी दादी जी से एक बार छप्पन तोले के करधन के बारे में पूछा था तो दादी बहुत देर तक चुप रही थीं। फिर उन्होंने कहा था—"रामे, जब तेरे पिता फिरंगी को मारकर फरार हुए थे, तब मेरे पास दस तोला सोना था। मैंने अपने तीनों छौनों को किस-किस तरह से पाला-पोसा, तुम दोनों भाइयों को पढ़ाया। चार तोला बचा था, जिसे मैंने दोनों बहुओं में बराबर-बराबर बांटा। और तिस पर भी तुम सबने मिलकर मेरे साथ जो किया है। बेटा, उसे भगवान ही नहीं, सारा गांव देख रहा होगा।" दादी रोने लगी थीं, फिर कहा था—"अभी तो बेटा, बहू दाल-भात ड्योढ़ी पर रख जाती है, करधन मैंने दे दिया तो फिर कौन-सी आस रह जाएगी? करधन हो कि न हो, वह मेरे लिए और तुम सबकी आस के लिए जरूरी है बेटा।"

चाचा और पिताजी ने तमाम घर छान मारा था। ज्योतिषी से गुप्तधन के बारे में पंचांग दिखाकर कई जगह खुदाई की थी, कटोरा चलवाया था, लेकिन दादी ने करधन पता नहीं कहां छुपा रखा था। एक बार अम्मा ने सपना देखा

कि करधन आंगन में तुलसी के चबूतरे के भीतर, ईंटों के बीच एक काले की हंडी में रखा है और तीन सफेद नाग उस पर पहरा दे रहे हैं। तुलसी का चबूतरा तोड़ा गया। एक बार तीजे के दिन दादी को खाट समेत आंगन में लाकर डाल दिया गया। बुआ ने सरसों के तेल की मालिश की, दादी की कंघी करके उनका जूड़ा बांधा गया। हलवा, खीर, आलू-गोभी की सब्जी और पूरी बना-बनाकर अम्मा उन्हें खिलाती रहीं। उन्हें पंखा झला गया। बुआ, चाची और अम्मा बातों के दांव-पेंच लगाकर दादी से भेद पाने के लिए जुटी रहीं। उधर इसी बीच अंधियारी कोठरी के फर्श को पिताजी सब्बल से जगह-जगह खोदते रहे, लेकिन करधन कहीं नहीं मिला।

एक बार दादी को गर्मी लग गई थी। वे कई दिनों तक अंधियारी कोठरी के बाहर नहीं निकलीं। बस, कराहती रहती थीं। चाची के दिल की जगह पर तो पत्थर का चौकोर टुकड़ा था, उन्होंने कहा—"यही वक्त है। अभी बुढ़िया बता दे तो बता दे, वरना पता नहीं कब ये सांस छोड़कर चल बसें।" चाची ने, कहते हैं, दादी को बीमारी में भी बहुत डराया-धमकाया। छुरा चमकाती रहीं, दादी का गला दबाया और नाक और मुंह बन्द करके उनकी सांस भी देर तक रोकी। सांस रुकने से दादी का शरीर गुब्बारे की तरह फूल गया, लेकिन उन्होंने तब भी नहीं बताया कि करधन कहां है। एक बार एक महीने तक दादी को अन्न का एक दाना भी नहीं दिया गया। अम्मा, चाची और बुआ अंधियारी कोठरी की चौखट के पास खड़ी होकर दादी को सुनाकर कहतीं कि अब तो घर की ईंट बेचने तक की नौबत आ गई है, किसी के पेट में दाना नहीं है, रामे ने पैसा देना बन्द कर दिया है। कोई सोना लेकर स्वर्ग नहीं जा सकता। रास्ते में ही यमदूत छीन कर भैंस के पेट में डाल देते हैं या वह यहीं रह जाता है। ऐसा सोना जिसके रहते बच्चा भूखा मर जाए, वह गू हो जाता है। दीमक उसे खा जाते हैं।

पता नहीं दादी यह सब सुनती थीं या नहीं। वे हमारी शत्रु थीं। पिताजी कभी-कभी गुस्से में अम्मा से कहते—"तुम सब लोगों ने मां जी को दुश्मन बनाया है। मुझे तो डर लगता है कि अगर मैं बूढ़ा और बीमार हो गया तो इस घर में मेरे साथ क्या किया जाएगा। मैं अभी से बता दूं कि मेरे पास नहीं है कोई धन। अपना खून बेचकर मैं तुम सबको पाल रहा हूं। मुझ पर रहम करना⋯" एक दिन पिताजी ने कहा था—"कोई करधन-वरधन नहीं है कहीं। सब गढ़ंत है। मेरे पिता (दादा जी) कहीं रंगून-जर्मनी नहीं गए। पता चलता है वे कलकत्ते में ईंट के भट्ठे में काम करते थे। मां तो जन्म से तम्बाकू खाती थीं। लत ऐसी चीज होती है कि अगर करधन होता तो सोना बेचकर वे तम्बाकू मंगवातीं। सब झूठ है, कोई करधन नहीं है कहीं⋯"

अम्मा उस रात देर तक रोती रहीं। फिर वे कई दिनों तक लगातार रोयीं।

खाना बनाते, बरतन धोते, झाड़ू लगाते। वे डर गयी थीं। हमारा घर अगर रेत होने से, खत्म होने से बच सकता था तो सिर्फ छप्पन तोले के करधन के करिश्मे से ही बच सकता था। पिताजी का शरीर भी जवाब देने लग गया था। अगर करधन न होता तो वर्षों की धूल और गर्द, घुन के कीड़े और दीवार की खोखल का जादुई संसार हमारे घर को किसी पुराने मिट्टी के टीले में बदल देते जिसके भीतर हम सबकी हड्डियां दबी होतीं, हमारा भविष्य भी।

उस बार जब पिताजी ने कहा था कि करधन की बात गढंत है तो पच्चीस दिनों तक अम्मा रोती रहीं, पच्चीस दिनों तक चाची ने दादी के खाने में धूल और मिट्टी डाली, पिताजी उसी रात कलकत्ते लौट गए थे और फिर पच्चीस रातों तक घर में कोयले से भी ज्यादा काला और गाढ़ा अंधेरा भर गया था। लालटेन भभककर बुझ जाती थी। हवा में किसी मरी हुई चीज की सड़ी बदबू हमेशा मौजूद रहती। अम्मा ने एक दिन मुझे अंधियारी कोठरी में झांकने के लिए भेजा तो मैंने देखा कि वहां दादी की कंजी आंखें जल रही थीं और वह कराह रही थीं। वहां पेशाब की गन्ध भरी हुई थी, ड्योढ़ी पर जस्ते का वही तुचका-पिचका भगोना रखा था जिसमें दाल-भात था और जिस पर चाची मिट्टी और धूल डाल गयी थी। एक खौफनाक युद्ध छिड़ा हुआ था हमारे घर में। दादी एक तरफ थीं और पूरा घर दूसरी तरफ था। मैं किधर था, ठीक-ठीक पता नहीं।

काली बिल्ली सारी रात घर में, हर कोने में घूमती। दिन भर छप्पर से घुन के कीड़े लकड़ी का बुरादा नीचे गिराते रहते और घर की हर चीज धूल और बुरादे से ढक जाती। हम सोकर उठते तो चादर पर, हमारे बालों और भौंहों पर बुरादा जमा होता। अम्मा, बुआ, चाची सब दिन में कई बार झाड़ू लगातीं। आंगन के कोने में धूल, बुरादे और ईंटों के चूरे का खूब ऊंचा ढेर इकट्ठा हो जाता। फिर एक दिन दादा की तस्वीर अम्मा की कोठरी से अपने आप गिर गई और सबने डर और ताज्जुब से देखा कि फ्रेम के भीतर दादा का चेहरा नहीं था। वहां कई छोटे-बड़े कीड़े थे, उनकी पीठ चमकीले सुनहले रंग की थी। वे तस्वीर की लकड़ी का फ्रेम भी खा चुके थे। अटारी में मैंने देखा कि दादा का लोटा गायब था।

गांव की औरतें कहतीं कि बुढ़िया को उसके बेटे-बेटी और बहुओं ने रौरव नरक मे डाल रखा है। भगवान किसी को ऐसा बुढ़ापा दिखाने के पहले ही उठा ले।

मुझे बहुत पहले की दादी की एक दूसरी स्मृति भी थी। तब हमारे घर में यह लड़ाई इतनी तेज नहीं छिड़ी थी और तब दादी भी इतनी बूढ़ी नहीं हुई थीं। उन्होंने एक दिन अपनी थैली से निकालकर मुझे एक काठ का पहियों वाला हाथी दिया था और एक रबर की गेंद। दादी भजन भी गाती थीं, जिसको समझना मुश्किल था : "हाय दिल राम...हाय दिल राम..." लेकिन [illegible] बहुत

कि करधन आंगन में तुलसी के चबूतरे के भीतर, ईंटों के बीच एक कांसे की हंडी में रखा है और तीन सफेद सांप उस पर पहरा दे रहे हैं। तुलसी का चबूतरा तोड़ा गया। एक बार तीजे के दिन दादी को खाट समेत आंगन में लाकर डाल दिया गया। बुआ ने सरसों के तेल की मालिश की, दादी की कंघी करके उनका जूड़ा बांधा गया। हलवा, खीर, आलू-गोभी की सब्जी और पूरी बना-बनाकर अम्मा उन्हें खिलाती रहीं। उन्हें पंखा झला गया। बुआ, चाची और अम्मा बातों के दांव-पेंच लगाकर दादी से भेद पाने के लिए जूझती रहीं। उधर इसी बीच अंधियारी कोठरी के फर्श को पिताजी सब्बल से जगह-जगह खोदते रहे, लेकिन करधन कहीं नहीं मिला।

एक बार दादी को गर्मी लग गई थी। वे कई दिनों तक अंधियारी कोठरी के बाहर नहीं निकलीं। बस, कराहती रहती थीं। चाची के दिल की जगह पर तो लकड़ी का चौकोर टुकड़ा था, उन्होंने कहा—"यही वक्त है। अभी बुढ़िया बता दे तो बता दे, वरना पता नहीं कब ये सांस छोड़कर चल बसें।" चाची ने, कहते हैं, दादी को बीमारी में भी बहुत डराया-धमकाया। छुरा चमकाती रहीं, दादी का गला दबाया और नाक और मुंह बन्द करके उनकी सांस भी देर तक रोकी। सांस रुकने से दादी का शरीर गुब्बारे की तरह फूल गया, लेकिन उन्होंने तब भी नहीं बताया कि करधन कहां है। एक बार एक महीने तक दादी को अन्न का एक दाना भी नहीं दिया गया। अम्मा, चाची और बुआ अंधियारी कोठरी की चौखट के पास खड़ी होकर दादी को सुनाकर कहतीं कि अब तो घर की ईंट बेचने तक की नौबत आ गई है, किसी के पेट में दाना नहीं है, रामे ने पैसा देना बन्द कर दिया है। कोई सोना लेकर स्वर्ग नहीं जा सकता। रास्ते में ही यमदूत छीन कर भैंस के पेट में डाल देते हैं या वह यहीं रह जाता है। ऐसा सोना जिसके रहते बच्चा भूखा मर जाए, वह गू हो जाता है। दीमक उसे खा जाते हैं।

पता नहीं दादी यह सब सुनती थीं या नहीं। वे हमारी शत्रु थीं। पिताजी कभी-कभी गुस्से में अम्मा से कहते—"तुम सब लोगों ने मां जी को दुश्मन बनाया है। मुझे तो डर लगता है कि अगर मैं बूढ़ा और बीमार हो गया तो इस घर में मेरे साथ क्या किया जाएगा। मैं अभी से बता दूं कि मेरे पास नहीं है कोई धन। अपना खून बेचकर मैं तुम सबको पाल रहा हूं। मुझ पर रहम करना···" एक दिन पिताजी ने कहा था—"कोई करधन-वरधन नहीं है कहीं। सब गप्प··· पिता (दादा जी) कहीं रंगून-जर्मनी नहीं गए। पता चलता है वे क··· के भट्ठे में काम करते थे। मां तो जन्म से तम्बाकू खाती थीं। होती है कि अगर करधन होता तो सोना बेचकर वे ··· है, कोई करधन नहीं है कहीं ··"

अम्मा उस रात देर तक रोती रहीं। फिर वे कई दिनों

खाना बनाते, बरतन धोते, झाड़ू लगाते। वे डर गयी थी। हमारा घर अगर रेत होने से, खत्म होने से बच सकता था तो सिर्फ छप्पन तोले के करधन के करिश्मे से ही बच सकता था। पिताजी का शरीर भी जवाब देने लग गया था। अगर करधन न होता तो वर्षों की धूल और गर्द, घुन के कीडे और दीवार की खोखल का जादुई संसार हमारे घर को किसी पुराने मिट्टी के टीले में बदल देते जिसके भीतर हम सबकी हड्डिया दबी होती, हमारा भविष्य भी।

उस बार जब पिताजी ने कहा था कि करधन की बात गढंत है तो पच्चीस दिनो तक अम्मा रोती रही, पच्चीस दिनों तक चाची ने दादी के खाने मे धूल और मिट्टी डाली, पिताजी उसी रात कलकत्ते लौट गए थे और फिर पच्चीस रातों तक घर में कोयले से भी ज्यादा काला और गाढा अंधेरा भर गया था। लालटेन भभककर बुझ जाती थी। हवा में किसी मरी हुई चीज की सड़ी बदबू हमेशा मौजूद रहती। अम्मा ने एक दिन मुझे अंधियारी कोठरी में झांकने के लिए भेजा तो मैंने देखा कि वहां दादी की कंजी आखें जल रही थी और वह कराह रही थीं। वहां पेशाब की गन्ध भरी हुई थी, ड्योढ़ी पर जस्ते का वही तुचका-पिचका भगौना रखा था जिसमे दाल-भात था और जिस पर चाची मिट्टी और धूल डाल गयी थी। एक खौफनाक युद्ध छिडा हुआ था हमारे घर मे। दादी एक तरफ थीं और पूरा घर दूसरी तरफ था। मैं किधर था, ठीक-ठीक पता नही।

काली बिल्ली सारी रात घर में, हर कोने में घूमती। दिन भर छप्पर से घुन के कीड़े लकड़ी का बुरादा नीचे गिराते रहते और घर की हर चीज धूल और बुरादे से ढक जाती। हम सोकर उठते तो चादर पर, हमारे बालों और भौंहों पर बुरादा जमा होता। अम्मा, बुआ, चाची सब दिन में कई बार झाड़ू लगातीं। आंगन के कोने मे धूल, बुरादे और ईंटों के चूरे का खूब ऊंचा ढेर इकट्ठा हो जाता। फिर एक दिन दादा की तस्वीर अम्मा की कोठरी से अपने आप गिर गई और सबने डर और ताज्जुब से देखा कि फ्रेम के भीतर दादा का चेहरा नही था। वहां कई छोटे-बड़े कीड़े थे, उनकी पीठ चमकीले सुनहले रंग की थी। वे तस्वीर की लकड़ी का फ्रेम भी खा चुके थे। अटारी मे मैंने देखा कि दादा का लोटा गायब था।

गाव की औरतें कहती कि बुढ़िया को उसके बेटे-बेटी और बहुओं ने रौरव नरक मे डाल रखा है। भगवान किसी को ऐसा बुढ़ापा दिखाने के पहले ही उठा ले।

मुझे बहुत पहले की दादी की एक दूसरी स्मृति भी थी। तब हमारे घर मे यह लडाई इतनी तेज नही छिड़ी थी और तब दादी भी इतनी बूढी नहीं हुई थी। उन्होंने एक दिन अपनी थैली से निकालकर मुझे एक काठ का पहिओ वाला हाथी दिया था और एक रबर की गेंद। दादी भजन भी गाती थी, जिसको समझना मुश्किल था : "हाय दित राम...हाय दित राम..." लेकिन यह स्मृति बहुत

कि करधन आंगन में तुलसी के चबूतरे के भीतर, ईंटों के बीच एक कांसे की हंडी में रखा है और तीन सफेद सांप उस पर पहरा दे रहे हैं। तुलसी का चबूतरा तोड़ा गया। एक बार तीजे के दिन दादी को खाट समेत आंगन में लाकर डाल दिया गया। बुआ ने सरसों के तेल की मालिश की, दादी की कंघी करके उनका जूड़ा बांधा गया। हलवा, खीर, आलू-गोभी की सब्जी और पूरी बना-बना कर अम्मा उन्हें खिलाती रही। उन्हें पंखा झला गया। बुआ, चाची और अम्मा बातों के दांव-पेंच लगाकर दादी से भेद पाने के लिए जूझती रहीं। उधर इसी बीच अंधियारी कोठरी के फर्श को पिताजी सब्बल से जगह-जगह खोदते रहे, लेकिन करधन कहीं नहीं मिला।

एक बार दादी को गर्मी लग गई थी। वे कई दिनों तक अंधियारी कोठरी के बाहर नहीं निकलीं। बस, कराहती रहती थीं। चाची के दिल की जगह पर तो लकड़ी का चौकोर टुकड़ा था, उन्होंने कहा—"यही वक्त है। अभी बुढ़िया बता दे तो बता दे, वरना पता नहीं कब ये सांस छोड़कर चल बसें।" चाची ने, कहते हैं, दादी को बीमारी में भी बहुत डराया-धमकाया। छुरा चमकाती रहीं, दादी का गला दबाया और नाक और मुंह बन्द करके उनकी सांस भी देर तक रोकी। सांस रुकने से दादी का शरीर गुब्बारे की तरह फूल गया, लेकिन उन्होंने तब भी नहीं बताया कि करधन कहां है। एक बार एक महीने तक दादी को अन्न का एक दाना भी नहीं दिया गया। अम्मा, चाची और बुआ अंधियारी कोठरी की चौखट के पास खड़ी होकर दादी को सुनाकर कहतीं कि अब तो घर की ईंट बेचने तक की नौबत आ गई है, किसी के पेट में दाना नहीं है, रामे ने पैसा देना बन्द कर दिया है। कोई सोना लेकर स्वर्ग नहीं जा सकता। रास्ते में ही यमदूत छीन कर भैंस के पेट में डाल देते हैं या वह यहीं रह जाता है। ऐसा सोना जिसके रहते बच्चा भूखा मर जाए, वह गू हो जाता है। दीमक उसे खा जाते हैं

पता नहीं दादी यह सब सुनती थीं या नहीं। वे हमारी शत्रु थीं। पिताजी कभी-कभी गुस्से में अम्मा से कहते—"तुम सब लोगों ने मां जी को दुश्मन बनाया है। मुझे तो डर लगता है कि अगर मैं बूढ़ा और बीमार हो गया तो इस घर में मेरे साथ क्या किया जाएगा। मैं अभी से बता दूं कि मेरे पास नहीं है कोई धन। अपना खून बेचकर मैं तुम सबको पाल रहा हूं। मुझ पर रहम करना…" एक दिन पिताजी ने कहा था—"कोई करधन-वरधन नहीं है कहीं। सब गढ़ंत है। मेरे पिता (दादा जी) कहीं रंगून-जर्मनी नहीं गए। पता चलता है वे कलकत्ते में ईंट के भट्ठे में काम करते थे। मां तो जन्म से तम्बाकू खाती थीं। लत ऐसी चीज होती है कि अगर करधन होता तो सोना बेचकर वे तम्बाकू मंगवातीं। सब झूठ है, कोई करधन नहीं है कहीं…"

अम्मा उस रात देर तक रोती रहीं। फिर वे कई दिनों तक लगातार रोयीं।

खाना बनाते, बरतन धोते, झाड़ू लगाते। वे डर गयी थीं। हमारा घर अगर रेत होने से, खत्म होने से बच सकता था तो सिर्फ छप्पन तोले के करधन के करिश्मे से ही बच सकता था। पिताजी का शरीर भी जवाब देने लग गया था। अगर करधन न होता तो वर्षों की धूल और गर्द, घुन के कीड़े और दीवार की खोखल का जादुई संसार हमारे घर को किसी पुराने मिट्टी के टीले में बदल देते जिसके भीतर हम सबकी हड्डियां दबी होती, हमारा भविष्य भी।

उस बार जब पिताजी ने कहा था कि करधन की बात गढंत है तो पच्चीस दिनों तक अम्मा रोती रही, पच्चीस दिनों तक चाची ने दादी के खाने में धूल और मिट्टी डाली, पिताजी उसी रात कलकत्ते लौट गए थे और फिर पच्चीस रातों तक घर मे कोयले से भी ज्यादा काला और गाढ़ा अंधेरा भर गया था। लालटेन भभककर बुझ जाती थी। हवा मे किसी मरी हुई चीज की सड़ी बदबू हमेशा मौजूद रहती। अम्मा ने एक दिन मुझे अंधियारी कोठरी में झांकने के लिए भेजा तो मैंने देखा कि वहां दादी की कंजी आंखें जल रही थी और वह कराह रही थी। वहां पेशाब की गन्ध भरी हुई थी, ड्योढ़ी पर जस्ते का वही तुचका-पिचका भगौना रखा था जिसमे दाल-भात था और जिस पर चाची मिट्टी और धूल डाल गयी थी। एक खौफनाक युद्ध छिड़ा हुआ था हमारे घर में। दादी एक तरफ थी और पूरा घर दूसरी तरफ था। मैं किधर था, ठीक-ठीक पता नही।

काली बिल्ली सारी रात घर मे, हर कोने में घूमती। दिन भर छप्पर से घुन के कीड़े लकड़ी का बुरादा नीचे गिराते रहते और घर की हर चीज धूल और बुरादे से ढक जाती। हम सोकर उठते तो चादर पर, हमारे बालों और भौंहों पर बुरादा जमा होता। अम्मा, बुआ, चाची सब दिन मे कई बार झाड़ू लगातीं। आंगन के कोने मे धूल, बुरादे और ईंटों के चूरे का खूब ऊंचा ढेर इकट्ठा हो जाता। फिर एक दिन दादा की तस्वीर अम्मा की कोठरी से अपने आप गिर गई और सबने डर और ताज्जुब से देखा कि फ्रेम के भीतर दादा का चेहरा नही था। वहां कई छोटे-बड़े कीड़े थे, उनकी पीठ चमकीले सुनहले रंग की थी। वे तस्वीर की लकड़ी का फ्रेम भी खा चुके थे। अटारी मे मैंने देखा कि दादा का लोटा गायब था।

गांव की औरतें कहती कि बुढ़िया को उसके बेटे-बेटी और बहुओं ने रौख नरक मे डाल रखा है। भगवान किसी को ऐसा बुढ़ापा दिखाने के पहले ही उठा ले।

मुझे बहुत पहले की दादी की एक दूसरी स्मृति भी थी। तब हमारे घर मे यह लड़ाई इतनी तेज नही छिड़ी थी और तब दादी भी इतनी बूढी नही हुई थी। उन्होंने एक दिन अपनी थैली से निकालकर मुझे एक काठ का पहिओ वाला हाथी दिया था और एक रबर की गेंद। दादी भजन भी गाती थी, जिसको समझना मुश्किल था : "हाय दित राम...हाय दित राम..." लेकिन यह स्मृति बहुत

दूर की थी। वह आज वाली दादी से नही जुड़ती थी। अब दादी मुझको पहचानना भूल चुकी थी। शायद उन्होंने मुझे भी शत्रु मानकर अपनी स्मृति से बाहर निकाल फेंका था। वे हर किसी को भूल गयी थी। इस संसार की भाषा भी।

पहले दादी चावल बिलकुल नही खाती थी। वे उत्तर वाले देश की थी। दादा के लिए चावल बनता, तब भी वे अपने लिए रोटी अलग से बनाती थी। लेकिन मैने जब भी भगौना देखा था, उसमे भात ही देखा था। उनका तम्बाकू भी बन्द हो चुका था। उनके पसन्द की कोई भी चीज अब संसार मे नही बची थी। अगर कही थी भी तो दादी उसे पा नही सकती थी। युद्ध मे सब जायज होता है। दादी पर हथियार आजमाया जा रहा था। और दादी भी अपने टोने से, अपने शाप से, हमारे घर को खत्म करने में लगी थी। कभी-कभी लगने लगता कि अब दादी की हार हो जाएगी और वे छप्पन तोले का सोने का करधन निकालकर आंगन मे फेंक देंगी, इस युद्ध का फैसला हो जाएगा, लेकिन फिर लगने लगता कि दादी तो जीत रही हैं। हमारे घर को भीतर-भीतर से उन्होंने बिलकुल जर्जर और खोखला कर डाला है। अंधेरा, बिल्ली, हवा, घुन के कीड़े, चूहे, बीमारियां और बुरी खबरों की उनकी फौज बड़ी मुस्तैदी से अपनी लड़ाई मे मशगूल थी। फूफा मर गए थे, चाचा को असमियां कुजड़िन ने बैल बनाकर खूंटे से बांध रखा था, पिताजी महीनो घर नही आ पाते थे, चाची बांझ रह गयी थी, पानी नही बरसता था। हमारे चारो खेत बिक चुके थे। पिछवाड़े की आखिरी जमीन गिरवी रखी थी। दादा का पीतल वाला लोटा बेच डाला गया था और उनकी तस्वीर को चमकीले कीड़े खा गए थे। दादी युद्ध जीत रही थी।

उस दिन, शाम को दादी अंधियारी कोठरी से बाहर निकली। उन्हे दस दिन से चाचो ने खाना नही देने दिया था। दादी किसी बीमार लेकिन चलते-फिरते कंकाल की तरह दिखाई दे रही थी और उनके शरीर से पेशाब की गंध निकल रही थी। वह कूड़े के ढेर पर बैठ गयी थी, बिना बोरी बिछाए। उनकी खोपड़ी नंगी थी, उस पर बाल नही रह गए थे। उनके नीचे एक लम्बी-सी, पतली गर्दन जिस पर झुर्रियां पड़ी हुई थी। उनकी आंखें गड्ढे मे धंसी हुई थीं और वे बाहर की ओर नहीं, अन्दर देखती लग रही थीं।

पतली गर्दन पर रखी दादी की नंगी खोपड़ी कांप रही थी और उनकी आँखों के गड्ढे से पानी निकल रहा था। उनका पूरा शरीर कांप रहा था, हाथ हवा मे पत्ते की तरह हिल रहे थे।

मैंने देखा, बुआ उनको देखकर डर गयी। फिर उन्होंने अम्मा से कहा, "मां को लगता है, मलेरिया हो गया है। ज्वर मे वे कांप रही हैं।" अम्मा ने भी रसोई की खिड़की से दादी को देखा। आंगन के कोने मे कूड़े के ढेर पर किसी बूढ़े और बीमार गिद्ध की तरह बैठी दादी बुखार मे गा रही थी—"हाय दित

राम'''हाय दित राम'''"

चाची ने कहा—"अब बुढ़िया बचेगी नही। अकल से काम लो, नही सब चौपट हो जाएगा। यह आखिरी मौका है। बुढ़िया ने अगर अब दे दिया, तो दे दिया, वर्ना समझो यह घर खतम। मैंने देखा, चाची दादी के पास गयी। उन्हें कूड़े के ढेर से उठाया—बांह पकड़कर। दादी की पतली बांहों मे सिर्फ हड्डिया थी, जिनके ऊपर बहुत पुरानी, चमकीली पपड़ियों और झुरियों से भरी पतली त्वचा कढ़ी हुई थी। वे लगातार गाए जा रही थीं—"हाय दित राम'''बिन धजी का पैंना डोलत है'''बिन धजी का पैंना डोलत है'''हाय दित राम'''"

चाची उनके कान में मुंह सटाकर जोर-जोर से बोल रही थी—"*ओ मांजी*, जेठजी (मेरे पिता) का तार आया है कि वे बहुत बीमार हैं। उनके पेट मे डेढ़ सेर की पथरी पड़ गई है। आपरेशन के लिए पैसे नही हैं। माजी, बता दो करधन कहां रखा है, नही तो जेठ जी मर जाएंगे।" फिर अम्मा भी वहां आ गयी। उन्होंने भी दादी को पकड़ लिया था। वे भी दादी के कान मे चिल्ला रही थी'''"मांजी, रामे अब बचेंगे नही : मुन्ना को भी बीमारी हो गयी है। वह भी नही बचेगा। करधन दे दो।"

लेकिन साफ लग रहा था कि दादी इस ससार की भाषा भूल चुकी थी। उनकी नंगी खोपड़ी हिल रही थी, गड्ढे में धंसी आंखों से पानी निकल रहा था, हाथ सूखे पत्तो की तरह कांप रहे थे, और पोपले मुह से वे लगातार गाए जा रही थी : "हाय दित राम'''हाय दित राम'''" उन्हे सन्निपात हो गया था। वे होश में नही थी।

तभी चाची चिल्लायी—"*बहनजी, जरा नीचे देखना। लगता है माजी* को दस्त लग रही है।" सचमुच दादी के पीछे की मैली धोती दस्त से लिथड़ गई थी और पीले रंग का मल आंगन मे फैल रहा था। पेशाब की तेज गन्ध उनके शरीर से उठ रही थी। पूरा घर मल और पेशाब की बदबू से भर गया था। मुझे उल्टी आ रही थी। दादी का कंकाल दस्त से लिथड़ा बुखार मे कांप रहा था—"हाय दित राम'''हाय दित राम ' "

बुआ बाल्टी में पानी भरकर लायी और चाची ने पूरा पानी दादी के सिर में उड़ेल दिया। दादा की मटमैली धोती उनके कंकाल से चिपक गयी थी। आगन मे पानी, दस्त और पेशाब का कीचड हो गया था। बदबू और तेज हो गई थी। चाची उनके कान में चिल्ला रही थीं—"मांजी, सुनाई देता है? जेठजी अब बचेंगे नही। मुन्ना भी मर रहा है। अब निकाल दो। दे भी दो। ओ मांजी ' "

दूसरी बाल्टी, तीसरी बाल्टी, फिर चौथी बाल्टी का पानी भी दादी के सिर पर उड़ेला गया। लगा कि उनके कंकाल का हिलना कुछ थमा है। उनकी गर्दन लुढ़क रही थी। गाना बन्द हो गया था। उन्हे अम्मा और चाची संभालती

हुई अंधियारी कोठरी में ले गयी लेकिन वहां किसी से रहा नहीं गया। वहां भी दस्त और पेशाब की तेज बदबू थी।

चाची ने कहा—"बुढ़िया अपने आप कपड़े बदल लेगी। देखा नहीं बहनजी, उसकी हाड़ में अब भी कितना जोर था। दो जनों के सम्भाले नही सम्भलती थी। बुढ़िया अमर घुट्टी पीकर आयी है, इतनी आसानी से जाएगी नही।" बुआ का चेहरा पहली बार मैंने दुःखी और स्याह देखा—"मगर मुझको तो इस बार कुछ दूसरी ही बात लगती है। मां ने ऐसा कभी नही किया था।"

उस रात काली बिल्ली नहीं दिखी। लालटेन से ज्यादा उजाला फूट रहा था। हवा मे न तो बदबू थी न मछलियों के पसीने की बीसर गन्ध। बल्कि एक-दो बार तो मुझे लगा कि उसमें बेले की महक घुली हुई है। वह एक ठीक-ठाक और कागज की तरह हल्की रात थी। मुझे खूब गहरी नींद आई। दीवारों के भीतर का संसार भी आज सो गया था। अम्मा, बुआ और चाची बातें करती रह गई थीं और मैं सो गया था।

सवेरे चाची आंगन में दौड़ती हुई आयी। उनके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थी। आंगन के बीच खडी होकर उन्होंने अम्मा को आवाज दी—"बहन जी, जल्दी निकलो। मांजी नही रही। मैंने अंधियारी कोठरी झांक ली।"

अम्मा बरतन छोडकर आंगन में निकल आयी। उन्होंने चूल्हे मे पानी डाल दिया था। फिर बुआ के रोने की आवाज उठने लगी। थोड़ी देर बाद वे तीनों एक लय मे रो रही थीं। किसी संगीत की तरह। फिर गांव की औरतें आने लगीं। आंगन भर गया। पूरे घर मे औरतों के रोने की आवाज भर गई थी। मैं रो रहा था और चुपके-चुपके यह भी ताड़ रहा था कि इतनी औरतों में से कोई औरत किसी और चीज मे अपने आपको बदलती है या नहीं। मेरी हिम्मत अंधियारी कोठरी की ओर जाने की नही हो रही थी हालांकि मैं एक बार चौखट से झांककर अन्दर देखना चाहता था। क्या पता अब भी वहां दादी की कंजी आंखें जल रही हों और मैं पूछू तो वे घुर्राकर बोलें—"हूं—ऽ ऽ"। मैं जस्ते के उस भगौने को भी एक बार देखना चाहता था, जिसमें दादी को खाना जाता था और जिसमें चाची धूल और मिट्टी डाल आती थी।

दोपहर तक दादी को तालाब के किनारे पर जला दिया गया। उस रात फिर अंधेरा ज्यादा गहरा नही था। केवडे की महक भी हवा मे थी। दीवार के भीतर का अजगर भाप जैसी सांस नही छोड रहा था। लेकिन मुझे एकाध बार ऐसा भ्रम जरूर हुआ था कि वहां से दादी के गाने की धीमी और बहुत बारीक आवाज आ रही थी—"हाय दित राम···हाय दित राम ·"

सातवें दिन पिताजी आ गए। चाचा को भी तार दिया गया था। लेकिन न तो उनका जवाब आया, न वे आए। उन्हें तो असमियां कुंजड़िन ने बैल बना

रखा था।

जिस दिन दादी का दसवाँ हुआ, उसी शाम पिताजी अंधियारी कोठरी में घुसे थे। दादी की छोटी कठरी में जो चीजें थीं, उन्हें अब पहचाना नहीं जा सकता था। चार-पांच सूखे हुए काले अमरूदों के साथ एक लकड़ी की काली गेंद भी थी, जो कई वर्ष पहले रबर की रही होगी। एक थैली में काठ का एक छोटा-सा घोड़ा था पहियों वाला जो अब कोयले में बदल चुका था। एक पुटली में गुड़ के दो ढेले थे जो मिट्टी हो चुके थे। बाकी फटे हुए कपड़े-चिथड़े थे। यह दादी का कुल असबाब था।

चाची ने अंधियारी कोठरी में अच्छी तरह से झाड़ू लगा दी थी। दादी की खाट को तालाब में फेंक दिया गया था, जहां से डोम उसे निकालकर ले गया होगा! पिताजी सब्बल से अंधियारी कोठरी की फर्श और दीवार खोद रहे थे। अम्मा सहमी महुर स्तोत्र का जाप कर रही थीं जिससे करधन मिल जाए। बुआ तसले में अंधियारी कोठरी से मिट्टी निकाल-निकालकर बाहर फेंक रही थी। पिताजी के सब्बल चलाने की आवाज लगातार आ रही थी। पूरे घर में अजवायन और धूप जलायी गई थी। चाची ने मुझे गोद में उठा लिया था—"अब सब ठीक हो जाएगा। घर का दोख-पाप चला गया। देखना अभी करधन मिल जाएगा।"

यानी, अब दादी का जादू खत्म होने वाला था। दादी मर चुकी थी और अब हमारी जीत होने वाली थी। अब हमारा घर धूल में नहीं बदलेगा। सारी छप्पर बदल दी जाएगी। दीवारों के खोखल में सीमेंट-गारा भर दिया जाएगा। चारों खेत वापस लौट आयेंगे। पिताजी मारवाड़ी सेठ की मुनीमी छोड़ देंगे और घर में रहेंगे। पिछवाड़े की जमीन फिर हमारी हो जाएगी। चाचा गोहाटी से लौट आएंगे और असमियां कुंजड़िन हमारे घर का पानी बरतन करेगी, खेतों में काम करेगी, मैं स्कूल जाने लगूंगा, अम्मा की बीमारी ठीक हो जाएगी, हवा में से केवड़े की महक आएगी और हमारे घर में कई लालटेनें होंगी, टार्च भी होगी...

अम्मा जोर-जोर से पाठ कर रही थी। बुआ तसले में मिट्टी और ढेले अंधियारी कोठरी से निकाल-निकालकर बाहर फेंक रही थी। वहां पर मिट्टी का ढेर लगता जा रहा था। रात हो रही थी। चाची मेरे पास बैठी हुई थी। मुझे कब नींद आ गयी, पता नहीं चला।

आधी रात को शोर और रोने-पीटने की आवाजों से मेरी नींद अचानक खुली। अम्मा, बुआ रो रही थी, जोर-जोर से। लालटेन आंगन के बीच में रखी थी और उसकी मटैली रोशनी में आंगन में चारों ओर ईंट, ढेले और मिट्टी के ढेर दिखाई दे रहे थे। परली तरफ पिताजी का शरीर हिल रहा था। उनके हाथ में कुदाल थी। वे अंधियारी कोठरी की फर्श और दीवाल खोद चुके थे और अब

उस तरफ से घर को खोदते हुए आगे बढ़े आ रहे थे। किसी विनाशकारी प्रेत की तरह। 'धप्प···धप्प्' उनकी कुदाल चल रही थी। मैं डर गया। पिताजी को मैंने इस तरह पहले कभी नहीं देखा था। वे मिट्टी और धूल मे लिथड़े हुए थे। हर बार उनके गले से हुंकार की आवाज निकलती और कुदाल नीचे गिरती।

मैं डर गया था और रोने लगा था। चाची ने धीरे से कहा, "पता नहीं, जेठजी के दिमाग को अचानक क्या हो गया। बुढ़िया ने जरूर अंधियारी कोठरी मे कोई टोना-टोटका कर रखा था। जब से वे कोठरी से बाहर निकले हैं उनकी आँखें लाल हैं और दिमाग सनक गया है···हे भगवान अब तुम्ही रक्षक हो···"

पिताजी घर को खोदते हुए आगे बढ रहे थे। लालटेन भभक रही थी। हवा मे किसी मरी हुई चीज की सड़ी बदबू थी। दीवार के भीतर के संसार से रहस्यपूर्ण आवाजें उठने लगी थी। वहा तेजी से खट-पट हो रही थी। कुछ चीजें गढी और कुछ तोड़ी जा रही थी।

मैंने देखा कि छप्पर से घुन के कीड़ों ने इतना बुरादा गिराया था कि मेरी चादर, बाल, भौहें ढक गयी थी। चाची, अम्मा, बुआ सब बुरादे से ढक गये थे। घर को फर्श पर धूल और बुरादा जमा होता जा रहा था। लालटेन भभक कर बुझ गई थी और जिधर अंधियारी कोठरी थी, जिधर से पिताजी घर को खोदते हुए आगे बढ़ रहे थे, उधर अंधेरे मे दो कजी आंखें जल रही थी।

थोड़ी देर बाद काली बिल्लीं पूरे घर मे घूमने लगीं। अम्मा और बुआ के रोने के साथ बीच-बीच मे वह भी विलाप करने लगती थी।

होम वर्क

कमला से फोन पर बात हो गई। पिछले तीन-चार दिन से इसी ऊहापोह मे था कि उसे कैसे बुलाऊं। कल खुद उसका फोन आ गया। कई दिन से उमा लगातार कह रही थी कि भाई साहब, कमला को बुला ही लो, एक बार मिल लेगी। डर सबको है कि बाबू से भविष्य में बात भी कर पाए या नही। फिर वह रहती भी तो दूर है। वैसे अब भी उनकी बात समझ पाना कौन-सा आसान रह गया है पर उन आवाज़ो का आप कुछ न कुछ अर्थ निकाल ही लेते है। यद्यपि यह आवाज़ वह आवाज़ नही है जिसे हम होश संभालने से सुनने के आदी रहे हैं, जो हमारी स्मृति मे रिकार्डो मे अंकित स्वरो-सी सुरक्षित है और ज़रा-सी भी हलचल से बज उठती है, पर जब बाबू सामने होते हैं तब हम, एक-दूसरे ही यथार्थ से साक्षात्कार कर रहे होते हैं और वह होता है रोबीले व गंभीर स्वर के एक दिन अचानक ही बिगडे हुए रेडियो-सी अर्थहीन, अनर्गल और थकाने वाली आवाज़ मे बदल जाने का। इस पर भी वह होती तो बाबू की ही आवाज़ है—हमारे बाबू की आवाज़।

मैंने उसे बता दिया, हालत में यद्यपि कोई गिरावट नही है पर सुधार भी नही कहा जा सकता। आपरेशन तो होना ही है, कब, बस यही निर्णय बाकी है। तू आ जा। मैंने स्पष्ट ही कह दिया।

"हो सका तो सुबह नही तो कल शाम जरूर आ जाऊंगी।" मैं उस बेचैनी को डेढ हजार कि० मी० की दूरी के बावजूद उसके चेहरे पर पढ सकता था। पर एक गलती हो गई। मैं कहना भूल गया कि वह मां से न कहे कि वह मेरे बुलाने पर आई है और वह भी जहाज से। मां घबरा जाएगी। वह और कुछ कह सकता है कि सरकारी काम था या कोई कांफ्रेंस थी।

"कल से नवरात्रियां शुरू हो रही हैं," मां की आवाज ने अचानक जैसे मुझे चोरी करते पकड़ लिया हो। वह मुझे एकटक देख रही थी। मैं एक पल को अचकचा गया।

"क्या ?"

"चैत की नवरात्री", मां ने स्पष्ट किया। "पंडित को बुला लेना, पाठ करवाना है।"

ओह, चैत की नवरात्री शुरू हो रही थी, सब कुछ मेरी समझ मे आ गया। पाठ तो हमारे यहा सदा ही होता था पर इसकी जिम्मेदारी या कहना चाहिए यह विभाग बाबू का था।

बात थोड़ी अजीब है, पर हमारे लिए यह सामान्य था। पूजा-पाठ को बाबू जितनी गंभीरता से लेते थे, मां उतनी ही तटस्थता से। जब कभी भी हमारे यहां कोई पूजा-पाठ होता, मां को जरूर गालियां पड़ती। असल में मां कई वर्ष बाद भी यह नही सीख पायी थी कि एक पूजा मे क्या-क्या सामग्री लगती है। कभी मां पंच पात्र भूल जाती तो कभी पचामृत। कभी तांबूल के लिए कांड होता तो कभी सुपारी या कपूर के लिए। बाद मे लड़कियों ने यह काम सभाल लिया था पर मां के लिए यह सब झमेला ही रहा। मुझे कई बार लगता है कि इसके मूल मे मां पृष्ठभूमि ही थी। मां ब्राह्मण से पहले एक किसान की बेटी थी जिसका उसे बहुत घमंड था। वह अक्सर कहा भी करती, अरे मैं किसान की बेटी हूं। यह उसका 'पेट' मुहावरा था और इसका वह इस हद तक इस्तेमाल करती थी कि हम लोग उसका मजाक ही उड़ाने लगे थे और इससे पहले कि वह कहे कि मैं किसान की बेटी हूं, हम खुद ही कह दिया करते थे कि कोई मखौल थोड़े ही है, मां किसान की बेटी है।

बाबू के साथ मामला सदा उलटा ही रहा है। उनके लिए किसान की पृष्ठ-भूमि असभ्य होने का पर्याय रहा है। मां को वह गवार कहा करते थे। यद्यपि हमारी जड़ें गाव ही मे है और दादाजी तक हमारा मुख्य व्यवसाय खेती ही रहा था, पर बाबू ने गाव से एक बार जो नाता तोड़ा तो कभी किसी तरह का कोई सबंध नहीं रखा, सिवा वहां के लोगो को अपना मुवक्किल बनाने के।

"ऐसा करना", मां ने अपनी धीमी पर स्थिर आवाज़ में कहा, "पूरे नौ दिन के पाठ का इंतजाम करना।"

"किसका पाठ करवाना है?"

मां ने एक बार तो कुछ असमजस में मेरी ओर देखा फिर वह समझ गयी, बोली, "मेरे विचार मे तो दोनो ही करा दें।"

"पर···" मै कुछ अटका फिर मैंने कह ही दिया, "पर ऐसा न हो कि दोनों पाठ एक साथ न होते हो।"

मां कुछ देर मौन रही, दुविधा मे सोचती, फिर बोली, "इसमें कुछ दोष तो नही होता होगा?"

मैं थोड़ा मुस्कराया, एक असहाय-सी मुस्कराहट।

"पूजा ही तो है, क्या दोष होता होगा। तू दोनों ही करवा दे। वैसे पडित बतला देगा।"

"बाबू हर साल क्या करवाते हैं?" मैंने पूछा।

मेरे सवाल ने मां को एकदम हतप्रभ-सा कर दिया। किसी तरह मां ने स्वयं को नियंत्रित किया और रुक-रुककर बोली, "अब इस समय तो मुझे कुछ ठीक से याद नहीं पड़ रहा है।"

मैं चुप हो गया। एक हद तक यह संभव भी है कि मां को कुछ याद ही न हो। जिस मानसिक स्थिति से वह गुजर रही थी उसमें कुछ भी याद न आना कोई बड़ी बात नहीं। पर यह सच था कि मां को कभी भी पूजा-पाठ ने आकर्षित नहीं किया था और वह बाबू के साथ के चालिस वर्षों के दाम्पत्य जीवन के बावजूद अपने को बदल नहीं पाई थी। वह आज भी एक किसान की ही बेटी थी जिसके लिए त्योहारों से अधिक महत्वपूर्ण मौसम का बदलना था। मेरा दिल भर आया। एक असीम दृढ़ व्यक्तित्व वाली महिला ने किस तरह अपना जीवन एक ऐसे माहौल में बिताया था जो उसके स्वभाव से जरा भी मेल नहीं खाता था। तो क्या मां अपने जीवन पर—क्या इसे व्यर्थ गया कह सकते हैं—कभी इस रूप में सोचती होगी?

अगले दिन कमला आ गई। और उसने पूजा का झंझट संभाल लिया। इस पर भी मां ने मुझे चकित कर दिया। जितनी बारीकी और जितनी सहजता से उसने पूजा की, शायद बाबू भी क्या ही करते होंगे। पहले दिन नववर्ष मनाया गया। मां ने पंडितजी से पूरे वर्ष का भविष्य पढ़वाया। फिर पिताजी का भविष्य पढ़ा गया जिसे हम सब लोग सांस रोककर सुनते रहे। हो सकता है शायद ज्योतिष ही सही सिद्ध हो जाए। आखिर ज्योतिष कोई कोरी गप्प तो नहीं है, आखिर हमारे पूर्वज इतने मूर्ख तो नहीं थे। इतने सारे लोग, इतने सालों से, कोई यों ही तो इस पर विश्वास नहीं करते चले आ रहे हैं।

आदमी की सबसे बड़ी चिंता क्या है? संभवत: अपने भविष्य को जानने की। भविष्य का दूसरा नाम नियति भी है। अक्सर अपनी अनुमानित नियति के यथार्थ से बचने के लिए भी हम इसका प्रयोग करते हैं। दीवार पर लिखी अपनी नियति की कठोरता को झुठलाने के लिए भी हम इस विद्या का सहारा लेते हैं, यह उस समय मेरी समझ में नहीं आ रहा था। कहावत है न कि उम्मीद का ही दूसरा नाम जिंदगी है, इसलिए भी उम्मीद करने में कोई बुराई नहीं थी। मेरी बात छोड़ो। मैं यह अनुमान नहीं लगा पा रहा था कि पंडित रामदत्त जोशी का पतरा संवत्सर 2042 बहुधान्य वर्ष का जो भविष्य बतला रहा था, मां पर उसकी क्या प्रतिक्रिया हो रही होगी। हम लोगों ने बीच-बीच में कई बार मां को कनखियों से देखा। मां के चेहरे से कुछ अनुमान लगा पाने की आशा में, पर हम या कम से कम मैं सफल नहीं हुआ। मां का चेहरा उतना ही निरपेक्ष था जितना वह सत्यनारायण की कथा या विष्णु सहस्रनाम अथवा चंडी पाठ के समय हुआ करता

था। मां मुझे याद है, उन्हे मजबूरी मे गुना अवश्य करती थी पर अपने चेहरे पर कभी भी यह अहसास नही आने देती थी कि वह सुनना नही चाहती। पर सदा उसका ध्यान कही और होता और बीच-बीच मे वह अवसर हम बच्चों को हिदायत दिया करती, जा, जरा दाल देखना तो या कभी कहती, देखना आग तो नही बुझ गई, जरा एक लकडी लगा आ या दूध का ध्यान रखना, चला न जाए आदि। पर वह यह सब बातें इस सफाई से कहती कि बाबू को आभास तक नही हो पाता कि इसका ध्यान कहीं और है। मां का चेहरा आज भी वैसा ही था। इससे हम दो अनुमान लगा सकते थे—एक तो यह कि मां का ध्यान इस समय भी कहीं और था यानी बाबू पर ही लगा हुआ था। दूसरा, वह मान रही है कि सब सामान्य है और चूंकि बाबू इस बार यह सब नही कर पा रहे हैं, इसलिए वह कर दे रही है। दूसरी बात से मुझे थोडी शांति हुई।

शाम को मां ने कहा लड़कियों को भिटौली देनी है। तू ऐसा करना, दोनों के लिए एक-एक साड़ी ले आना।

"मेरे पास पैसे हैं, बाद मे जरूरत होगी तो तुझसे ले लूगा", मैंने कहा पर वह नही मानी। "नही, यह तेरे बाबू के पैसे हैं, इन्ही से लानी है।"

लगा मां यह नही चाहती कि सरिता यह कहे कि सास अपनी बेटियों को साड़ियां दिलवा रही है। मुझे बुरा लगा, मां सरिता से इतना डरती है क्या? दिल हुआ मां से पूछ लूं पर मा की सहजता और गंभीरता को देखते हुए हिम्मत नही हुई। हो सकता है, फिर मैंने अपने दिल को समझाया कि यह सब बाबू की ओर से ही होता हो। वैसे भी मैंने उमा को दिल्ली में होने के बावजूद कभी भिटौली नही भेजी थी। ना ही मुझसे किसी ने कहा ही था। मैं तो यह भी नही जानता कि मां कभी 'भिटौली' भिजवाती भी है या नही। पर बाद में उमा ने बताया कि मां हर साल उसे भिटौली पर नकद पैसे भिजवाया करती थी, बस! जहां तक कमला का सवाल था, उसकी भिटौली बनती ही नही थी। वह तो सिर्फ विवाहित लड़कियों को ही दी जाती है। पर मा का कहना था कि अब चूंकि कमला भी दूर रहती है इसलिए उसे भी ससुराल गया ही मानो।

"बंबई मे है इसका ससुराल?" मैंने मां से मजाक किया।

मां भी थोड़ा मुस्करायी।

"ठीक ही है", मैंने फिर कहा, "आखिर इसने विज्ञान से तो विवाह कर ही लिया है। इसे भी कुछ मिलना ही चाहिए।"

जोकि हम बीच-बीच में मां से मजाक कर लेते थे पर घर के सारे वातावरण में उदासी और गंभीरता इस कदर बैठ गई थी जैसे पहाड़ों मे जाडों मे बादल छा जाते हैं। यहां तक कि बच्चे भी फुसफुसाकर बोलने लगे थे, जबकि उनसे शायद ही किसी ने कुछ कहा हो। मा ने जो भी बतलाया था, हम ले आए थे—फुंदने,

चूड़ियां, साड़ी, मिठाई आदि।

पूरी नवरात्री के दौरान लगने लगा था कि बाबू की तबियत में अब निश्चित सुधार है। अंतत. मानो पूजा ही असर कर रही हो। नवमी के दिन दुर्गा का आखिरी पाठ किया गया और मां ने बहुत ही विस्तार से कन्या जमाई। पर जब हम शाम को अस्पताल पहुंचे, स्थिति बिल्कुल बदल चुकी थी। बाबू को 'इंट्रावेनस ग्लूकोज' दिया जा रहा था। वह हौले-हौले कराह रहे थे। दो दिन की दाढ़ी वाले चेहरे को पीडा ने विकृत कर दिया था। वैसे भी 'कैमोथैरेपि' ने उन्हे सुखा दिया था और उनके घुघराले बाल देखते-देखते झड़कर ताल मे बदल गए थे। कमला ने कई बार उनसे बात करने की कोशिश की, पर उन्होने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। वह किसी को पहचान नही पा रहे थे, संभवत: उन्हे कोई 'पेनकिलर इंजेक्शन' लगाया हुआ था। मुझे आश्चर्य हुआ, मां जब सुबह अस्पताल से आई थी, उसने इस बारे में कुछ क्यो नही बतलाया ? क्या मां बाबू की बिगड़ती हालत नही पहचान सकी थी या दिन ही दिन मे हालत इतनी बिगड़ गई थी ? यह सही है, मां सारी पूजा के दौरान अन्यमनस्क-सी रही थी। अन्यथा उसके व्यवहार से किसी गंभीर घटना का अंदाज नही लगाया जा सकता था। उसने बच्चों को दो-दो रुपये दिये और सबके सर पर ऐसे हाथ फेरा जैसे कोई दुआ मांगता है और तब जाकर मुझसे बहुत सामान्य तरीके से कहा, "डाक्टर तुझे याद कर रहा था।"

डाक्टर के संदेश ने मुझे तभी बेचैन कर दिया था, इस पर भी मैं यह नही पूछ पाया कि खैरियत तो है ? वैसे भी मां के चेहरे पर उस समय किसी तरह की घबराहट या बेचैनी नही थी। नही, पर ऐसा नही हो सकता कि बाबू की बिगड़ती हालत मां से छिपी रह गई हो। सच तो यह है कि वह बाबू में होने वाले सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्तन को भी, डाक्टरो से पहले पहचान लेती थी।

ड्यूटी पर जो 'हाउस सर्जन' था, देखते ही बोला, "आपको डा० बक्शी ने फौरन मिलने को कहा है।"

डा० बक्शी हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे, "कहां थे आप, मैं आपको सुबह से ढूंढ रहा हूं।" उन्होने बिना किसी भूमिका के कहना शुरू कर दिया, "डोनर्स का इंतजाम कर लीजिएगा।"

"क्या जीभ मे ही फैला है फिर से, डाक्टर साहब ?" मैंने बेचैन हो पूछा। डाक्टर ने एक मिनट मेरा मुंह देखा फिर बोला, "टोटल 'ग्लॉसैकटॉमी' तो होगी ही, गले की भी कुछ 'लिफनोड्स' निकालनी होगी।"

यानी बाबू की रही-सही जीभ भी नही रहने वाली थी। मेरा दिल खराब हो गया। एक अजीब-सी घबराहट ने मुझे घेर लिया था।

कमला ने कुछ देर बाद बड़ी मुश्किल से पूछा, "पर यह हुआ कैसे, डाक्टर साहब ? कल तक तो वह बिल्कुल ठीक थे।"

मां को भी थोड़ा संतोष हो गया कि चलो दर्द नहीं है। मां बाद में कहा करती, मुझे क्या पता था कि दर्द का न होना इतना ख़तरनाक होता है।

पर वह दाग जल्दी ही बढ़ा। फिर दर्द भी रहने लगा। जब बाबू को खाना खाने में मुश्किल होने लगी, तब कहीं वह डाक्टर के पास गए और डाक्टर ने बायोप्सी के बाद उन्हें फौरन यहां भेज दिया था। उसके बाद चला अस्पतालों का सिलसिला। आते ही न जाने कितने किस्म के टेस्ट किए गए—एच. बी., टी. सी. डी. सी., बी. सी. सी. टी., डब्ल्यू. आर. और ई. एस. आर.। असल में डाक्टर अपनी खाना-पूरी कर रहे थे। एक दिन उन्होंने वही कहा जिसकी आशंका में हम इतने दिन से ग्रस्त थे। साथ ही उन्होंने फौरन आपरेशन भी सुझा दिया और आधी जीभ निकाल दी। इस तरह बाबू बिना जीभ के आठ महीने से जीच रहे हैं। आपरेशन के बाद, जैसा कि डाक्टरों ने कहा था, वह लगभग ठीक हो गये।

इतने सफल आपरेशन के बाद भी एक दूसरे ही बाबू सामने थे—असहाय और बिना आवाज। वह कुछ कहना चाहते, हम कुछ समझते थे। पर मां को बाबू की नई भाषा समझने में एक-आध दिन से ज्यादा नहीं लगा। सम्भवतः मां भाषा की जगह बाबू की ज़रूरतों को इतनी अच्छी तरह समझती थी कि उसे अनुमान लगाते देर नहीं लगती कि कब उन्हें क्या चाहिए।

कुछ दिन में ही बाबू घर जाने की रट लगाने लगे। यहां दिल्ली में, उन्हें घुटन महसूस होती थी पर इस बार वह और भी अधिक बेचैन हो उठे थे, अपने मकान और कस्बे को देखने के लिए। सम्भवतः उनमें डर बैठ गया था कि अगर उन्होंने देर की तो वह अपने घर और शहर को फिर नहीं देख पायेंगे।

चले तो वह गए पर लौटे जल्दी ही। लगभग तीन महीने में ही। वैसे भी अब वहां बाबू को कोई न कोई संकट घेरे रहता और मां को इन सबसे अकेले निपटना काफी मुश्किल पड़ता था।

इसके साथ ही फिर से खून देने का सिलसिला चला। टेस्ट पर टेस्ट हो रहे थे और एक बार फिर वही त्रासद प्रक्रिया शुरू हो गई थी।

सारी रात दर्द से बाबू इस तरह छटपटाते रहे जैसे कोई मूक जानवर। दो-दो तीन-तीन घंटे बाद उन्हें 'पैथेडीन' दिया जाता रहा। आपरेशन सुबह नौ बजे ही शुरू हो जाना था और सम्भवतः ज्यादा चलना नहीं था। रात बिना किसी झंझट के कट चुकी थी। निश्चित रूप से मां थक गई थी पर घर जाने का सवाल नहीं था। इस तरह के किसी सुझाव से भी उसे जो क्लेश होता वह उस थकान से कहीं अधिक घातक था, जो मां को रात भर न सो पाने से, हो रहा था। वैसे भी आपरेशन के निपट जाने के बाद भी ज्यादा निश्चिन्त होकर घर आ सकती थी

और कुछ देर आराम भी कर सकता थी। पर न जाने क्यों ठीक आपरेशन से पहले डाक्टरों ने बाबू की एक बार और जांच की और थोड़ी देर बाद बतलाया गया, आज आपरेशन नहीं होगा।

कारण जो भी रहा हो, मैंने सोचा, मां को पहले थोड़ी देर के लिए घर भेज देना चाहिए फिर पता लगाऊंगा कि आपरेशन क्यों स्थगित कर दिया गया है। मैं एक बार पहले ही किसी डाक्टर की तलाश में सारे विभाग मे घूम चुका था पर कहीं कोई मिल नहीं रहा था। यहां तक कि 'हाउस सर्जन' और 'रजिस्ट्रार' तक का पता नहीं था। सम्भवतः सब लोग आपरेशन में लगे हुए थे। पर मां कारण जानना चाहती थी और काफी बेचैनी थी, इसलिए मुझे कहना पड़ा कि डाक्टरों का कहना है कि तत्काल आपरेशन की जरूरत नहीं है।

"लेकिन कल तो वह डाक्टर कह रहा था कि आपरेशन करेंगे।"

"हां, कल वाले डाक्टर को ऐसा लगा, पर आज सबने मिलकर जांच की थी न, उसके बाद उनका यह विचार बना।"

मा ने यह तो देखा ही था कि कई डाक्टर सुबह आए थे पर अब उस बेचारी को क्या पता कि उनमें से कितने 'रजिस्ट्रार' थे, कितने 'हाउस सर्जन' थे और कितने 'ईटर्न' थे।

उसे मेरी बात पर विश्वास-सा करना ही पड़ा। उसने धोने के कपड़ों के साथ एक कापी और एक जिल्द लगी किताब भी अपने थैले मे डाली और कमला के साथ घर चली गई···

दो-एक घटे बाद जब कमला मां को छोड़कर लौटी तब मैं घर को चला।

"मां कहां है?" मैंने पहुंचते ही पहला प्रश्न किया।

"अन्दर कमरे मे," सरिता ने खाना लगाते हुए कहा।

यद्यपि खाने की इच्छा बिल्कुल नहीं थी पर मैं नहीं चाहता था कि घर में बेमतलब का हल्ला-गुल्ला मचे। मैंने तय किया जितना खाया जाए खाऊंगा और फिर मा को उठाकर समझाऊंगा। वैसे मेरी भी हिम्मत मां के नजदीक जाने की नहीं हो रही थी। समझ मे भी नहीं आ रहा था कि किस तरह से बात शुरू करूंगा और वह किस तरह की प्रतिक्रिया करेगी।

खाना खाकर मैंने धीरे से भीतर वाले कमरे मे झांका, देखूं, मां क्या कर रही है? वह लेटी-लेटी कोई किताब देख रही थी।

"मां," मैंने हौले-से कहा, वह इतनी तन्मय थी कि उसे आभास ही नहीं हुआ, कमरे मे कोई आ गया है।

"मा," जब मैंने जोर से पुकारा तब कहीं वह हड़बड़ाई और उठकर बैठ गई।

"सोई नहीं?" मैंने हाथ से उसे लेटे रहने का इशारा किया।

"सोई थी थोड़ा", उसने मेरा मन रखने के लिए कह दिया।

"क्या देख रही थी ?" मैंने मुस्कराने की कोशिश की।

"यों ही, बच्चों की पुरानी किताब थी।"

बिस्तर पर पड़ी किताब पर मेरी नजर स्वत: ही अटक गई। दूसरी कक्षा की एक बहुत ही फटी किताब थी। समझ में नहीं आया कि मां के हाथ यह कहां से लगी होगी। वेबी की किताब होने का सवाल ही नहीं था, वह छठी कक्षा में है। हो सकता है टिंकू की पिछले साल वाली कोई किताब हो, अब तो वह भी तीसरी में है।

सम्भवत: मां को कभी अक्षर ज्ञान रहा होगा, पर मेरी याददाश्त में मां कभी पढ़-लिख नहीं पाती थी। जिस जमाने में वह पैदा हुई थी, आज से साठ-पैंसठ साल पहले उस जमाने में पढ़ाई का चलन था ही कहां ! फिर मां आई भी गांव से थी, वह भी पहाड़ी गांव से, जहां आज भी मीलों पैदल जाना पड़ता है। बाबू ने शुरू में मां को पढ़ाने का थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया था, पर कहा जाता है, मां ने अक्षर ज्ञान के आगे कुछ भी सीखने से इन्कार कर दिया। यह तो मुझे भी याद है कि जब कभी बाबू मां पर बिगड़ते, यह कहते नहीं चूकते थे कि हुड्ड-गंवार न जाने कहां से गले पड़ गई। मैं जब थोड़ा बड़ा हुआ तो, मुझे मां का यह अपमान बहुत अखरता था। जब कभी भी मैंने मां से कहा था, मां, तुझे मैं एक हफ्ते में पढ़ना-लिखना सिखा दूंगा तो मां हंसते हुए कहती, अरे छोड़, तू कहां लगेगा मेरे पीछे। और मौके के अनुसार जा पढ़ या जा खेल कह देती। अजीब बात थी कि बाबूजी का कहा मां कभी गंभीरता से नहीं लेती थी। बल्कि साफ कहती, अरे बकने दे, बकने वाले का मुंह कौन पकड़ सकता है। यह वह सिर्फ तब कहती जब बहुत गुस्से में होती। देखा जाये तो बाबूजी के कहने में कभी कोई गंभीरता होती हो, इस पर मुझे बाद में शक होने लगा था। सच यह था कि मा को कोसने का बाबू का यह एक बहाना था। चूंकि कुछ बोलना होता था, वह बोल देते थे। बाद में मेरी समझ में आया कि जब मां मुझसे कहती, तू कहां मेरे पीछे लगेगा, तो एक सीमा तक इसका तात्पर्य यह होता था कि तेरा बाप तो हार गया, अब तू क्या कर लेगा। यह बात वह न तो अपने ठेठ हुड्ड गंवारपन की अजेयता की महानता दर्शाने के लिए कहती थी और न ही मुझे छोटा सिद्ध करने के लिए। बल्कि यह वह बाबू के ही बड़प्पन को सिद्ध करने के लिए कहती थी। यानी जो काम बाबू नहीं कर सके और कौन कर सकता है, वाला अन्दाज रहता। और एक तरह से मुझसे पढ़कर वह बाबू को छोटा सिद्ध नहीं करना चाहती थी। पर मां ने इस कमी को दूसरी तरह से पूरा किया था।

एक बार की बात है, शायद मां कहीं गई हुई थी, किसी के यहां नामकरण या मुंडन में। वहां कुछ देर हो गई। इस बीच बाबू कचहरी से लौट आए थे। कुछ देर उन्होंने मां का इंतजार किया। पर जब उनसे रहा नहीं गया तो उमा से

चाय बनाने को कह दिया। उमा और कमला दोनों ने मिलकर बड़ी सावधानी से डरते-डरते चाय बनाई। मैं फुटबाल खेलने जाने की तैयारी कर रहा था। बापू बाहर बरामदे में बैठे अखबार देख रहे थे। उन दिनों वहां दिल्ली के अखबारों के डाक एडीशन तक शाम को पहुंचा करते थे। उमा जब चाय लेकर पहुंची, मैंने बगल के कमरे में उन्हें कहते सुना, "रख दे बेटा।"

बापू ने एक घूंट भरी और कप को प्लेट समेत बाहर क्यारियों में फेंक दिया। इन दिनों क्यारियों में भिंडी लगी हुई थी। इसे हमने लगाया था। पर वास्तविक देखभाल मां ही किया करती थी। शहर में इतने वर्ष बीत जाने के बावजूद मां के गांव के संस्कार नहीं गए थे और वह घर के काम से बचा समय बागबानी में ही लगाती थी। एक बार तो हमारे यहां एक गाय भी रखी हुई थी और 'आउट हाउस' में मां ने गौशाला बनाई हुई थी। बाद में मां ने ही गाय बेच दी - दूध को लेकर मां आदतन दूध वाले से लड़ा करती। कभी कहती दूध में पानी है, कभी कहती हींक आ रही है और कभी कहती खीस ले आया है। मैंने एक दिन मां से, इस झिकझिक से तंग आकर कहा, मां गाय पाल लेते हैं। मेरी बात का उमा और कमला दोनों ने समर्थन भी किया। मां बोली, "अरे, गाय पालना कोई आसान काम है, उसे देखेगा कौन ?"

"हम देखेंगे," हम सबने मिलकर कहा। वैसे हम काफी बड़े हो चुके थे। मैं उन दिनों ग्यारहवीं में था और उमा आठवीं में, यहां तक कि कमला भी छठी में आ चुकी थी। निश्चित रूप से हम मां का हाथ बंटाने की स्थिति में थे।

"तुम नहीं जानते, जानवर का कितना काम होता है। एक आदमी से भी ज्यादा काम होता है। गाय पालना मखौल नहीं है।" और उसने हमारी बात टाल दी।

उस समय तो हम लोग चुप हो गए थे कि भई होता होगा, बड़ा कठिन काम जानवर पालना। पर आज मुझे यह बात आश्चर्यजनक लगती है। जब हम लोग बच्चे थे तब मां ने गाय पाल रखी थी कि गाय, बच्चे वाले घर के लिए, जरूरी है और जब हम हाथ बटाने वाले हो गए तो मां के लिए गाय पालना कठिन काम हो गया था। तो क्या मां थक गई थी गाय पालने से। असल में बात यह थी कि मां नहीं चाहती थी कि हम लोग अपना समय गाय-वाय के चक्करों में खराब करें—यह बात मेरे बहुत देर में समझ में आई।

बात उस दिन की हो रही थी। बापू ने कप ही नहीं फेंका, उसके साथ ही उमा को जो डांटना शुरू किया, वहीं नहीं कि वह रुका ही नहीं, बल्कि मुड़कर बापू के प्रिय विषय, मां पर आ गया कि हुड्ड गंवार मां की बेटियां क्या बनेंगी आदि-आदि। जब मां आई उस समय तक उनका गुब्बार कुछ थम गया था। बापू ने मेरे भी मूड खराब कर दिया था और फिर जिस तरह से उन्होंने उमा को

लताड़ा था, हममें से कोई भी उसको सहन नही कर सकता था।

देहरी मे पैर रखते ही सबसे पहले मां मुझसे ही टकराई, "तू क्या नही ?"

मैं चुप रहा।

"क्या बात है ? लड़ाई हुई उमा से ?"

"नही ?" मेरे और उमा के बीच उन दिनों खूब युद्ध हुआ करता था, इसलिए मुझे बोलना पड़ा।

"तबीयत तो ठीक है ना ?" मां की बेचैनी बढ़ती जा रही थी।

"ऐसे ही आज तबीयत नही थी ?" मैंने मां को टाल दिया।

बाबू अभी भी चुप थे, शायद स्थिति का जायजा ले रहे थे। हम भाई-बहनों की एकता से भी वह थोड़ा घबरा गए लगते थे।

उमा अन्दर रो रही थी। "क्या हुआ री ?" मां ने बहुत ही बेचैन स्वर में पूछा, वह बताने की जगह और जोर से रोने लगी।

जब वह बड़ी देर, कुछ नहीं बोली और न ही कमला ने कुछ बतलाया तो बाबू से नही रहा गया। वह अखबार लिए हुए खुद ही अंदर जाकर बोले, "मैं बतलाता हूं ? होना क्या था ! तुम्हारी लाड़ली से चाय बनाने को कहने की गलती कर दी। चाय के नाम पर जो बनाया, कोई मुह मे नही रख सकता। इतनी बड़ी हो गई है, लड़की की जात है, कुछ सीखेगी भी या नही ?"

उसके बाद जो हुआ वह मैंने अपनी जिन्दगी मे पहली और आखिरी बार देखा। मां किसी बाघ की तरह झपटी, "लड़की की जात है तो क्या उसने ठेका ले रखा है चाय बनाने और खाना बनाना सीखने का ? यह लडकियो की जिम्मेवारी है कि जाने घर के मर्द किस तरह की चाय पीते हैं, किस तरह का खाना बनाते हैं ? तुमने कभी अपने बेटे से भी कहा कि चाय बना ? कौन बड़ा है इन दोनो मे ? यह औरत का काम है न कि वह खाना बनाना भी जाने और बच्चे पालना भी। फिर अगर आदमी दो-चार अक्षर पढ़ा लिखा है तो उसे भी पढ़ना-लिखना आना चाहिए, क्यो ? वरना तो वह हुड्ड-गवार है, खबरदार जो मेरी बेटी से भविष्य मे कभी कुछ कहा। मैं जनम भर तुम्हारी गुलामी करती आई हू, क्या यह काफी नही है ?"

बाबू के लिए यह जरूरत से कुछ ज्यादा ही साबित हुआ था। उसके बाद उन्होने शायद ही कभी किसी लड़की से कुछ कहा हो। स्वयं मेरे लिए यह आश्चर्यजनक था, क्योंकि मा लड़ने वाली औरत कभी थी ही नही। वह सदा से ही बाबू की बहुत इज्जत करती थी। बाबू कुछ बोलते तो वह कभी कोई जवाब नही देती थी। फिर वह बाबू की पढ़ाई का ऐसा लोहा मानती थी कि बचपन में हमसे कहा करती थी कि पूरी बिरादरी मे तुम्हारे बाबू जितना पढ़ा आदमी आज भी नही है। उसने ऐसा कैसे कह दिया यह, आज तक मेरी समझ मे नही

आ पाया है। क्या अपने अनपढ़ होने का अहसास मां को सदा इतना सालता रहा था या पढ़ा-लिखा न होने के कारण होने वाला अपमान इसके मूल में था। कुछ भी हो। बाबू के लिए यह काफी गंभीर चेतावनी साबित हुई। उसके बाद भविष्य में उन्होंने कभी न तो, उमा को किसी काम के लिए कहा और न ही मां से हुड्ड गवार। यहा तक कि नशे में भी वह इस बात को नहीं भूलते थे।

यह सही है कि मां का सपना बेटियों ने पूरा किया था, पर मां को अब संभवतः अपने पढ़े न होने की कमी महसूस होने लगी थी। बाबू के साथ लम्बी बातचीत कठिन होती जा रही थी। वह जो कहते उसे अक्षरशः समझ पाना असम्भव था इसलिए अक्सर वह अपनी बात समझाने के लिए लम्बे-लम्बे नोट लिखने लगे थे। और मां इन्हें उलट-पलटकर असहाय देखती या किसी और से पढ़वाती थी। वह हर बात को, जो बाबू लिखते, जानना चाहती थी, फिर चाहे उससे मां का कुछ लेना-देना हो या न हो। यह निश्चित हो चुका था कि यह कठिनाई कम नहीं होने वाली है, बढ़ भले ही जाए। इसलिए मां की बेचैनी का बढ़ जाना भी लाजमी था।

मैं घर क्यों आया था ? पर अब मेरी हिम्मत वह सब बतलाने की नहीं हो रही थी। मेरे दिमाग में कमला के साथ हुआ संवाद घूम रहा था।

"तुम डाक्टर बख्शी से मिले थे ?" कमला ने अस्पताल पहुंचते ही पूछा था।

"हूं", मैंने कहा। मेरी समझ में नहीं आया कमला को क्या कहूं।

"क्या कह रहा है ?" उसने चिंतित स्वर में पूछा।

मैं अब भी चुप रहा।

"क्यों, क्या कह रहा था ?" उसके स्वर की बेचैनी अब एकदम स्पष्ट थी।

"उसका कहना है ?" मैंने रुक-रुककर कहना शुरू किया, "उनका कहना है अब आपरेशन का भी कोई फायदा नहीं है।"

"नहीं, नहीं, मैं उन्हें बम्बई ले जाऊंगी। वहीं इलाज करवाऊंगी। वहां टाटा इंस्टीट्यूट आफ़ कैंसर रिसर्च मे मेरे एक कुलीग का भाई डाक्टर है। कैंसर का वहां से अच्छा इलाज सारे देश में और कहीं नहीं होता।" और उसका गला रुंध गया।

मैंने बाबू की ओर देखा था। दर्द से उनकी हड्डियां निकल आया चेहरा विकृत हो चुका था। उनकी अधखुली आंखों की रिक्तता शरीर मे अजीब-सी सिरहन पैदा कर रही थी। उनके दोनो होंठ बीच से खुले थे और उनमे से दर्द और बेहोशी की हालत में एक अजीब-सी थरथराहट पैदा हो रही थी।

समझ में नहीं आ रहा था, कमला को कैसे समझाऊं। बड़ी देर चुप रहने के बाद मैंने कह ही दिया, "डाक्टरोंकी सलाह है कि हम उन्हें घर ले जाएं। मैं सोचता हूं," मैंने कहा, "चूंकि वह अंत समय अपने ही शहर में रहना चाहते थे,

हमें उन्हें वही ले जाना चाहिए, शायद उन्हें वही शांति मिले।"

"नही", वह रोने लगी। मौत की कल्पनामात्र से उसे दहशत हो रही थी, "मैं उन्हें नही मरने दूंगी, हमें कोशिश करनी चाहिए, तुम मुझे डाक्टर के पास ले चलो, मैं उससे पूछना चाहती हूं।" और वह खुलकर रोने लगी।

"क्या पूछना चाहती हो? यही न कि क्या इन्हें बम्बई ले जाएं? वह क्या कहेगा, तुम जानती ही हो।" मैंने थोड़े अंतराल के बाद उसे फिर समझाया, "डाक्टर का कहना है कि उनकी हालत तेजी से बिगड़ रही है और अगर हमने देर की तो फिर ले जा पाना भी संभव नही रहेगा। वैसे भी उनकी मिट्टी खराब करने से क्या लाभ! तू रोना बन्द कर, तुझे मां को समझाना है। कल ही हम उन्हे ले जा रहे हैं।"

लेकिन कमला ने मां को यह सब जाकर बतलाने से इन्कार कर दिया। अन्तत. मैंने निर्णय किया कि मैं खुद ही जाऊं और बाकी तैयारी भी करूं।

मैंने न जाने कैसे, धीरे-धीरे डाक्टर की कही सारी बात मां को समझा दी।

मां की अंगुलियां उस पुरानी किताब को इस तरह टटोलने लगी जैसे कोई अंधा चीज़ों को महसूस करने का प्रयत्न करता है—उनके आकार-प्रकार और रंगों को जानने के लिए। मैं देर तक उसकी प्रतिक्रिया का इंतजार करता रहा। वह कुछ नही बोली।

अचानक न जाने कहा से दौड़ती हुई बेबी कमरे में आई! उसने, "दादी", कहा और मुझे देखते ही बाकी बात तत्काल दबा ली।

बेबी के एक शब्द-मात्र ने मां को सामान्य होने में मदद की, "आ!" मां ने उसे अपने पास पलग पर बैठने का इशारा करते हुए कहा और पूछा, "खतम हो गया री तेरा काम?"

"हां, दादी, आज 'होम वर्क' बिल्कुल थोड़ा-सा था," बेबी ने प्रसन्नचित्त बतलाया।

"मैंने भी तेरा काम कर लिया है", मां जबरन मुस्कराई।

मैंने एक बार डरते हुए मां को देखा, वह बेबी को देख रही थी। यद्यपि उसके चेहरे पर अभी भी वह मुस्कराहट थी, उसकी आंखों मे निराशा सांझ की तेजी से घिर रही थी। पर बेबी की आंखों में आश्चर्य की चमक थी, किसी रहस्य के अचानक उद्घाटित हो जाने की सी! गोकि इस उद्घाटन से वह खुश थी, इस पर भी उसकी आवाज मे झिझक थी। निश्चित न हो पाने की कि उसके पीछे वास्तविकता क्या हो सकती है?

"देखो पापा", उसकी आंखों में दुविधा अभी भी झांक रही थी, "दादी कितना अच्छा लिखती हैं।" और वह मां के झोले में कापी ढूंढने लगी।

मां अभी भी एकटक उसे देख रही थी। मुझे लगा मेरी टांग कांप रही है। कापी ढूढ़ने मे बेबी को काफी समय लग रहा.था, मे बाहर आ गया।

संजीव

पिशाच

हर साल यह अनुमान लगाया जाता कि महातम बाबा इस साल नही बचेंगे, लेकिन साल थे कि तमाम हो जाते और बाबा की सांस चलती रहती। कभी लगता, इस बरखा मे सूखे पत्ते की तरह भीगकर गल जायेंगे बाबा। सावन-भादो उनका कुछ न बिगाड पाते तो माघ-पूस मे अटकलें लगाई जाती। जाड़ा भी बीत जाता तो जेठ-बैसाख की लू मे हमें उनकी मौत चिलचिलाती नजर आती, मगर कहा···

पिडकाने के लिए बहरे बाबा से कोई ऊंची आवाज मे बोला, "बाबा, इस बार चन्दन का पेड बडे शौक से कटवाया आपकी खातिर, मगर···"

बिना आग-घी के सुलग उठते बाबा, "बच्चा, हम तुम्हे जलाए बिना नही जलेंगे। तुम्हे ही क्यो, तुम्हारे बेटे-बेटी, नाती-पोतो को भी।"

झूठ नही कहते बाबा। जवानी और अधेड़ उम्र की बात तो जाने ही दीजिए, जब वे जेठ की दोपहरी की तरह तप रहे थे, इधर इस उम्र में भी, जबकि उनके हाथ-पांव अशक्त हो चुके हैं, वे गोसाईजी की अमूर्त सत्ता की तरह अक्षय हैं—पग बिनु चलै सुनै बिनु काना, कर बिनु कर्म करै विधि नाना! महज सोटे के सहारे-भचकते, टटोलते वे दिशा-फराकत, खेत-खलिहान, कुआं-इनारा सब छान मारते हैं। कभी दम मारने के लिए दो पल बैठ गए और किसी शरारती की नजर पड गई, "यह क्या बाबा, भला रमेशर के खेत मे···?" बाबा फौरन डगराते हुए उठकर अपने बेजान हाथो से धोती झाड़ते हुए सोटे से टटोलकर दूसरी जगह आ बैठते।

अब कोई दूसरा टोकता, "राम-राम बाबा, ये क्या? रमेशर की जमीन मे क्यों बैठे हैं?" बाबा लडखडाते हुए वह जगह भी तज देते, "हम का खोढर मे पैदा हुए थे? जहां देखो, उसी सारे की जमीन।"

तीसरी बार टोकने का मतलब था, उनके शब्दभेदी डंडे की चोट खाने के लिए तैयार रहना। रमेशर नौजवानी तक बाबा का खास चेला हुआ करता था। कहते हैं, रमेशर की मां मुसम्मात बनकर कभी बाबा की पनाह में आई थी। बाबा

की जिसमानी हविश के जितने स्त्री-पुरुष शिकार हुए होंगे, उनमे रमेशर की मां और रमेशर का नाम सबसे ऊपर आता है। कभी बाबा ने दस बिस्से का गुप्त दान दिया था मुसम्मात को, लेकिन अब लगता नही कि वे बातें सच रही होंगी। आज तो रमेशर ने जिस कल-बल-छल से बहुतेरे गरीब किसानो, मुसम्मातों और ग्राम समाज की जमीन हड़पी है, उसी विधि से बाबा की सारी जमीन। जब उसने उनका चौकवां जैसा उपजाऊ खेत भी कब्जिया लिया तो बाबा ने जनेऊ तोड़कर सदा के लिए पीपल के पेड़ पर टाग दिया और प्रतिशोध न लेने तक प्रतिज्ञा कर ली कि जनेऊ नही पहनेंगे। जीते जी 'ब्रह्म-पिशाच' बन गए बाबा! गोसाईंजी ने कहा है न कि जो इंद्र के वज्र, शिव के त्रिशूल, परशुराम के परशु और विष्णु के चक्र से नही मरता, वह विप्र के रोष की आग में जलकर भस्म हो जाता है! शायद इसलिए

अगर बाबा अक्षय पुरुष हैं तो पीपल अक्षय वट—जैसे दो जुड़वा संताने, जैसे मूर्त शरीर और मूर्त आत्मा! श्रद्धालुओं को चढ़ावा जल पी-पीकर पीपल की जड़ें पास-पड़ोस के घरों में सेंध मारने लगी हैं, स्वयं बाबा की बखरी तक सुरक्षित नही, मगर बाबा उसे काटना तो दूर, छूने तक नही देखना चाहते। पीपल पर गीधों का बसेरा रहता, जो डंगराए ढोर-डंगरों को दूर से देखा करते। लाल-लाल ललरी वाले गीध पंख फडफडाते तो लगता, हम श्मशान में बैठे हुए हैं। पतझड के मौसम में जब पीपल का तिलिस्मी अंधेरा तार-तार हो उठता, उन गीधो की ललरी देखकर लगता, खूनी जीभें उग आई हैं पीपल पर, जगह-जगह।

गर्मी की दोपहरिया सांय-सांय बजती, लू की लपटों से लरजती दिशाएं। पखेरू तक घने पेडों के साए मे जा छिपते। बाबा तब निकलते शिकार के लिए, दबे पांव बिल्ली की तरह। पानी के परदे की तरह कांपते सीवान मे भेंडें हिलते हुए धब्बों की मानिंद लगती, उन्हे अनुमान लगाते देर न लगती कि यही वक्त है, जब भेड़ों को गन्ने के खेत मे चरने के लिए छोड़कर गड़रिए उन्हे सामने न पाकर पीपल पर पत्ते तोड़ने के लिए चढ़े होगे। अब नीचे बिल्ली से बाघ बनकर बाबा पछ फटकारते हुए अपने नुकीले दांत निकाल लेते, "हेला के सारे, पेड़ तुम्हारा बाप लगा गया था क्या? उतर नीचे तेरी मां की···!"

गड़रिए अपनी असतर्कता को लाख-लाख कोसते, न ठहर पाते, न उतर पाते। कई तो हरहराकर पेशाब ही कर बैठते। एक बेचारा कलेशर तीन दिन, तीन रात टंगा ही रह गया डर के मारे। उसे उतारने के लिए आसपास के गाव तक के लोग जमा हो गए!

उतरते ही लात-मुक्कों से स्वागत हुआ और हर गडरिए की तरह उसे अपनी लग्गी-कंबल से हाथ धोना पडा। कहते हैं, ऐसी ही लग्गियों से बाबा की दालान छाई जाती और वैसे ही कंबल मेहमानो को ओढ़ने-बिछाने के लिए दिए जाते।

यह तो हुआ सजा का एक नमूना, बाबा की बख्सीस का हाल पूछना हो तो जहूरे से पूछिए, लेकिन पूछिएगा किससे ? कलेशर की तरह बाबा को सरापते-सरापते वह भी सरग सिधार चुका है। गली से जब भी कोई सारंगी बजाता जोगी गुजरता है, अनायास ही जहूरे की याद ताजा हो आती है—मृत्यु नहीं, जीवन की रागिनी।

लहंगा-पटोरा पहनकर जवान जहूरा सारंगी बजाते हुए नाच-गा रहा है—"अबकी बधइया बाबा घरवी बाजे—महातम बाबा के घर लड़की हुई है," माता-भगिने की सारी कथा सुनाते-सुनाते दिन कहां का कहां गया, मगर बख्सीस न मिला तो जहूरे चला आया बख्सीस लेने खलिहान मे, "बड़ा आतमा जलता है बाबा, लछमी आई है, कुछ दान-पुन्नि होइ जाए।"

बाबा ओसाई के बाद अपनी फसल की लछमी को बखार मे पहुंचवाने के फेर में थे कि यह पटराग सुनकर जहूरे की मनहूसियत पर आग-बबूला हो उठे। पांव का पौला निकाला, मगर कुछ सोचकर कुटिलतापूर्वक मुस्कराते हुए रख दिया, "निकाल अंगोछा, तिरपित कर दें आज।"

मुह की तरह फैला दिया जहूरे ने अंगोछा। अंजुरी से जौ डालने लगे बाबा, "बोल, पेट भरा ?"

"अब ही नांय बाबा।"

"अब···?"

"नांय महराज।"

"ले और ले, अब···?"

जहूरे की जहनियत अब फूटी तो भाखा स्वत: बदल गई, "भर गया बाबा, अब बस करो" "भर गया महाराज?" जहूरे जौ को कौन कहे, अपना अंगोछा तक छोड़कर अपने लहंगे में उलझते-गिरते-पड़ते भाग खड़ा हुआ।

जहूरे को दोबारा मार तब खानी पड़ी थी, जब उमाकांत के पैदा होने पर वह बधाई गाने नही गया। यह बात मुझे आंख मुलमुलाते हुए शिव ने बताई थी और शिव की कथा झन्नूसिंह ने।

शिवजतन उन दिनो उठता हुआ बदमाश था। झन्नूसिंह ने भिटहुर से कहरवा टेरते हुए ऊपलें हटा रहा था कि बिच्छू ने डंक मारा। झन्नूसिंह ने सुझाव दिया, "महातम बाबा के पास चले जाओ। उनसे अच्छा बिच्छू कौन झाड़ सकता है भला ?"

बस, यही, मुरहा मुरहा की भेंट हो गई। बाबा ने खैनी ठोकी, होंठो मे दबाई और कहा, "बैठ दो मिनट में बीछी झाड़ते हैं। ताक तो हमारी आंख में।"

डबडबाई आंखो ने जलती आंखों में ताका और खैनी की लुगदी समेत पूरी पीक पिचकारी की तरह शिवजतन की आंखों में।

सच मानिए, बिच्छू का जहर उतर गया। यह अलग बात है कि आंखें जान लेवा दर्द के मारे हफ्तों न खुली और सीतापुर के डाक्टर भी आंखो की पूरी रोशनी वापस न ला सके।

कलेशर और जहूरे की तरह शिवजतन भी अपनी मुलमुलाती आंखों से बाबा को सरापते सुरलोक सिधार गया, मगर महातम बाबा···

"लोहा, लोहे को काटता है, जहर, जहर को मारता है और दर्द, दर्द को दबाता है।" यह है बाबा का मन्त्र, जिससे सांप, बिच्छू, कुकुर तो क्या आदमी तक का जहर झाडते है। वैसे फूलों के बारे मे उनका मन्त्र विलोम मे चलता है, "फूल तो फूल से नही, सुई-कांटे से ही बस मे किए जा सकते हैं।"

मेरा पूरा परिवार गवाह है इन मत्रों की शक्ति का। एक तरह से उनके बंधुआ मजदूर थे हम। मेरे बाबा और दादी महातम बाबा के खेत के कौए-सुग्गे हड़ाते, दादा और काका हलवाई करते, मां और काकी अदर से लेकर बाहर तक के सारे काम। शाम को मिलने वाली मजूरी, जो प्राय. किनकी, कोदों या घुन लगे जौ-मक्का की होती, को पीस-पीसकर रोटी बनती।

अक्सर हम जात के आरोह-अवरोह, बर्तनो की खनकती आवाजों को सुनते-सुनते सो जाते, पता नही कब नीद में ही हमें मां खिलाती। सुबह यकीन भी न होता कि रात के तीसरे पहर हमने खाना खाया भी था या नही। भैया कुछ बड़े हुए तो महातम बाबा के ढोरों की चरवाही मे जोत दिए गए। बीच मे गोरू दूसरों के भरोसे छोडकर उन्हे बाबा को चबैना पहुंचाने के लिए आना पड़ता।

अइया (दादी) लावा भूनती मकई के, महातम बाबा के लिए! बेले के फूल की तरह खिले सोंधी गंध वाले लावे मउनी मे भरकर ले जाने होते महातम बाबा के पास। हमें ठुर्री तक छूने की इजाजत नही थी, उसे अलग से पहुंचाना पडता। पूरा हिसाब लेते बाबा। मौन आमन्त्रण देते वे धवल लावे भूख के। डरते-डरते एक बार एक लावा उठाकर सुनसान गली में मुंह में डाला भैया ने!

"हूं!" मैं आम के पेड़ से परिंदे की तरह चहका। डर के मारे लावा गटक गये, भैया। बन्दर की तरह उतर आया मैं पेड से, "मुझे भी एक दे दो, नही तो बता दूंगा।"

"ना", वे मउनी को मेरे नन्हे हाथों की पहुंच से ऊपर उठाने लगे।

"तो मैं बता दूं जाकर?"

पस्त हो गए भैया। लाचारी मे एक लावा मुझे भी देना पड़ा।

महातम बाबा का पेट साक्षात अगस्त्य ऋषि की तरह था, जिसके अन्दर हमारी जीभ के सारे स्वाद बंदी बने कुलबुला रहे थे। भोजन तो भोजन, उनके डर से औरतें चटख कपड़े तक नही पहन पाती। उनकी व्यवस्था में तनिक फेर

होते ही शक मे उनकी त्योरियां चढ़ जाती।

अलबत्ता काका जनम के गुरहा थे, कभी-कभी पगहा तुड़ा बैठते। अक्सर वे बाबा के घर की बासी चीमड़ रोटियों को देखकर भड़कने और अइया उनके लिए जाने कहां से सत्तू का प्रबन्ध कर देती। महातम बाबा मार-डांट के बाद भी उन्हें कड़ी सजा न दे पाते तो सिर्फ इसलिए कि उन जैसा कमेरा हलवाहा उन्हें पवस्त में ढूंढे न मिलता। काका दिन भर हाड़-तोड़ परिश्रम करते तो रात को घोड़े बेचकर सोते। बहुत दिन यह नही चल पाया। महातम बाबा ने आखिर रात को आम की बड़की बाग की रखवाली उनके जिम्मे कर दी। हम काका की सोने की फितरत से वाकिफ थे, सो रात को चुपके-चुपके कुछ आम चुन ले जाया करते। एक रात हम आम चुन ही रहे थे कि महातम बाबा का सोटा छपाक-सा कौरदे की झाड़ियों पर बजा। अगर वे झाड़ियां वहां न होती तो निश्चिय ही हमारी कपाल क्रिया हो जाती। *उधर काका तीन-चार थप्पड़ खाने के बाद कच्ची नींद में* उजबक की तरह हड़बड़ाकर उठ बैठे। अंधेरे मे आंख मिचमिचाकर देखा तो उनकी दुखती आंख के सामने महातम बाबा का जिन्दा ब्रह्म पिशाच था, "सारे, इहै रखवारी कर रहे हो ? इधर तुम सोई रहे हो ?तान के, उधर तुम्हारे बहनोई आम बीन लेई गए।" काका ने रोते हुए पहली बार महातम बाबा को गलियाया, "जा ससुर, तेरे जीते जी अब गाव में कदम नहीं रखेंगे।" सुबह होते ही वे गांव का सीवान पार कर जो गए कि आज तक नही लौटे। न बाबा मरते हैं, न उनका लौटना होता है।

बाबा के कान-आंख जब तक दुरुस्त रहे, वे खुद ही रखवाली करते रहे। बाग की ओर उनकी सत्ता कायम रही। जब भी कोई गुवार उठाता, लोग यह कहकर दबा देते कि "गौ और बामन पर हाथ नही उठाना चाहिए।" हालाकि बाबा स्वयं इस नियम के पाबंद नही थे—समरथ को नहिं दोख गुसांई। जिस दिन बाबूलाल दूबे की गाय उनकी जरई में पड़ी, बाबा के लड़के उमाकांत और रमाकांत ने गौ और ब्राह्मण की वो कसकर पिटाई की कि गाय मरने दम तक लगड़ाती रही और दुबे को हफ्तों हल्दी-मट्ठा पीना पड़ा। गांव की बागडोर तब तक रमेशर के हाथों मे आ गई थी, मगर उसका सुभाव भी बाबा की लकीर से अलग नही था, "संतोष करो दुबे, भगवान के घर नियाव होगा।"

भगवान के घर के नियाव था तभी तो रमेशर ग्राम प्रधान बनकर गाव की जमीन हड़पता जा रहा था। इधर बाबा के आंख-कान, हाथ-पांव कुम्हलाने लगे थे। एक नियाव वह बाबा की जमीन को हड़प कर चुका था, दूसरा नियाव उसने यह किया कि उमाकांत और रमाकात को बुलवाकर आम की फसल कुजड़ो के हाथो बेच देने का सुझाव दिया। महातम बाबा ने ना-नुकुर की तो लड़कों ने पहली बार उन्हे डांटकर चुप करा दिया, "न पढ़ाये, न लिखाए, कहां से कमाकर

खायें कि घर में चूल्हा जले ?" महातम बाबा लाचार थे, चुप लगा गए, लेकिन बाहर वालों के लिए उनकी शेखी में कोई फर्क न आया, "लो सालो, अब खाओ आम !" वैसे, एक हूक उन्हें रह-रहकर सालती—जो मजा आम चुराने वालों को मारने-गतियाने में था, वह इस बनियागिरी में कहां !

जिस दिन आम की फसल बिकती, दोनों लड़कों में तकरार शुरू हो जाती, जो महीनों रहती। बीच-बचाव के लिए रमेशर ही आता।

आखिर चौकवा खेत को जिस दिन अपने एहसान के एवज में रमेशर ने कब्जिया लिया, बाबा ने जनेऊ तोड़कर पीपल पर टांग दिया और पीपल के तले ही एक खिलंगी खाट डालकर कल्पवास ले लिया। बाबू राम दुबे की टिपोरी थी, "लगता है, पीपर के ऊपर बसेरा लेने वाले गीधों में से एक खिलंगी खाट पर आ गिरा है। मदरसा जाने वाले बच्चों का एक प्रिय शगल हो गया था, आते-जाते आम के पेड़ पर ढेला फेंकना। ढेले इस अंदाज में फेंके जाते, मानो कोई पका आम पत्तों की खड़खड़ाहट पैदा करता हुआ खाते में डब्ब-सा जा डूबा है। मौसम न होने पर भी बाबा चौकन्ने हो जाते। हालांकि उन्हें यह भी पता न था कि लड़कों ने यह बाग भी गिरवी रख दिया है, रमेश के पास।

बाबा के प्रति अपनी खाई कसम के चलते काका तो फिर गांव न गए, मगर बाकी लोग जाते रहे हैं। जाने पर पुरानी रैयत की तरह सलामी भी देते हैं। साबुन की टिकिया, गमकउवा साबुन, हिमताज तेल, धोती, गमछा। बाबा हाथ से टटोल-टटोलकर, सूंघ-सूंघकर बच्चे की तरह खुश होकर असीसने लगते, "जहा रहो, कल से रहो। औरो तरक्की होइ जाए!" फिर धीरे-धीरे उनके जख्म खिलने लगते आत्मीयता की सिहरन पाकर, "भैया, अच्छा किए जो ई दलिद्दरों की नगरी छोड़ दिए। गांव अब ऊ गांव रहा कहा ? पेट से निकलते ही बच्चों को पखना निकल आता है। धरम-करम गांव छोड़कर भाग रहा है। कोई पुतरा पैलगी नहीं करता, अब उलटे तुम किसी को ढंग से पुकार तक नहीं सकते। जहर भी बोलना है तो मधु मे बोर कर बोलो। इस पर भी हरवाह-चरवाह ढूंढ़े नहीं मिलता। बाबूलाल दुबवा ससुर को देखो, बाभन होइके हर जोतता है और हमरे लड़के सार रमेशरा की टहलुई करते हैं। उस सार ने धीरे-धीरे सारी जमीन कब्जिया ली। परधान होई गया है अब। कहता है, "सारी जमीन ग्राम-सभा की है। पूछो ग्रामसभा की है कि ग्राम परधान की। कहता था ई पीपर भी कटेगा। लड़के सार बानर बकलोल ! हमें कहते हैं, 'चुप रहो, फटर-फटर न करो। ससुरे अब नीच जातिन को खाट पर बैठाई लेते हैं। पतोह, नातिन तक का कौनू परदा नहीं। सोचते हैं, बाबा आन्हर हैं, बहिर हैं, का समझेंगे ! अरे बच्चा, इही करेजे में सब कुछ चुरता है दिन-रात ! उस बार आने लगा तो बोले, 'बचवा, कौनू नौकरी-चाकरी होय शहर मे तो हमारे नतियवन को लेई जाओ। और नही तो

उवों तुम्हारा भोजन ही पकायेंगे या दरबानी ही करेंगे। हम और कुछ नहीं देई सकते तो बाभन हैं, असीसेंगे ही'।"

मांगने वाली मुद्रा पर मेरे अंदर प्रतिशोधात्मक तृप्ति बूंद-बूंद रिसने लगी। मैंने अंगड़ाई लेते हुए कहा, "बाबा, परदेश में नौकरी-चाकरी की समस्या बड़ी खराब है। यहां ट्यूबवेल वगैरह पर ही काम पड़ा है, आप चाहें तो मेरे घर पर ही···"

बाबा के चढ़ते तेवर को देखते हुए मेरी बात हलक में ही फंस गई, वे उखड़ गए, "तुमरी हिम्मत कइसे पड़ी ई कहने को···? इहां हमारे लड़के तुम्हारे घर काम करेंगे, भूलि गए कि तुम काउ हो और हम काउ हैं? चार पैसा कमाने लग गये तो हमे मोल खरीद लोगे···!" वे कापते हाथों से उपेक्षापूर्वक मेरा दिया सामान इधर-उधर फेंकने लगे थे।

बाबा को गलियाता हुआ छोड़कर मैं भय और आश्चर्य की दहशत मे विपण्ण मन से लौट पड़ा···इसके क्या मायने? परदेश में मेरी टहलुई कर सकते हैं, मगर यहां नही यानी यहां अब भी रौब गांठने रहेंगे?···अचानक एक कंकड़ी लगी पीठ में। ठिठक गया। क्या बाबा ने मारा···? न, वे हाथ-पांव, आंख-कान से इतने आशक्त हैं कि···तभी नजर गई, सुमन पर।

बाबा की सबसे छोटी नातिन दरकी दीवारों पर मिट्टी थोप रही थी। बिथुरे-बिथुरे बाल, लदी धोती, आखों में सलोनापन। बोली, "गोइठें में घी सुखवाकर क्या होगा?" मेरा साहस बढ़ा। याद आया, यह वही गली थी, जिसमें कभी हमने और भैया ने चुराकर मकई के लावे चखे थे। उन अपमानों का बदला आज लिया जा सकता है। एक बार फिर वैसा ही कुछ कर बैठने की चाहना मचलने लगी। इस बार वर्जित लावा नही, वर्जित फल, भूख नही, प्रतिक्रियावश मैं साँप की तरह फूलने और फैलने लगा। अपने विनोद की भयंकर परिणति की आशंका पर सहमकर वह पाख की ओर सरकी। झुके खपरैल से एक खपड़ा गिरा, पक्क!

"कौन है रे सारे···? खड़ा रह तेरी बहिनी की···!" जैसे पीपल पर बैठे किसी गीध ने पंख फड़फड़ाए हों, मेरे फन सिकुड़ गए और मैं गली मे रेंग गया।

"सुनो!" दरवाजे पर सुमन की मां ने टोका। वे गांठ से दाने पछोर रही थी। जौ को चंगेरी में डालते हुए बोली, "तुम इस पीपल को खरीद सकते हो? हमे बेचना है, सिर्फ डेढ़-हजार···एक या दो किस्त में···जैसा चाहो, मगर हजार हमें तुरंत देना पडेगा।"

मैंने आश्वस्ति की सास ली कि चलो, उन्होंने देखा नहीं, फिर संजीदा होकर लाभ-नुकसान का जायजा लेने लगा। इसी पीपल पर रमेशर ने भी दावा किया है,

फिर पीपल की लकड़ी पजावे को छोड़कर बाकी किसी काम मे आने से तो रही। क्या होगा पैसे फंसाकर ? बोला, "काकी, इतने पैसे कहां हैं ?"

"बहिन-बिटिया को फंसाने की खातिर तो पैसे हैं। मुदा हमें बचाने के लिए नही !" व्यंग्य से हंसकर वे फिर से उदास भाव से फटकने लगीं जौ को, जैसे मेरा अस्तित्व उनके लिए था ही नहीं। मैं सन्न रह गया।

गली से दोबारा जाना संभव नही था। सो, चक्कर काटकर घर का रास्ता पकड़ने की गरज से बखरी के पिछवाड़े की ओर चल पड़ा। बाबा की बखरी का पिछवाड़ा गिर चुका था। हर बरसात में उनकी मिट्टी बहकर खाते में समा जाती। मेरे बचपन के दिनों में यह खाता बड़ा भयंकर हुआ करता था। बांस डुबान ! इसी खाते से मिट्टी काट-काटकर बनी थी बाबा की यह बखरी। अब फिर वापस जा रही थी खाते में। जब मैं छोटा था, पिछवाड़े का सिर्फ एक पगहा गिरा था। बड़े-बूढ़ों से हमने सुन रखा था कि हुंडे भर-भरकर अशरफी, मोहरें और विक्टोरिया के रुपये के सिक्के गड़े हुए हैं बखरी मे। दुपहरिया को हम बच्चे बाग की रखवाली करने के बहाने खुरपी लेकर धीरे-धीरे खोदते। सिक्के तो एक न मिले, अलबत्ता एक दिन एक बिल से बिच्छुओं की वो कतार निकली कि हम भागते-भागते भागे। मां से हमने जब यह वाकया कह सुनाया तो उन्होंने भी हमारा समर्थन किया, "जरूर गड़े होंगे रुपये। जहां खजाना गड़ा होता है, वहीं सांप-बिच्छू का पहरा होता है।" हमने बड़े होने तक खजाने की खोज को मुल्तवी रखा। वह प्रकरण याद करते ही मैं सोचने लगा, कहां गए वे हुंडे भर रुपये। क्या रमेशर ने खनवा लिया''? होता तो क्या सुमन की मा मेरी दादी की तरह गांठ के गुबार से दाने निकालती ?

मैंने देखा, खाता अब भी उतना ही भयंकर प्रतीत हो रहा था। हालांकि अंदर ही अंदर पट चुका था। काई लगा पानी पत्तियों के सड़ने से गंधा रहा था। इस खाते के दक्षिणी छोर पर अब भी खड़ा था, वह विकराल पीपल और उत्तरी छोर पर किनारे-किनारे शुरू होती थी'''बसवारियां, बकइन, सिहोर, झालम-कोय, अड़ूस की झाड़ें और आम के टेढ़े-मेढ़े पुराने पेड़ तथा बिलबिल। इन पेड़ों और झाड़ियों से खाते पर दिन के समय भी तिलिस्मी अंधेरा छाया रहता। पत्ते झर-झर खाते में गिरते। बेशुमार कीड़े भरे रहते। इन बिलबिलाते कीड़ों के लोभ में बगुले, पनडुब्बक और मोरों के दल खाते की परिक्रमा मे जुटे रहते। आम के मौसम मे खाते के ऊपर झुकी डालों से आम पक-पककर टपकते, डब्भ-डब्भ। निबटान के लिए बाहर जाने वाली औरतें बाबा की नजर बचाकर मुंह अंधेरे कछन्ना काछकर घुटने भर पानी मे आम टटोलती।

घर आया तो मैंने देखा, बाबा के दोनो नाती बड़कऊ और छोटकऊ मेरे बेटे के साथ गेंद खेल रहे थे। मुझे देखा और फुर्र !

दो वर्ष पूर्व ही बाबा के दोनों लड़के उमाकांत और रमाकांत क्रम-क्रम से मरे। हमें यह खबर शहर में ही मिली। उमाकांत, रमेशर के ट्रक पर काम करते थे, वहीं उन्हें टी०बी० हुई थी। अधपेट खाना, हाड़-तोड़ मेहनत और दवा-दारू आंजन भर को भी नहीं। अमेठी से सुलतानपुर तक जहां-जहां गए, खून की उल्टी करते गए। उनके मरते ही पवस्त में गुनगुनाहट हुई, "यह तो सरासर ब्रह्म हत्या है!" रमेशर पर यह दोख लगते ही बाबा के छोटे बेटे रमाकांत ने भी उनके ट्रैक्टर पर काम करना बंद कर दिया। बाग और खेत तो पहले ही हाथ से निकल चुके थे। घर की हालत और भी खस्ता हो गई। इसी बीच पूर्णिमा के दिन रमेशर ने सत्यनारायण की कथा सुनी और पवस्त भर को भोज पर आमंत्रित किया। उस बृहद् भोज में गांव के सिर्फ एक आदमी ने खाना खाया, वे थे रमाकांत। सिर्फ सौ रुपयों के लोभ मे उन्होंने रमेशर को पक्का कर दिया। रमेशर का दोख तो उतर गया, मगर अब वह आ लगा रमाकांत पर। घर के अंदर से बाहर तक, जहां जाते उन्हें धिक्कार मिलती। पागल हो आव-बाव बकने लगे रमाकांत और एक दिन खाते मे डूब मरे।

इस मर्मांतक खबर पर हमें भी अफसोस हुआ, मगर जल्द ही प्रतिक्रिया भरने लगी। काका तब तक रिटायर हो चुके थे। हमने उनसे कहा, "देखने क्या हैं? बांधिए बोरिया-बिस्तर, इस सदमे के बाद बाबा के बच पाने की गुंजाइश कम हो सकती है।"

काका, जो स्वय भी रमा और उमा की मौत से बेहद दुखी थे, महातम बाबा का प्रसंग आते ही यकायक तीखे हो गए, "तब तुम महातम को अभी तक पहचान नही पाए। उस ससुर को सिर्फ अपनी शेखी प्यारी है, बाकी सब कुछ बिला जाए, उसे कोई गम नही। पुरानी पीढ़ी साफ हो गई कब की, बीच की पीढ़ी में सिर्फ मैं और रमेशर बचे हैं, वह भी कब तक जबकि नई पीढ़ी मे जमराज का हाथ लग चुका है। वह ठीक कहता है, सबको मारकर ही मरूंगा।"

सचमुच, बाबा मरे नही, यह और बात है कि अब वे झिलंगी खाट पर ही टट्टी-पेशाब करने लगे थे। आवाज तक अस्पष्ट हो गई थी। पिछली बार जब जेठ की ढलती शाम को अपने बस-स्टैंड पर उतरा तो दिमाग मे बाबा का ही ख्याल था। अचानक जाने कहां से 'भैया-भैया' कहते हुए बाबा के दोनों नाती बड़कऊ और छोटकऊ मेरे पास दौड़ पड़े। बिना तेल-कंघे के रूखे-रूखे बाल, चीकट हाफ पैंट और गंजी। एक ने मेरा होल्डाल उठा लिया, दूसरे ने ट्रंक। मैंने उन्हें रोककर दुकान से गर्म पकौड़े और चाय मंगवाई। खा-पीकर सिगरेट निकाली तो देखा, कनखियों से दोनों सिगरेट को देख रहे थे। एक-एक उन्हें थमाई तो झेंपते हुए दोनो ने सिगरेट ली, मगर मुट्ठियां भींचकर जिस तृप्त ढंग से वे सुट्टे मारकर नाक और मुंह से धुएं उगल रहे थे, उसे देखकर अन्दर तक भीग

गया। बाबा मर गए या जिन्दा हैं, न हमने पूछा, न उन्होंने बताया।

अलस्सुबह मेरी नींद भयंकर गालियों से टूटी। सुमन की मां पूरब की ओर मुंह करके हवा में गालियां दिए जा रही थी, "हम किसी का न लेते हैं, न देते हैं। अपनी राह आते हैं, अपनी राह जाते हैं। फिर कोई पूतरखई, भतारखई, हमें क्यों बोली बोलेगी। जिस माई-मामा को बोलना हो, सामने आए... सबको देख लिया है, सबको...कौन कितनी सीता-सावित्तरी है, मुझसे मुह न खुलवाओ!"

दतुअन कूंचते हुए दुबे आए, बोले, "सुना...?" फिर बताने लगे, "हर तरफ से तबाह थी सुमन की मां, आखिर हारकर गांव मे ही मजूरी करने गई, मगर किसी ने कोई काम नही दिया...."बामन से काम करवाकर नरक में जाना है?...हमने कभी-कभार थोड़ी-बहुत मदद की, मगर छह-छह प्राणी का खर्च कैसे चलता? परसो रात अंधेरे मे रमेशर के पास गई। सुना, रमेशर ने कहा, 'भौजी, अब इस देह को पीपल के गीधों के लिए छोड़ दो, भेजना है तो सुमन को भेजो।' इसके बाद जाने क्या-क्या अपशब्द सुमन की मां ने कहे और जाने कैसे यह बात फूटी, जिसे देखो, वही हमदर्दी जताने के बहाने टोह लेने उनके पास जा पहुंचता। आड़े-उल्टे फब्तियां कसी जाने लगी। अरे भैया, अब तो महातम बाबा की बखरी का खुला दरवाजा है, जो चाहे आवै-जावै।"

सुमन की मां अब भी बोले जा रही थी। अचानक लगा, पीपल वाली गली से उन्हे किसी ने अस्पष्ट आवाज मे इशारा किया है। उपेक्षापूर्वक झनझना उठी, "जो लिए हो, वही रखो। तुम्हें तो सिर्फ चढ़ावा चाहिए। अब पाप का अनाज पचाने मे आती नही फूलती...? यहां सब माई-मामा इस फिराक मे हैं कि उसके पास काहे गई। हमरे पास काहे नही आई। आज सब बाबा का बदला हमसे लेने को चोंगे हुए हैं। तब तो कहा, बाबा बारम्ह हैं। बाबा की गाली आशीरवाद है। एक सीधे-साधे आदमी को ऐंठ-ऐंठ के जिन्दा ही परेत बना डाला, हिजड़ा गांव!"

मैं भावुक हो आया। थैले में साबुन, तेल, धोती, साड़ी लेकर चल पड़ा। वे मुझे आता देख बखरी के अन्दर चली गई। प्रणाम करते हुए आंगन में जा खड़ा हुआ। सुमन रह-रहकर मुझे देख रही थी। छोटी काकी अपनी साड़ी सिल रही थीं। लड़कों का कही अता-पता न था। मुझे लगा, मेरी उपस्थिति अवांछित है। मैंने जेब से पचास रुपये निकाले और थैले की ओर देखते हुए पुकारा, "काकी!"

मेरे प्रणाम की तरह इस पहल का भी कोई जवाब न मिला।

"काकी, ये सामान रख लो।"

"जिसके लिए ले आये हो, उसे ही जाकर दे आओ।" बात इतनी रुखाई से कही गई थी कि मैं सन्न रह गया। सोचा, जी कड़ाकर महातम बाबा को ही दे आऊं। मैं जैसे आया था उससे ज्यादा तिरस्कार के बीच से लौट आया। मैंने देखा, पीछे का पूरा खंड समा चुका था खाते मे। काफी पेड़ कटे थे, बाग और झाड़ियां

विरल हो चली थीं। खाते पर छाया रहने वाला तिलिस्मी अंधेरा तार-तार हो चला था।

गली-मुहाना पार करते-करते मेरे कदम सूअरों की आक्रामकता पर अचानक ही ठिठक गए। मेरे देखते-देखते ही सूअर खाते में पहुंच गए। खाते की परिक्रमा करते उन्हें देर न लगी और तब वे पीपल की ओर बढ़े आ रहे थे। खाते के इस पार से महातम बाबा और उस पार से शकुतिया एक-दूसरे को गरिया रहे थे। कभी इसी शकुतिया की मां ढेलों की चोट सहकर भी चू नही कर पाई थी और आज उसी की जवान बेटी इतने चाड़े-चाड़े गलिया रही थी कि उसकी तुलना मे महातम बाबा की अस्फुट बर्राहट निहायत पस्त और धीमी थी। अगर उनके हाथ हिलाने की बेचैन हरकत न होती तो पता भी नही चलता कि वे गालिया दे रहे हैं। उनके *निर्जीव हाथों की तुलना मे शकुतिया का डडे हिला-हिलाकर गाली* देना, कहीं ज्यादा स्पष्ट और आक्रामक था।

सूअर खाट की ओर बढ़े चले आ रहे थे। शायद बाबा ने पाखाना कर दिया था। घायल गीध की तरह बाबा की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। सूअर कथरी तक पहुंच गए। आगे का दृश्य मुझसे देखा नही गया।

गाव से आने लगा था तो बाबूराम दुबे से एक सुझाव मांगा, "क्या बड़कऊ-छोटकऊ को लिवाता लाऊं?"

दुबे जमीन पर लकीरें खीचते हुए बोले, "यहां तुम लोगो को हर मर्ज की *बस एक ही दवा सूझती है···भाग जाना। अब यहां* ऐसी हालत है कि रमेशर के किसी गलत काम की मुखालिफत के लिए आदमी ढूंढे नही मिलते। इस भेड़नुमा गांव के राम ही मालिक हैं अब। बाबा मे एक कुटिल पुरोहित और एक मगरूर सामन्त भरा था, जबकि रमेशर मे उस पुरोहित और सामन्त के अलावा एक काइयां मुनीम और एक मक्कार बनिया भी है। तुम बच्चे से जवान, जवान से बूढ़े होकर मर जाओगे, लेकिन यह पिशाच यूं नही मरने वाला। पहले बाबा मां की गाली देते थे, अब बहन की। कोई आश्चर्य नही, कल को बेटी तक की खबर लें। बड़कऊ, छोटकऊ को सही अर्थ में *जिलाने के लिए पहले इस पिशाच का* उच्छेद करना होगा।" दुबे की गूढ़ बातें उस समय नही समझ मे आई थी, लेकिन इस बार···

इस बार आया हूं तो हाथ मे सूटकेस लिए हुए घर जाने की बजाय सीधे बाबा की बखरी पर जा पहुंचा हूं। सांकल लगी हुई है, मगर न किसी आदमी की आहट है, न किसी पशु की। बाबा मर चुके हैं क्या? मगर औरतें और छोटकऊ, बड़कऊ···? मैं साहस कर सांकल खोलता हूं। जीर्ण-शीर्ण दीमक लगे कपाटों को अगर मैंने थाम न लिया होता तो अरराकर गिरते। कपाटों के खुलते

सुरेन्द्र कुमार

काउंटर

हाट की पूरी गहमा-गहमी में भी बाहर का कोलाहल उसके भीतर नहीं उतर रहा था। उसके अन्दर तो स्वयं काफी भीड़ थी और भीड में थे कई चेहरे, लाल सुर्ख खूनी चेहरे, और एक तरफ क्रोध और उलझनों मे घिरा एक निरीह-सा बदहवास चेहरा और फिर धांय-धांय गोलियों की आवाज। अनायास उसके अन्दर कुछ उफना और दृष्टि टिक गई पंडितजी के बैठके पर। आंखों में लावा उबलने लगा। एक वीरान-सा जंगल सामने आ गया। खूखार भेड़ियों से भरा जंगल। उसने कसकर अपने तीन वर्ष के बच्चे को बांहों में भीच लिया। एक आशा की चिनगारी आखो में कौंधकर लुप्त हो गई। मन में गिनती चलने लगी—एक, दो, तीन, पांच, सात'''अभी तो एक भी नही बिकी'''हाट पूरे यौवन पर है। हर एक के पास भीड है। मोल भाव सौदेबाजी हो रही है, पर उसके पास अभी तक एक भी ग्राहक नही आया। कुछ टोकरी बिक जाती, तो मुनुआं की दवाई ले जाती। रात-भर खांसता है, गले मे घरघराहट है, शरीर तपता रहता है, दिन-पर-दिन सूखता जा रहा है। मुनुआ की सेहत पर ही तो उसकी आशा टिकी है। मुनुआं लेगा अपने बाप का बदला, तभी हो पाएगी वो इस कस्बे से मुक्त, अपने मन की उलझनो से मुक्त, पंडितजी के बैठक से मुक्त।

उसने आक्रोश-भरी नजर पंडित के बैठके पर डाली और घृणा से एक ओर थूक दिया। मुनुआं को बांहों से भरा, 'मेरे लाल' मुह से निकला और निगाह किसी ग्राहक की तलाश में इधर-उधर भटकने लगी। भटकती निगाह जम गई चूडियां रहित, सूने डंडे-सी अपनी कलाइयों पर, फिर निगाह फुदकती चिड़िया-सी उड़कर बिछुए रहित पैरो की सूनी-सी उगलियों पर बैठ गई। मन उलझ गया विगत की परछाइयों में।

साल-भर पहले इन कलाइयो मे बीस-बीस खनखनाती चूडिया थी और पैरों में रौनेदार दो-दो बिछुए। 'चूडियों और बिछुओं के अलग होने से यदि याद भी अलग हो जाया करे, तो कितना अच्छा हो।' एक विचार मन मे आया और उड़ गया। आंखों के सामने लखन का चौड़ा-चकला सीना आ गया। हनुमान जी की

तसवीर के आगे आंखें बन्द किए हनुमान चालीसा दोहराते मुनुआं के बापू…

"हनुमान विक्रम बजरंगी, कुमति निवार सुमति के संगी।"

कहां हुए सुमति के संगी। जब से सुमति आई, भगवान ही क्या, संगी-साथी भी दुश्मन बन बैठे, इससे तो अच्छी कुमति ही थी, पर उसी को रास नहीं आई थी वह जिन्दगी। कभी-कभी उसे लगता कि मनुआं के बापू की मौत की जिम्मेदार वह स्वयं है। उसने ही लड़-झगड़, रो-पीटकर उनकी पुरानी जिन्दगी को बदला था। कितनी शान्ति मिली थी उसे। जीवन की जैसे समस्त इच्छाएं पूरी हो गई थीं। दहशत से मुक्ति मिली थी। पहले तो दिन-रात मनुआं के बापू से डरती रहती, ऊपर से हर समय दुश्मनों का डर, पुलिस का डर, चारों ओर डर-ही-डर…

गौने पर जब वह आई थी, तो कुछ दिन ही सही-सलामत कटे थे। पर धीरे-धीरे वह सब समझ गई थी और समझने के साथ ही आतंक समा गया था मन में। लखन रात-रात भर गायब रहता। कभी-कभी कई दिन बाद आता। जब आता, तो शराब और गोश्त के बिना कौर तक न तोड़ता। उसे मालूम पड़ गया था कि लखन चोरी-चकारी से लेकर राहजनी तक करता है। जब कभी भी वह इसका विरोध करती, तो गालियां खाती। पर वह विरोध करती गई और समझती रही। मुनुआं के पेट में पड़ते ही उसकी दहशत कई गुना बढ़ गई थी। वह लखन से कहती, "देखो, तुम जे काम छोड़ देओ, जा खतरा की जिन्दगी मे कहा धरो ऐ। हम मेहनत की रूखी-सूखी खाय लिगे, पर चैन की नींद तो सोइंगे। कलकू बच्चा होयगो, कहा सोचैगो कि हमारे बापू बदमाश ए, और मान लेओ काऊ दिना पुलिस पकड़ लै गई, तो हम कहां दर-दर की ठोकरें खागे।"

"पुलिस सै चौ डरत ए मूरख। पुलिस अपनौ कछू नाय कर सकत। जब तक कस्बा में पंडिजी जिन्दा ऐ, पुलिस सै डरन की नैकऊ जरूरत नांय। पूरौ थानो पंडिजी कौ घर और पडिजी कौ घर पुलिस कौ थानों। पंडिजी के जरिया दरोगा निरौ पैसा कमाता ऐ, मेरे सब ऊंच-नीच काम को हिस्सा पुलिस और पंडिजी ऊ तौ लेत ऐ न, पर तू जे बातें नांय समझेंगी।" लखन गर्व से कहता।

मुनुआं के होते-होते लखन मे काफी परिवर्तन आ गया था। कभी-कभी वह काफी उदासी से कहता, "तू सही कहत ऐ, जे खतरा, किल्लत और अपमान की जिन्दगी ऐ, पर छोड़नो भौत मुश्किल ऐ। मान लेओ, सब छोड़ऊ दऊं, तौ पुलिस और पंडिजी नांय छोड़ने दिगे। दौनन की आमदनी पै फरक पड़ैगो। पंडिजी तौ जान के दुश्मन बन जाइंगे। उनके निरे गलत कामन मे मैं सग रह्यौ हू। उनै पोल खुल जान को डर पैदा है जायगो, और पुलिस की तौ पचासियो झूठी गवाही में मैं गवाह रह्यौ हू। देख, एकदम तौ जा लैन सं अलग है नाय पाउंगो, पर धीरे-धीरे मैं सब छोड़ दुंगो। अपने गलत कामन की परछाई मनुआ पै नांय पड़न दुगो।"

लखन सचमुच धीरे-धीरे सब कामों से अलग हो गया था। गांव में ही जमीन बटाई पर लेकर खेती करने लगा था। कस्बे से पंडितजी के बहुत बुलावे आए, पर लखन ने कस्बा जाना ही छोड़ दिया था। उसके संगी-साथी उसके दुश्मन हो गए, पर गांव के लोग उसके इस परिवर्तन से बहुत खुश थे और उसे तो जैसे मन-मांगी मुराद मिल गई थी। वह मुनुआं को बाहों में भरे दिन-भर चहकती रहती। खेत पर रोटी ले जाते समय तो जैसे उसके पंख निकल आते। मेहनत में डूबे लखन को देखकर उसकी कली-कली खिल जाती। महुआ की मीठी छांव में बैठकर लखन को खाना खिलाती और मनुआं को सीने से लगाए भविष्य के सुनहरे सपने बुनती। लखन भी मुनुआं को गोदी में लेकर उछालता और अपनी थकान मिटाता। लखन के पसीने से सुगन्ध आती, मेहनत और लगन की सुगन्ध। कैसे सुख से दिन बीत रहे थे!

"सुख भरे दिनों के पंख लग जाते हैं। मालूम ही नहीं पड़ते, कब उड़ जाते हैं, पर दुख का एक पल भी पहाड़ हो जाता है," उसने सोचा और एक गहरी सांस भर के हाट को निहारा। खासी चहल-पहल थी। सूरज सिर पर सवार था। धूप की मार से उसकी आंखें चिलमिला रही थीं। मुनुआं की कुनमुनाहट सुनकर उसने धोती के पल्ले से उसे ढंका और फिर "टोकरी लो, टोकरी" की भरी-सी आवाज मुंह से निकाली। "आज एकउ गाहक नांय'''पर अबै तो टैम बाकी ऐ।" वह हौले-से बड़बड़ाई।

आज का दिन उसे बहुत बड़ा लग रहा था। ऐसा ही बड़ा वह दिन लगा था। जिस दिन सुबह-सुबह पंडितजी उसके घर आए थे और लखन से बहुत देर खुसुर-पुसुर करने के बाद लखन को कस्बे ले गए थे। जाते-जाते लखन कह गया था, "तू चिन्ता मत करियो। मैं गओ और आओ। एक जरूरी काम ऐ।" उसके मन को चैन नहीं पड़ रहा था। वह रोकना भी चाहती थी, पर जब तक वह कुछ कह पाती, लखन चला गया था। पूरे दिन उसके मन में अनजानी आशंकाएं उठती रहीं। बार-बार वह दरवाजे तक आकर देख जाती, पर निराश लौट आती। राम-राम करके दिन काट, शाम के झुटपुटे में लखन ने घर में कदम रखा, तो उसकी जान में जान आई। पर लखन का बदहवाश परेशान-सा चेहरा देखकर कुछ भी नहीं पूछ पाई। खाना भी लखन ढंग से नहीं खा पाया था।

"चौं परेशान औ इतने? पंडिजी चौं आए हैं," बहुत देर बाद उसने डरते-डरते पूछा था। पर लखन चुप ही रहा था। बहुत देर गुमसुम रहने के बाद लखन के मुंह से बोल फूटे, "देख, मैंने पैलेई कई ही कि मैं बदमासी छोड़ऊ दऊं, तऊ पंडिजी और पुलिस नाय छोड़न देगी। बोई बात भई, जाको डर हो। ऊपर स बदमासन कूं खतम करने के आडर आए हैं। नए दरोगा कूं एक आदमी चाहिए काउंटर (एनकाउंटर) के लइ।"

"काउंटर का होत ऐ ?" वह पूछ बैठी।

"काउंटर…" वह खोखली हंसी हंसा, "काउंटर मे होत ऐ बदमासन सैं पुलिस की मुठभेड़ और या मुठभेड़ मे काऊ बदमास का मारो जानो। पर हकीकत में…" वह फिर खो गया था कहीं। कुछ देर बाद बोला, "नए दरोगा कू तरक्की चाहिए, सो पंडिजी सैं एक आदमी मांगो ऐ, काउंटर के लए। जाई सैं पंडिजी मोए सैं गए ऐ, मोते कैं रए कि एक आदमी को काउंटर कराओ।"

"चौं बिना मुठभेड़ के ?"

"हां, सब ऐसेई चलत ऐ, तू नांय समझैगी।"

"दरोगा जी कूं इलाके में बदमास नांय मिले का।"

"बदमास…इलाके के सारे छोटे-बड़े बदमास भई पंडिजी के बैठका मे बैठे हैं। दरोगाजी ऊ भई ऐ, पर बदमास कूं मार कै कौन झंझट मोल लैं। ऊपर सैं आमदनी पै ऊ चोट पहुंचाय, सो काऊ सीधे-सच्चे आदमी कू मारनो चाहत ऐ, जासैं कोई कहन-सुनन वारो नांय मिलै। मैनेऊं साफ मनैं कर दयी कि अब मैं जा झंझट मैं नांय पड़ूंगो। जैसे-तैसे जा झंझट सैं बाहर निकर पायो हूं। भौत कही-सुनी भई, पंडिजी और दरोगाजी ने मोंए धमकीऊ दई कि तुमने जे काम नांय करवाओ, तो तुमें काऊं केस मे बन्द कर दिंगे। मैंने कई—कर देखो, पर अब मैं जे बदमासी के काम नांय करूंगो। भौत देर तक मौए रौके रखौ। भां पै सराब और मुरगा की दावत उड़ रई। मैं उनके संग सामिल नांय भओ, वो तौ आनई नांय दे रये। पर ऊ बहानो बनाय कै निकर आयो। पर तू चिन्ता छोड़। आ मेरे पास आ, जे सब ऊंच-नीच तौ लगी रहत ऐ।" लखन ने जैसे स्वयं को समझाया।

उसका मन अन्दर-ही अन्दर बैठने-सा लगा था। कोई गोला-सा पेट मे घूमने लगा था। लखन उसे बांहों में समेटे हुए भी कहीं और था।

"का सोच रए औ ?"

"कछू ना ?" वह सरासर झूठ बोल के अपने विचारों के उलझाव मे उलझ गया। "सुन मोए फरार होंनो पड़ैगो," थोड़ी देर बाद वह फिर बोला "मोए जे लगत ऐ कि पंडिजी मेरोई काउंटर करानो चाहत ऐ। अब मैं उनके काऊ काम को नांय रहो ना, और मैं पंडिजी के भौत से राज जानत हूं। उनैं डर है कि कऊं मैं पोलपट्टी नांय खोल देऊं। सुनी, ऐ पंडिजी चुनाव मे खड़े होन की सोच रए हैं। मेरे खयाल सैं आज पंडिजी मोंए दरोगा जी कू दिखान लैं गये। जासैं दरोगाजी मोंए ढंग से पैचान लैं।"

"तुम तौ योई डर रऐ औ।" डर के बावजूद उसने हिम्मत बंधाई।

"तू नईं समझैगी जे बातें। मैं सवेरे ई चलो जाउंगो। और सुन तूऊ मेरे संग चल। जे इलाका ई छोड़ दें। कऊं मेहनत-मंजूरी करकैं पेट पाल लिंगे। इन भेड़ियन सैं तो दूर रहेंगे।"

अभी ये बातें चल ही रही थीं कि दरवाजे पर जीप रुकी।

"लै आय गई पुलिस।" जब तक वह उठकर भाग पाता, आंगन में लथ-पथ सिपाही कूद पड़े और लखन को पकड़ के ले गए। वह रोती-चीखती रही। गांव-भर में जगार हो गई थी। भोर होते-होते गांव-भर में चर्चा फैल गई कि लखन का 'काउटर' हो गया। सब कुछ स्वप्न जैसा घटित हो गया। गांव-भर में आक्रोश फैल गया था, पर कोई कुछ भी करने की स्थिति में नहीं था। वह कस्बे के बाजार मे भी रोती-चीखती रही। लोग उससे सहानुभूति दरसाने से भी डर रहे थे। पुलिस और पंडितजी के खिलाफ बोलने का साहस किसी मे भी नही था। उसे तो लखन की लाश देखने को नही मिली थी। लाश तक नोंचकर खा गए पुलिस और उसके दलाल। बहुत दिनों तक वह इस-उस के पास भागती रही, पर परिणाम शून्य।

तभी गांव मे चुनाव की चर्चा गरमाने लगी। इक्का-दुक्का जीपें गांव में आने लगी थी। गांव वालो ने इस बार बोट मांगने वालो से यही शर्त रखी कि जो भी लखन के अपराधियो को सजा दिलवाएगा, पूरे गांव के बोट, उसी को जायेंगे। यह बात हवा में फैलकर प्रत्याशियो के कानों में भी पड़ी। अब रोज ही जीपें आने लगी। सभी दलों के सदस्य यह पूरा आश्वासन देते कि वे अपराधियों को सजा दिलवायेंगे, पर इस झूठी दिलासा से किसी का मन नही भरता था। यह बात प्रत्याशियो और उनके दल के लोगों की समझ में भी आ रही थी। तभी एक दल के प्रत्याशी ने उस दिशा मे कुछ ठोस कदम उठाए। वे उसे तथा गांव के दस-बीस लोगो को लेकर एस० एस० पी०, डी० एस० पी० आदि से मिले। उन्हे समस्त स्थितियों से अवगत कराया। प्रशासन की ओर से इस मामले की जांच का पूरा आश्वासन भी दिया गया। उस दल के लोग नित्य ही गाव में आते और लखन के एनकाउटर की आग में लकड़िया डाल, गांव वालो की आग को सुलगाए रखते। सार्वजनिक भाषणो मे भी लखन के एनकाउंटर को खूब उछाला गया। खूब सहानुभूति जमा की गई। गाव के लोगो को तथा उसे भी भरोसा आ गया था कि उस दल के लोग सचमुच उनके साथ हैं और इस अन्याय का बदला दिलवायेंगे।

गांव वालो ने एक मत से यह तय कर लिया कि वोट उसी दल के सदस्य को देंगे और हुआ भी यही। पूरे गांव का शत-प्रतिशत वोट उसी दल के सदस्य को पड़ा। इस आशा के साथ कि अब शीघ्र ही लखन के अपराधियो को सजा मिलेगी। पर गरीब की आशा भैंसे की आंत के समान लम्बी होती जाती है। चुनाव परिणाम घोषित हो गए। उनका प्रत्याशी जीत गया था। गांव-भर में खुशिया मनाई गई थी। उसको भी कही लगा था कि अब लखन के हत्यारे अपनी करनी का फल भोगेंगे, पर प्रतीक्षा पहाड़-सी बनती गई। चुनाव जीतने के बाद गाव वालो ने तथा उसने रोज ही प्रतीक्षा की कि नेताजी गांव में आयेंगे, पर

नेताजी क्या, नेताजी का चमचा तक गांव में नही आया।

तभी एक दिन उसने सुना कि अमुक दिन कस्बे में नेताजी का स्वागत होगा। नेताजी पधारेंगे। वह बड़ी अधीरता से उस दिन की प्रतीक्षा करती रही। ठीक दिन, समय से काफी पहले वह कस्बे में पहुंच गई। बहुत प्रतीक्षा के बाद नेताजी आये, पर यह क्या? उसके शरीर में से जैसे अनायास सारा खून किसी ने चूस लिया। नेताजी की जीप में से नेताजी के साथ पंडितजी भी उतरे थे। नेताजी, पंडितजी की पीठ पर हाथ रखे हुए धीरे-धीरे मंच की ओर बढ़ रहे थे। दरोगा जी मुस्तैदी से पीछे-पीछे चल रहे थे। एकाएक उसे विश्वास ही नही हुआ कि यह वही व्यक्ति है, जो लखन के हत्यारों को पकड़वाने की कसमें खाता रहा है। लखन को अपने भाई के समान बताता रहा है।

"हरामजादे सब एकई थैली के चट्टा-बट्टा ऐ," वह जोर से चीखी, पर उसकी आवाज गले में ही घुटकर रह गई। उसे लखन के खून के छींटे नेताजी के भक्क कुरते-धोती पर भी नजर आए। उसे भीषण चक्कर-सा आया। सारा कस्बा उसे घूमता-सा लगा। वह सिर पकड़कर वहीं धम्म-से नीम के तने से टिककर बैठ गई। जब उसे होश आया, तो जीपें जा चुकी थीं। वह मरे-मरे कदमों से गांव वापस आ गई थी। लखन की स्मृति और अपनी आशा की लाश अपने कंधों पर लादे हुए।

उसके अन्दर एक हूक-सी उठी। उसे लगा कि अन्दर से आंसू आने वाले हैं, पर आंसू नही आए। आंसू तो रोते-रोते सूख चुके थे। उसकी दृष्टि पंडितजी के बैठके पर पड़ी। वहां दरोगाजी मूढ़े पर बैठे थे और भी कई सफेदपोश लोग थे। हंसी ठहाके लग रहे थे। उसकी आंखों मे खून उतर आया, "भेड़ियो कभऊ तो होयगो तुम्हारो अंत।" वह बुदबुदाई।

सूरज ढलने के करीब था। हाट लगभग उठ चुकी थी। उसकी एक भी टोकरी नही बिकी। उसने बेवजह टोकरियों को गिना। मुनुआं की कुनमुनाहट बन्द थी। शायद आराम मे है, उसने सोचा। फिर मुनुआं को छुआ। वह बुखार से तप रहा था। एक दो टोकरी बिक जाए, तो दवाई ले लेगी। यह सोचकर बैठी रही। फिर मन उड़ चला।

कुछ दिनों तक लोगों की सहानुभूति उसके साथ रही, फिर वह भी जाती रही। लोग अपनी उलझनों मे उलझ गए। केवल नाव वाला भोला है, जो अभी तक उससे हमदर्दी रखता है। नाव उतराई भी कुछ नही लेता। पर कुछ दिनों से वह देख रही है कि भोला की आंखों में कुछ और ही भाव उसके प्रति पनप रहा है। पिछली हाट को जब वह आई थी, तो भोला ने उससे कहा था, "भौजी, कभऊं अपने बारे मेऊ सोच लेओ करो। जे पहाड़-सी जिन्दगी लखन की याद मे नांय कट

पाएगी और मुनुआं को अबै का देखो ऐ," वह कुछ कह पाता कि उससे पहले ही उसकी गुस्सा भरी आंखें देखकर चुप हो गया और पूरी ताकत से नाव खेने लगा था।

आज सुबह जब वह आई थी, तब भी भोला छेड़ बैठा था, "भौजी, अकेले की जिन्दगी कोई जिन्दगी ऐ, मैं आदमी है कै नांय काट पाय रओ। तुम ठैरी औरत जात। भौजी, तुम तौ जानौ मेरेऊ कोई नांय होयतो···" और चुप होकर अपनी बलिष्ठ बांहों से नाव खेने लगा।

सच तो यह है कि भोला पर उसे गुस्सा भी नहीं आता। अपनी समझ में भोला सही कहता है। भोला को क्या मालूम, उसके मन की हालत और उसकी प्रतिज्ञा। पर आज उसने यह तय किया था कि वह अब इस घाट से नदी पार नहीं करेगी। भले ही उसे दो कोस का अन्तर पड़े।

अरे, दो कोस का अंतर! उसे जल्दी जाना है, वह हड़बड़ाई। सूरज डूब गया था। हाट पूरी उठ चुकी थी। बस दो-चार कस्बे के लोग ही बैठे थे। उसने जल्दी से अपनी टोकरियां समेटीं, मुनुआं को गोदी में उठाया···सनाका-सा ही खिच गया। मुनुआं एकदम ठंडा था। लुंज-पुंज। उसने घबड़ाकर मुनुआं का मुंह खोला, आंखें बन्द, मुह पीला पड़ा था।

"नईं-नईं मेरे लाल, तू मोए छोड़ कै मति जा," वह बहुत जोर से चीखी, पर उसकी चीख पंडितजी के बैठके पर बैठे भेड़ियों के अट्टहास में खो गई। वह पागलों की तरह मुनुआं का मुंह चूमने लगी। मुनुआं को सीने से भीच लिया और फूट-फूटकर रोते हुए पंडितजी के बैठके की ओर देखा। अनायास एक निर्णय उसके अन्दर समा गया। उसकी आवाज बन्द हो गई। अन्दर एक ज्वालामुखी भर गया—उफनता ज्वालामुखी। मुनुआं को कलेजे से चिपटाए वह पगलाई-सी घाट की ओर चल दी। बार-बार मुनुआं का मुह खोलकर चूमती, हिचकी-सी भरती, उसका कलेजा टूट-टूट कर बाहर आने को आतुर था, पर वह किसी प्रकार अपने को संभाले रही।

नाव इस पार ही थी। भोला अकेला बैठा था, "भौजी, बड़ी देर कर दई, तुमारोई इंतजार हो। का बात ऐ? तुमाई तबियत तौ ठीक ऐ? और मुनुआं? तुम चुप चौं हो?"

वह बिना कुछ बोले भोला के एकदम पास आ गई, "सुनौ, मैंने सोच लई ऐ। मैं तुमाए घर बैठ जाऊंगी, पर मोए अपनान सैं पैले, मेरी प्रतिज्ञा पूरी करन कूं तुमें प्रतिज्ञा करनी होएगी। तुमें काउंटर करनौ होयगौ। पंडिजी कौ काउंटर··· दरोगाजी कौ काउंटर। बोलौ, है मंजूर! और मंजूर होए तौ ले औ करौ मुनुआं कौ अपने हाथन सैं जल-परवाह," और बांध टूट पड़ा।

भोला की बलिष्ठ बांहें मुनुआं के शव की ओर बढ़ गईं।

अशोक सक्सेना

ओवर एज

शर्ट में साबुन घिसता मेरा हाथ क्षण भर को रुक गया। इस तंग कोठरीनुमा गुसलखाने में किवाड़ के पीछे रखी बाल्टी खिसकाते हुए मैंने किवाड थोड़ा खुला रहने दिया। अब पिताजी की झुंझलाहट भरी तेज आवाज साफ सुनाई आ रही थी।

"हरामखोरों ने घर को धर्मशाला समझ रखा है। सुबह-शाम आना और खा-पीकर निकल जाना। रात देर तक आवारागर्दी करते घूमेंगे और सुबह नौ बजे तक गधों की तरह पड़कर सोयेंगे। तीसरा कोई काम नही। अभी तक तो मैं किसी तरह गाड़ी खीच रहा हूं, समझ में नहीं आता, इस तरह ये दोनों किस तरह जिन्दगी पार करेंगे।"

पिताजी रोज की तरह आफिस जाने से पहले हम दोनों का गुस्सा अम्मा पर उतार रहे थे, "मैं कहता हूं, तुम इन सपूतों से कहती क्यों नही। मैं आखिर कब तक भाड़ झोंकूंगा?"

"क्या कहूं? दोनों बराबर के हो गए। समझदार हैं। खुद बेचारे इधर-उधर भाग-दौड़ करते रहते हैं। हमारा तो नसीब ही खोटा है।" अम्मा का स्वर ठंडा था।

"नसीब को क्यों रोती हो? यों-क्यों नही कहती कि दोनों हरामखोर हैं। कोई घर आकर तो नौकरी का परवाना दे नही जाएगा। कोशिश करनी पड़ती है।"

अम्मा चौके में बरतन मांज रही थी। पिताजी हम दोनों भाइयो के निकम्मेपन को झीखते रहे और अम्मा, जैसी कि उसने आदत बना ली थी चुपचाप सुनती रही। प्रतिवाद करने की ताकत वह कब की खो चुकी थी। पिताजी जब दस बार पूछते तब वह किसी बात का एक बार जवाब देती।

मैंने कभी अम्मा को बहुत खुश नही देखा। वह बहुत किफायत से चलती। कम-से-कम खर्च में, पति और बच्चो को अच्छा खिला-पहना सके, उसके लिए इससे बड़े सुख की कोई बात न थी। काफी कतर-ब्योंत के बाद महीने के अंत मे वह

थोड़े-बहुत रुपये बचा पाती, लेकिन उसका यह संतोष-सुख कुछ दिनों ही रहता। वह शायद हमेशा सोच-विचार में डूबी रहती और जो सोचती, वह कभी पूरा नही होता था, इसी मृगतृष्णा मे उसकी उम्र कट रही थी।

मैं गुसलखाने से कपड़े धोकर सुखाने जा रहा था कि पिताजी से सामना हो गया। फाइलो के भारी बस्ते का बोझ उठाए वे आंगन मे रखी साइकिल की तरफ बढ गए। गीले कपडे यों ही अलगनी पर डालकर मैंने साइकिल बाहर निकाल दी। कैरियर पर बस्ता लगाते हुए उन्होंने पूछा, "गिलास फैक्ट्री गए थे?"

"कल ही आया था," मैंने कहा।

"क्या हुआ?"

"कुछ नही।"

"क्यो, क्या कहा? गुप्ता से मिले थे?"

"आफिस मे कोई जगह खाली नही है, टाइपिस्ट की जगह तीन दिन पहले भर चुकी है।"

"मैं हफ्ते भर मे कह रहा हूं, भाई, अर्जी लिखकर दे आओ। ऐसा मौका फिर हाथ नही आना। आज गुप्ता मैनेजर है तो कर जाएगा। लेकिन यहां सुनता कौन है?"

पिताजी न जाने क्या-क्या बकते रहे। मैं जल-भुनकर रह गया। कह तो ऐसे रहे है जैसे खुद गवर्नर हैं और गुप्ता इनके बाप का दिया खाता है जो इनकी बात टाल ही नही सकता। साले ने सीधे मुह बात तक नही की, "हां-हां ठीक है। आप माथुर साहब के लडके हैं जानता हू भई, उनको खूब जानता हू। साथ पढ़े हैं हम लोग। आपके पिताजी ने मुझसे शायद आपके बारे मे जिक्र किया था। पर आप काफी देर से आए। मैने तीन दिन पहले ही टाइपिस्ट रखा है। आप मिलते रहिए, कोई जगह होगी तो देखूगा।"

"मौके से फायदा उठाना कभी सीखोगे कि नही? या यो ही सारी जिन्दगी बेकार आवारागर्दी मे गुजारनी है," पिताजी का मूड बुरी तरह चौपट नजर आ रहा था।

आमतौर पर दफ्तरो से लौटते हुए लोग बेहद थके, सुस्त और उदास होते हैं लेकिन पिताजी का हाल बिलकुल उल्टा था। सुबह-सुबह आफिस जाते हुए इस तरह घर से निकलते गोया एकाएक सिर पर आ पड़ी कोई बला टालने जा रहे हैं।

"ठीक है, खूब मनमानी करो तुम लोग। तुम्हारी लापरवाही तुम्हे बरबाद कर देगी। मैं हमेशा ही थोड़े ही बैठा रहूगा। भुगतना तुम लोगों को पड़ेगा।" पिताजी साइकिल लिए आगे बढ़ गए। मैं उनके झुके हुए कंधो और काली कृशकाय आकृति को देर तक घिसटते हुए देखता रहा।

"अम्मा, दस रुपए की सख्त जरूर है—तुम्हारे पास हो तो···" मेरी आवाज में घुल आई रिरियाहट से अम्मा की आंखों में असीम वेदना तैर गई। "मैं तुम्हें दो-चार दिन में वापस कर दूंगा," मैंने जल्दी से कहा तो वह धीरे से हंस दी। मुझे लगा जैसे अम्मा की आंखें कह रही हों, "कहां से वापस कर देगा?"

"रुपए-पैसे की जरूरत होती है तो इनसे क्यों नहीं कहता? मेरे पास इतने रुपए कहां रखे हैं! कल ही तुझे पचास रुपए दिए थे, क्या कर आया?" मैं क्या सफाई देता कि कोआपरेटिव इंसपेक्टर की पोस्ट के लिए फार्म भरा था। जिसमे पैंतीस रुपए फीस के हो गए। आठ रुपए के तीन पासपोर्ट साइज फोटो और पांच रुपए की डाक रजिस्ट्री। बाकी बचे दो रुपए, जो मेरी जेब में अब भी पड़े थे। निकालकर मैंने अम्मा के हाथ में थमा दिए, "कल के रुपयों में से ये दो बचे हैं।"

"सिर्फ दो बचे हैं?" अम्मा ने किंचित आश्चर्य से पूछा। "नौकरी के लिए फार्म भरा था, उसी में लग गए। पैंतीस रुपए तो फीस ही थी," मैंने कहा तो वह पस्त आवाज मे बोली, "कम्बख्तों ने धंधा बना लिया है, यहां फार्म भरो वहां फार्म भरो। नौकरी-चाकरी कुछ मिलती नहीं, हर बार सौ-पचास का जूता लग जाता है", अम्मा उठकर कमरे में चली गई।

हाथ में ली हुई फाइल मैंने अकारण खोल डाली। प्रमाण-पत्रों के पुलिंदे को उलट-पुलटकर देख गया। हाकी टीम का कप्तान, वाद-विवाद प्रतियोगिता मे प्रथम, कालेज की कल्चरल ऐसोसियेशन का सेक्रेटरी, हाथ की सुन्दर लिखावट में अंकित एम० ए०, बी० ए० की डिग्रियां, एन०सी० सी० का बी० श्रेणी सर्टिफिकेट, सन अठत्तर का सर्वश्रेष्ठ स्काउट···मन में आया कि सारे प्रमाण-पत्रों के टुकड़े-टुकड़े कर कूड़ेदान मे फेंक दू या चिंदिया बनाकर आकाश मे उछाल दू।

अम्मा ने दस का नोट मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, "न जाने कैसे-कैसे सौ-पचास रुपए आड़े वक्त के लिए जमा किए थे। यह आखिरी बचा था। चलो छुट्टी हुई।"

अम्मा के हाथ से मैंने नोट ले तो लिया, लेकिन जल्दी ही तय नहीं कर पाया कि क्या करूं। इच्छा तो हो रही थी कि रुपए वापस करके कह दू कि अपने रुपये रख लो आड़े वक्त के लिए, टाइप टेस्ट अब नहीं तो अगली टर्न पर हो जाएगा। लेकिन हाथ में कसमसाते दस के नोट ने सोचने को मजबूर कर दिया। छः महीने टाइप सीखने के बाद तो आज टाइप टेस्ट का चांस मिला है। क्षणिक आवेश में इसे यों ही हाथ से निकल जाने देना महज बेवकूफी होगी और फिर, कभी न कभी तो नौकरी मिलेगी। अम्मा का सारा भरोसा एक साथ भर जाएगा। फिलहाल सौ-पचास के ट्यूशन पकड़कर अपना खर्चा तो निकाल ही सकता हूं। मन को झूठी तसल्ली देते हुए मैं किसी बेहया की तरह घर से निकला। चलते समय अम्मा ने कहा, "शाम को जल्दी लौटना।"

उस शाम मैं तो चार बजे तक घर मे लौट आया, लेकिन पिताजी कुछ ज्यादा ही देर से आए थे। उस दिन उन्हें आफिस से लौटते रात हो गई थी। शशि और सुधीर खाना खाकर पढ़ने बैठ गए थे। इन दिनों दोनों की परीक्षाएं चल रही थीं। कमरे में दीपू की धमाचौकड़ी से परेशान दोनों किताबें बन्द करके पिताजी का इंतजार कर रहे थे। घर भर में दीपू डरता है तो सिर्फ पिताजी से। मेरी डांट-फटकार का उस पर कोई खास असर नहीं होता। अम्मा का तो बिलकुल नहीं। उसकी शैतानियों से तंग आकर कभी शशि या सुधीर उस पर हाथ छोड़ बैठे तो वह रो-रोकर जी हल्कान कर लेता है। इम्तहान के दिनों यह आफत कौन मोल ले। ले-देकर वही एक कमरा है। एक रूम और किचिन के इस शानदार फ्लैट में हम लोग उसी तरह रह रहे हैं जिस तरह कि इस देश के लाखों नौकरी-पेशा लोग इतनी जगह में आराम से गुजर करते हैं। पहले हम लोग तुर्कमान गेट के पास एक मकान में किराए पर रहते थे। मेरा बचपन वहीं गुजरा था। मुझे अच्छी तरह याद है कि मैं सातवीं में पढ़ता था, तब पिताजी को यह क्वार्टर एलाट हुआ था। उन दिनों दिल्ली में क्वार्टर की आज जितनी परेशानी नहीं थी। शुरू में अपने क्वार्टर का एक कमरा हम भाई-बहिनों के पढ़ने के लिए रखा गया था, लेकिन कुछ समय बाद पिताजी ने डेढ़ सौ रुपए महीने पर वह कमरा किराए पर उठा दिया था। आज तो उस कमरे से तीन सौ रुपए महीने आते हैं। इसे खाली कराकर स्टडी रूम बनाने की बात अब शायद सोची भी नहीं जा सकती।

चारपाई पर बेसुध सोए दीपू को रजाई उढ़ाकर अम्मा ने बिछौना ठीक कर दिया। चूल्हे-चौके के काम-काज से फुर्सत पाकर वह सुस्ताने बैठ गई थी। पिताजी रात को करीब नौ बजे आए तो ऊंघता हुआ कमरा जैसे एकाएक जागकर बैठ गया।

"आज इतनी देर कैसे हो गई पापा?" शशि ने पूछा।

"कुछ खास बात नहीं बेटे। दोपहर को खन्ना बाबू की हार्ट अटैक से डेथ हो गई, उसकी कंडोलेंस मीटिंग के सिलसिले में देर हो गई।" पिताजी ने स्वर को काफी सहज और हल्का बनाना चाहा।

"बहुत बुरा हुआ। क्या उमर रही होगी?" अम्मा ने उठते हुए पूछा।

"मुश्किल से पचास पार किए होंगे। औरत और चार बच्चे छोड़कर गया है।"

"हे ईश्वर! बहुत बुरा हुआ बेचारे के साथ।" अम्मा भावुक हो उठी थीं।

"बेचारा तो मरकर मुल्तान पहुंचा। बुरा तो घरवालों के साथ हुआ। हां, इतना जरूर है कि उसकी जगह सरकार उसके लड़के को नौकरी पर लगा देगी।"

"आग लगे ऐसी नौकरी में।" अम्मा ने घृणा से भरकर कहा।

"क्यों, इसमें क्या बुराई है? खन्ना अब नहीं तो रिटायर होने के बाद मरते। अब कम से कम बेटे को नौकरी तो दिला गए।" सुधीर ने अवज्ञा से कहा।

"वास्तव में अजीब बात है, बेचारा कई साल से फांय-फांय कर रहा था। लड़के की नौकरी के लिए भाग-दौड़ में उसने दिन-रात एक कर रखा था। लेकिन बल्ली कहीं थाह नहीं पा रही थी। बेचारे का मरकर ही पीछा छूटा। जो समस्या जीते जी हल न कर सका, वह मरने के बाद अपने आप खत्म हो गयी।" पिताजी की निराशा भरी आवाज से कमरे में मनहूस रात का आतंक जैसे धीरे-धीरे उतरने लगा था। घर के वातावरण में एक अजीब खामोशी छा गई थी। मौत किसी के यहां हुई और मातम हमारे यहां मन रहा था।

"भइया, शायद दो-चार महीने में आप भी ओवर एज हो जाएंगे," सुधीर ने कहा तो मैं जैसे सोते-से चौंक गया। उस क्षण पिताजी का चेहरा न जाने कैसा हो आया था। उनकी आंखों से असीम वेदना टपक रही थी। मुझसे देखा नहीं गया। घबराकर मैंने उधर से नजरें हटा ली। कमरे में फैल गए सन्नाटे को तोड़ने की गरज से मैंने सुधीर से कहा, "मैं···हां···लेकिन तुझे क्या चिन्ता हो रही है? नौकरी न मिले न सही, हाथ-पांव तो सलामत है। अभी से तू क्यों सोचता है इन बातों को। अपनी पढ़ाई-लिखाई की तरफ ध्यान दे।" अम्मा और पिताजी के सामने ये बुजुर्गियत भरे वाक्य मैं पता नहीं कैसे कह गया।

उस रात बहुत देर तक नींद नहीं आई। सुधीर कहां तक सोच गया था। मुझे उस पर कभी आश्चर्य और कभी दुख हो रहा था। इस ढंग से नौकरी पाने की कल्पना मात्र से रोमांच हो आया। मन-ही-मन अम्मा की बात को मैंने कम-से-कम दस बार दोहराया होगा, "आग लगे ऐसी नौकरी में," लेकिन मन का यह छलावा ज्यादा देर न टिक सका। पांवों के नीचे का आधार बहुत कमजोर हो तो चाहे जितना सीना फुलाकर मुट्ठियां आकाश में तानों, मन तो पांवों के नीचे ही चक्कर काटता रहेगा।

ज्यों-ज्यों पिताजी का रिटायरमेंट नजदीक आ रहा है, मुझे लगता है, त्यों-त्यों घर की दीवारें जमीन में नीचे धंसती जा रही है। तो क्या इस घर को बचाने के लिए पिताजी को खन्ना की तरह···? उफ्, हद हो गई! मैंने मन-ही-मन स्वयं को बहुत भारी गाली दे डाली। सोने की कोशिश में सिर से चादर लपेटकर लेटा रहा।

□□

सम्पर्क

भीष्म साहनी—8/30, ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-110008।

महीप सिंह—एच-108, शिवाजी पार्क, नई दिल्ली-110026।

रमेश उपाध्याय—107, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3 ब्लाक, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063।

सत्येन कुमार—'सिमसिम', 40, न्यू कॉलोनी, ईदगाह हिल, भोपाल-462001।

स्वयं प्रकाश—सर्गीपल्ली खान परियोजना, जिला-सुन्दरगढ़ (उड़ीसा) 770072।

राकेश वत्स—77-बी, शास्त्री कॉलोनी, अम्बाला छावनी (हरियाणा)।

जगदम्बा प्रसाद दीक्षित—6, पिकी टेरेस, यूनिटी कम्पाउंड, जुहू, बम्बई-400049।

आलम शाह खान—23, सुन्दरवास (उत्तरी) उदयपुर (राजस्थान)।

नासिरा शर्मा—108, उत्तराखण्ड न्यू कैम्पस, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई-दिल्ली-110067।

राजी सेठ—एम-16, साकेत, नई दिल्ली 110017।

उदय प्रकाश—'दिनमान', 10, दरियागंज, नई दिल्ली-110002।

पंकज विष्ट—79-ए, दिलशाद गार्डन, नई दिल्ली-110032।

सजीव—मुख्य प्रयोगशाला, इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कं०, कुल्टी-713343।

सुरेन्द्र सुकुमार—कौड़ियागंज, अलीगढ़ (उ० प्र०)।

अशोक सक्सेना—सूरदास का घेर, भरतपुर (राजस्थान)।